

संस्कृति और मानवशास्त्र

संस्कृति और मानवशास्त्र

(CULTURE AND ANTHROPOLOGY)

लेखक

डॉ रणिय राघव एम० ए० पी-एच० डी०

श्री गोविंद शर्मा एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक

राजकिशोर अग्रवाल
विमोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड धापरा

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य १० ००

मुद्रक

जानकी प्रेस, आगरा

भूमिका

समाजशास्त्र एक बहुत व्यापक विषय है। उसमें बहुत से विषयों की प्रावधान्यता पड़ती है। समाज को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम समाज के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें। यह न केवल ज्ञान वर्धन का साधन है बल्कि हमारे लिये यह सब जानना आवश्यक भी है, क्योंकि हमें समाज में ही रहना है और अपनी गारणियों को ठीक से नियंत्रित करना है। हम अपनी संकीर्ण परम्पराओं में बहुत सी बातों को बिम्बुन ठीक समझते हैं और उनको धारण भी समझ बैठे हैं। मनुष्य संसार में एक ही तरह से नहीं रहता। संसार में आज भी मनुष्य की सम्मताओं और संस्कृतियों में भेद दीखता है। इस भेद के सम्मेलन से हमें बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। हम अपने समाज में भी बहुत सी ऐसी रीतियाँ देखते हैं, जो अपनी समझ में भी नहीं आती, पर उनके बारे में बिना सोचे उनका पालन करते जाते हैं। राजस्थान में शिवराँ कार्तिक मास में बहुत खड़े-उठ कर छोंकरे के पेड़ की पूजा करता है। परन्तु बहुत कम लोग जानते हैं कि छोंकरा बहुत पुराने समय से पूज्य माना जाता है। वेद में बर्णन आया है कि एक बार अग्नि को गया वा तव अग्नि ने अग्नि को छुँका। उन्हें वह छोंकरे के पेड़ में मिला। छोंकरे को संसृष्ट में धमी ब्रह्म कहते हैं। उसी की परम्परा अभी तक अभी भी आ रही है।

इसी प्रकार हज्र (बहुरी) भोग अपने को ईश्वर का विशेष अ्यापात्र मानते हैं। परन्तु अपने प्रारम्भ के बारे में वे लोग स्वयं कुछ नहीं जानते। हज्र का उच्चारण है, जो धार करके माये है। इसका अर्थ है कि वे एक मात स्थान से दूसरे मात स्थान में आ गये थे। शायद फराह के पूर्व से परिचय

की ओर गये हों यद्यपि इस बारे में मिश्रण से नहीं कहा जा सकता (ए. पब्लिश डेविड : ए. मोनिंग आफ दि ईस्ट सी स्क्रीम्स पृ० ४४) । यहूदियों के प्रारम्भिक पौराणिक पात्र भी अब ऐतिहासिक माने जाने लगे हैं । हम्मुरब्बी या सम्मुरब्बी (जिसे बिबैसस १४ में आम्प्रेज कहा गया है) के समय में यहूदी लोग बबिला फरात की घाटी में थे । आम्प्रेज राज्य संस्कृत का सा जगत है । कुछ लोगों ने भारत में यह प्रयत्न किया है कि भारत की प्राचीनता सिद्ध की जाये और विदेशियों ने भारतीय संस्कृति की परवर्ती छत्राने की चेष्टा की है ।

संस्कृति के विचारों को चाहिये कि वह किसी पूर्वाग्रह (Prejudice) में न पड़े और ठीक से देखकर हर बात पर विचार करे । हमने यही प्रयत्न किया है ।

समाजशास्त्र में मानव ही प्रमुख है । मानवशास्त्र का जो परा संस्कृति से संबंधित है, वह समाजशास्त्र के अंतर्गत ही आता है ।

हमने आज की उन समस्याओं का सम्मेलन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है जिनके कारण हमारी पुष्पनी मान्यताओं में अब कुछ परिवर्तन आ गया है । विज्ञान, वैराणाहकोलांजी तथा सुगोल की यह जानकारी भी हमने यहाँ ली है, जिनका आध्याय जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ा है ।

प्रस्तुत पुस्तक विचारियों को एक नयी दृष्टि देती ऐसी आता है । आज कायदाबाद और मास्कोबाद के रूप में युरोपीय संस्कृति ने अपना हित विकास प्रगट किया है । उस विषय पर भी हमने विवेचन किया है क्योंकि उसका भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा है ।

अपने लेखन में हमने यह पद्धति अपनाई है कि पहले दोनों पक्षों के तर्क एकत्र किये हैं, जो कि विषय को प्रकट करते हैं । पाठक को उनकी जानकारी कराने के उपरान्त ही हमने अपने निष्कर्ष निकाले हैं ।

इस पुस्तक को लिखने में हों भी गोपास नारायण समुदाय और भी गणेशप्रसाद शर्मा ने काफी सहायता दी है, इसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं । भारतीय समाज आज एक नये दौर में से गुजर रहा है । यदि वह पुस्तक संस्कृति जैसे कठिन विषय पर कुछ प्रकाश डाल सके तो हमारा परिश्रम भी उपक्रम हो जायेगा ।

—राजेश राजव

—मोहिन्द कर्मा

विषय-सूची

१	समाजशास्त्र विषय और विस्तार	१-२१
२	विज्ञान का दाय भारतीय समस्या	२२-४३
३	मनुष्य के रूप महाद्वीपीय अध्ययन	४४-१२२
४	सांस्कृतिक उपलब्धियों के स्रोत	१२३-२४
५	मनोविज्ञान और मानव-विकास	२५-२३३
६	सामाजिक अन्तर्गुल्लि (Social Assimilation)	२३४-२३५
७	संस्कृति और विज्ञान	२३६-२३४

का अध्ययन समाजशास्त्र का विषय नहीं है। वह मनकों के व्यवहार और भावराज को ही अपना क्षेत्र मानता है।¹

मनुष्य समाज में एक दूसरे से मिलते हैं और उनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। एक से अधिक व्यक्ति अपने को एक दूसरे के अनुकूल बनाते हैं। इसमें समाज में नियम बनते हैं। जिससे न इसीलिए समाजशास्त्र को मानव व्यवहार या मानवों का संतुलन माना है। वे किन परिस्थितियों में रहते हैं और उनका क्या परिणाम निकलता है यह भी समाजशास्त्र का ही विषय है।²

फ्रेड बीज ने भी समाजशास्त्र का मानव भावराज के पारस्परिक व्यवहार का ही अध्ययन स्वीकार किया है। समाजीकरण की प्रक्रियाएँ कुलीकरण और अनुकूलन की प्रक्रियाएँ भी इसीलिए इसी के अन्तर्गत आती हैं।³

बुर्कम ने कहा है कि समाजशास्त्र का काम है कि सामाजिक तथ्यों का महत्त्व है और उन्हें सत्य के रूप में स्वीकार करे।⁴

कटर के मतानुसार समाजशास्त्र का कार्य है ठोस विचारों का प्रतिपादन और निष्कर्ष करना ज्ञान के रूप में एक करना ताकि सामाजिक और मानव वास्तविकता का निर्माण और नियमन सम्भव हो सके।⁵

समाजशास्त्र का काम अभी तक निरंतर विकसित ही हो रहा है। जैसे जैसे मनुष्य अपने को जानने की चेष्टा कर रहा है वह विभिन्न रास्तों से चलता है। इसीलिए बार्ड के मतानुसार "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। इसे सामाजिक वस्तु-स्थिति का विज्ञान भी कहा जा सकता है।"⁶

- 1 Sociology asks what happens to man and by what rules they behave not in so far as they unfold their understandable individual existences in their totalities but in so far as they form groups and are determined by their group existence because of interaction —Stimiel
- 2 Sociology is the study of human interactions and inter relations their conditions and consequences —M Ginsberg
- 3 It is a special social science concentrating on inter human behaviour on processes of socialization on association and dissociation as such —Von Wiese
- 4 Its aim is to treat social facts as things —Durkheim
- 5 Its purpose is to establish a body of valid principles, a fund of objective knowledge, that will make possible the direction and control of social and human reality —Reuter F G
- 6 It is the science of society or of social phenomena —Ward

समाजशास्त्र विषय धीरे धीरे विस्तार

वेमरवाइर ने धीरे भी व्यापक परिभाषा बन की बगल की है। वह कहता है कि 'समाजशास्त्र मनुष्य और मानव-पर्यावरण के सम्बन्धों का अध्ययन है।'¹

क्युबर ने कहा है कि समाजशास्त्र की परिभाषा देने हुए कहा जा सकता है कि वह मानवों के पारस्परिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक रीति से किया हुआ अध्ययन या ज्ञान है।²

पृथ्वी पर तरह-तरह के मनुष्य रहते हैं। उनके रहन-सहन में भेद होता है। उसका क्या कारण है? वह भेद किन किन प्रभावों के कारण होता है? एक ही समाज में मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध क्या होते हैं? जब एक मनुष्य समाजों का मिलाव होता है, तब सम्बन्धों में क्या परिवर्तन उपस्थित होते हैं वह भी समाजशास्त्र का ही विषय है। इनके अध्ययन के बिना विषय का ज्ञान नहीं हो सकता। मनुष्य ही समाजशास्त्र के लिये आवश्यक है। पर उसके लिये जो भी कुछ आवश्यक है वह सब ही समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

धारा के युग में पश्चिम में सैसा हीरो (नायक) चिह्नित किया जाता है वह भी समाजशास्त्र का ही विषय है। इसी प्रकार कृष-युग लोकपोत, लोनाचार इत्यादि न जाने कितने विषय इसके अन्तर्गत आते हैं।

वेमरवाइर के मतानुसार समाजशास्त्र उन सिद्धांतों का खोजगा चाहता है जिनसे सामाजिक ढाँचे की गीठरी व्यवस्था का पता चल सके। विषय प्रकार एक पर्यावरण-विशेष में किसी समाज की रीतिथों की ढङ्ग पनपती है, परिस्थिति और पर्यावरण के बदलने और सामाजिक ढाँचे के बदलने से किस प्रकार सम-सुसम होता है, निरन्तर होते रहने वाले परिवर्तनों की मुख्य विशेषताएँ क्या होती हैं, किसी समय विशेष पर किन शक्तियों का उस पर क्या प्रभाव पड़ता है क्या संघर्ष और कौन से सामरस्य होते हैं, मानव दम्पत्यों के प्रकाश में ढाँचे के भीतर ही कैसे जोड़ जोड़ होते हैं और अन्त में सामाजिक मानव के

- 1 Sociology is the study of relationships between man and his human environment.
- 2 Sociology may be defined as a body of scientific knowledge about human relationships.

—H. P. Fairchild
—John F. Cuber

रचनात्मक कार्यों में साधना से परमेश्वर के पहुँचने की व्यावहारिक क्रियाएँ किए प्रकार होती हैं, यह सब मानवशास्त्र के ही विषय हैं।^१

जोन्स का मत है कि 'समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य-समूह है। उसका विचार, रीति-रिवाज, मनुष्य को प्रभावित करने वाली सारी बातें जोकि उसका पर्यावरण का ही भाग हैं यह सब समाजशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं। यह नैतिक पर्यावरण को भी किसी सीमा तक स्वीकार करता है। परन्तु मुख्य बात तो मानव-जीवन का ही अध्ययन है। मनुष्य किस प्रकार अन्य मनुष्यों तथा मनुष्यों द्वारा सिरखी हुई वस्तुओं से संबंध रखता है वही विशेष अध्ययन का क्षेत्र है।'^२

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत केवल मानवीय तत्त्व ही नहीं बरन बाह्य तत्त्व जो मानव को प्रभावित करते हैं स्वीकार किये जाते हैं। मानव बहुत ही संसिष्ट (Complex) प्राणी है। वह न केवल एक छतरे-सीमा में रहने वाला प्राणी है, बरन् उसके मन और बुद्धि

1 Sociology seeks to discover the principles of cohesion and of order within the Social Structure, the ways in which its roots are grown within an environment the moving equilibrium of changing structure and changing environments the main trends of an incessant change the forces which determine its direction at any time, the harmonies and conflicts the adjustments and maladjustments within the structure as they are revealed in the light of human desires, and thus the practical application of means to ends in the creative activities of social man
—R. M. Mac Iver

2 The chief interest of sociology is the people the ideas the customs, the other distinctively human phenomena which surround man and influence him and which are, therefore part of his environment. Sociology also devotes some attention to certain aspects of the geographical environment and to some natural, as contrasted with human phenomena but this interest is secondary to its pre-occupation with human beings and the products of human life in association. Our general field of study is man as he is related to other men and to the creations of other men which surround him
—M. J. Jones

समाजशास्त्र विषय धीरे विस्तार

लेन भी विकसित होते हैं। इनके प्रतिरिक्त वह प्रकृति का अपनी इच्छानुसार मोड़ देने की भी निरंतर चेष्टा किया करता है। वह सोचना है धीरे अपने ज्ञान को संश्लिष्ट भी किया करता है।

धीरे धीरे व मतानुसार समाज के बारे में जानकारी प्राप्त करना ही समाजशास्त्र है। जिन तरीकों से समाज धीरे प्रकट हो सकें वह उनका वर्णन है। यह सामाजिक नीतिशास्त्र है सामाजिक इतिहास है धीरे सम्पन्नता यह समाज का विज्ञान है।^१

ज्ञान ने कहा है 'समाजशास्त्र समस्त सामाजिक व्यवस्था में यह मानव का वह विज्ञान है जो सर्वमान्य नियम बनाना है धीरे जो कर्मचर्य में उत्पन्न तथ्यों का समन्वयीकरण करता है।^२

समाजशास्त्र का कार्य इस प्रकार केवल अध्ययन के सिद्ध है अध्ययन नहीं करना है। उसका एक उद्देश्य भी है। वह है कि मनुष्य धीरे भी प्रकट बने। वह एक दूसरे धीरे अपने बारे में ज्ञान उसका मस्तिष्क व्यापक तथ्यों को ग्रहण करके उन्हें व्यवहार में लाए कर सब धीरे उनका जीवन धीरे भी अधिक सुखी बन। इसीलिए के लोग जा कि समाज के विषय में विचार कर गये हैं जिन्होंने तरह तरह की व्याख्या करके नियम बनाये हैं व सब समाजशास्त्र के लक्ष्य के ही नीति मान जा सकते हैं। जिन परिस्थितियों में मानव ने जिस प्रकार में व्यवहार किया वा धीरे कर रहा है यह सब समाजशास्त्र के अध्ययन की वस्तु है। यदि मनुष्य को बेमकाल में प्रलय कर दिया जाय तो उसे समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं रह सकना।

1 Sociology is a body of learning about society. It is a description of ways to make society better. It is social ethics a social philosophy generally however it is defined a science of society

—W F Ogburn.

2 Sociology is the synthesizing and generalising science of man in all his social relationships

— Arnold W Green

मैकाइवर ने इसी व्याख्यात्मकता को प्रगट करते हुए कहा है कि 'समाज तो मानवों के सामाजिक संबंधों का निरंतर बदलता स्वरूप है।'^१

विरकाण्डिट ने तभी कहा है कि "हमें सामाजिक संबंधों का घरूप (Abstract) भावात्मक अध्ययन भी करना चाहिये।"^२

गिस्बर्ट के मतानुसार समाज तो सामाजिक संबंधों का समष्टि का नाम है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ के मनुष्य से संबंधित होता है। मनुष्य और मनुष्य का प्रत्येक संबंध सामाजिक नहीं होता। जब दो एक दूसरे के प्रति जानबूझ हो जाते हैं एक दूसरे का अभिनन्दन करते हैं, समाजशास्त्र वहीं प्रारम्भ हो जाता है। मुख्यतः मानविक प्रक्रियाएँ ही समाजशास्त्र को जन्म देती हैं।"^३

ड्यूसी ने कहा है कि 'जब बयम माब' धर्वात हम हैं' का ध्यान हाता है तो उसे समाजशास्त्र कह सकते हैं।^४ मध्यकालीन टॉमस एक्विनास ने विचार सचि नामे प्राणियों वाली मानवों का सहयोग पूर्ण होकर एक सभ्य की ओर बढ़ता एक हृद मैतिक संघन माना जा और उसी से समाजशास्त्र की ओर इंगित किया जा।^५ मैक्सिमीन ने इसे एक सर्वत सर्वोष्ठ अनुपमेय समाज विज्ञान माना है।^६

- 1 Society is an ever changing pattern of social relations.
—Mao Iyer
- 2 We should study abstractedly the social relationship
—Virkanidit
- 3 Society in general consists in the complicated network of social relationships by which every human being is inter connected with his fellowmen. Not every relationship of man with man is social —as soon as they become aware of each other or exchange greetings the element of sociology arises. Sociality or society is essentially a mental phenomenon.
—Gisbert
- 4 We-feeling
—Cooley
- 5 A stable moral union of rational beings cooperating to a common end.
—St. Thomas Aquinas
- 6 The social science par excellence.
—Schlegelmann

समाजशास्त्र विषय और विस्तार

घोबम ने माना है कि संस्कृति प्रीहोमिकी और मध्यता के क्षण में मानव क्या संपत्ति करते हैं उसका मापदण्ड समाजशास्त्र है।¹

एस्तुब ने माना है कि "समाजशास्त्र में मानसिक अथ प्रक्रियाओं द्वारा एक सा जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों के समुदाय समाज का अध्ययन किया जाता है।"²

बटनर ने कहा है कि हमारे संबंध समाज में या तो एक रस्ती में बंधे होते हैं, या चाकू से कटे रहते हैं।"³

समाजशास्त्र के इस प्रकार मनुष्य पर ही ज़ार देने से इसके आबध्यक मय के रूप में मानवशास्त्र को स्वीकार किया गया है। उसके अध्ययन के बिना समाजशास्त्र का अध्ययन हो ही नहीं सकता। मानवशास्त्र एक विज्ञान है, परन्तु मानवशास्त्र समाजशास्त्र नहीं है। मानवशास्त्र का कुछ भाग समाज शास्त्र के अन्तर्गत आता है।

यहाँ यह देखा जायसक है कि मानवशास्त्र क्या कहते हैं।

मानवशास्त्र का अर्थ (Meaning of Anthropology)

मानवशास्त्र अंग्रेजी के शब्द Anthropology का हिन्दी क्वांतर है। जिसका अर्थ है, मानव तथा logos जिसका अर्थ है, शास्त्र—अर्थात् मानवशास्त्र मनुष्य से संबंध रखने वाला शास्त्र है। इस शास्त्र के अन्तर्गत हम मनुष्य से संबंधित अनेक तथ्यों का अध्ययन करते हैं। हरस्कोविट्ज़ ने ठीक कहा है

1 Sociology is the science of Society... society is the interaction of individuals. Sociology is the framework of peoples, associating together the measure what they achieve in culture, technology and civilization. Society is the behaviour of human beings, constant relationship and adjustment. —Odum

2 Society a group of individuals who carry on a common life by means of a mental interaction. —Ellewood

3 Our relation in the society are either tied by a rope or cut by a knife —Butler

"मानवशास्त्र मानव का और उसके कार्यों का अध्ययन है। (Anthropology is the study of man and his works) M J Herkovits

सर्वप्रथम प्रस्तुत Anthropologist शब्द प्रयोग किया जिससे उसका तात्पर्य था, मनुष्य का मनुष्य के प्रति तथा उसके कार्यों की बस्तुनीत करना। यह तो कुछ बीछे समय में ही मनुष्य के अपने विषय में विचार करना शुरू किया है। हमारा तात्पर्य इसमें यह है कि प्राचीन काल में मानवशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन नहीं किया गया। यह तो आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व ही इस विषय का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है।

मानवशास्त्र प्राचीन काल में केवल व्यापक की वप-वप से ही संबंधित था परन्तु इसके आधुनिक रूप का समझने के निय आरम्भ से लेकर अब तक के सब विद्वानों के विचारों का विस्तरेष्य करना पड़ेगा जब ही हम मानवशास्त्र के अपने अर्थ पर पहुँच सकेंगे। वैज्ञानिक के अनुसार 'मानवशास्त्र मानव का विज्ञान है। एक प्रकार से तो यह प्राकृतिक इतिहास की वह शाखा है जिसमें जीव प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थान का अध्ययन करता है दूसरे रूप में मानवशास्त्र इतिहास का विज्ञान है। जैकब्स तथा स्टर्न ने मानवशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है 'मानव-समुदाय का सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक जो सांस्कृतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास हुआ है, उसका वैज्ञानिक अध्ययन मानवशास्त्र कहलाता है।¹ हेन्रि ने लिखा है "मानवशास्त्र को मानव का विज्ञान कहा जा सकता है जिसके कि दो मुख्य भाग हैं—पहला वह जो कि प्राकृतिक मानव का अध्ययन करता है और दूसरा वह जो कि उस मानव से संबंधित है जो अपने दूसरे साधनों

1 "Anthropology is the science of Man In one aspect it is a branch of Natural History and embraces the study of his origin and position in the realm of animal nature In another aspect, Anthropology is the science of History T K. Penniman A Hundred years of Anthropology (1952), p. 13—14

2 "Anthropology is the scientific study of the physical social and cultural development and behaviour of human beings since their appearance on earth. M Jacobs and B J Stern General Anthropology (1953), p. 1

के संबंध से उत्पन्न होता है या दूसरे पक्ष पर सामाजिक मानव से : ' कोबर ने लिखा है "मानवशास्त्र मनुष्य के कुलों और उनके व्यवहार एवं उत्पादन का विज्ञान है।"^१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ने इसका अर्थ इस प्रकार दिया है "मानवशास्त्र प्राकृतिक इतिहास की यह शाखा है जो मनुष्य जाति का अध्ययन करती है।"^२ होब्स के अनुसार मानवशास्त्र मानव और उसके सारे कार्यों का अध्ययन है। विस्तृत अर्थ में यह मनुष्य की प्रजातियों एवं प्रजातियों का अध्ययन है। इन मतियों में हम सामाजिक व्यवहार का अर्थ नोकर करते हैं और चूंकि मानवशास्त्र प्रजातियों का विज्ञान भी है इसलिये यह एक सामाजिक विज्ञान होने के साथ-साथ एक प्राकृतिक विज्ञान भी है।^३ मजूमदार तथा मदन के अनुसार "मानवशास्त्र मानव ॥ उत्पत्ति एवं विकास का वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है।"^४ एनीहाई ने लिखा है "अन्थ्रॉपोलॉजी मानवशास्त्र मानव का विज्ञान है। मानव

- 1 "It may be yet more succinctly described as the science of man which comprises two main divisions—the one which deals with the natural man (homo), the other which is concerned with man in relation to his fellows, or in other words with social man (Socius) A. C. Haddon History of Anthropology (1949), p. 2
- 2 "Anthropology is the science of groups of men and his behaviour and productions" A. L. Kroeber Anthropology (1948), p. 1
- 3 Anthropology is that branch of natural history which deals with the human species. Encyclopedia Britannica Vol. II p. 41
- 4 "It is the study of man and of all his works. In its fullest sense it is the study of races and customs of mankind. In these customs we see social behaviour and because anthropology is also the science of customs, it is a social as well as a natural science" E. A. Hoebel Man in the Primitive World (1949) p. 1
- 5 Anthropology studies the emergence and development of man from the physical cultural and social point of view D N Majumdar and T N. Madan An Introduction to Social Anthropology (1957), p. 2.

शास्त्र सारे मनुष्य का वर्तनीय उपमानक तथा सामाज्यात्मक अध्ययन है जिसके अन्तर्गत मानव शरीर रचना शास्त्र शरीरशास्त्र एवं मनोविज्ञान तथा वह संस्कृति जो कि उनकी आवश्यकतों के प्रत्युत्तर में प्रवाहित होती है, पाते हैं।^१

समाजशास्त्र मानवशास्त्र को इसीसिधे सेम को विभज है। यदि वह सेम स्वीकार नहीं करे तो वह मनुष्य का अध्ययन भी नहीं कर सकेगा।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में मानवशास्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है : यह प्राकृतिक इतिहास की वह शाखा है जिसमें मनुष्य-शरीर का अध्ययन किया जाता है।

होब्स व अनुसार इसमें मानव और उसके कार्यों का अध्ययन होता है। इसमें आधिया और रीति-रिवाजों का अध्ययन होता है। रीति-रिवाजों में सामाजिक आचरण प्रपट होता है; इसीसिधे मानवशास्त्र न केवल सामाजिक विज्ञान है बरन् वह प्राकृतिक विज्ञान भी है।

महमदार और मदन ने मानवशास्त्र को मानव के भौतिक सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का अध्ययन स्वीकार किया है।

मनुष्य का विज्ञान ही मानवशास्त्र है ऐसा टर्ने-हाई का मत है। इसमें मनुष्य शरीर रचना कनाबट मनोविज्ञान संस्कृति तथा उसकी आवश्यकताओं में प्रसूत जो भी कुछ है, समा जाता है।

इस प्रकार हमारे सामने यह स्पष्ट होता है कि मानवशास्त्र अपने आप में पूर्ण होकर भी समाजशास्त्र से आवश्यक रूप से सम्पृक्त है, इसीसिधे हमने इस विषय को प्रमुखता में है। मानवशास्त्र की मनुष्य की संस्कृति के अध्ययन के सिधे विधेय आवश्यकता पड़ती है। यह समाजशास्त्र का व्यापक प्रभाव देकर आवश्यक है।

समाजशास्त्र का कार्य है मानव समाजों और सामाजिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और स्वयं का अध्ययन करना। समाज ■ धनेक प्रकार के कार्य आधार होते हैं। सामाजिक जीवन और सामाजिक मिशन की धपनी

- 1 "Anthropology means literally the science of man. Anthropology is the descriptive, comparative and generalizing study of man as a whole, including the factors of human anatomy, physiology and psychology and the culture which flows from men response to their needs" —Turney-High.

एक प्रकृति होती है उसकी प्रकृति ही होता है। प्रत्यक्ष वा एक ही ही होता है। उसकी जागृता समाजशास्त्र का ही कार्य है। समाज प्रतिपत्ति ही है। उसकी प्रतिपत्ति का अध्ययन समाजशास्त्र का एक विषय ही है।

समाजशास्त्र का इतिहास एक या दो घण्टी के अंतर्गत ही रखा जा सकता है। समाज चिन्तन का प्राचीनतम काल से होता आ रहा है। किन्तु उसका वैज्ञानिक अध्ययन प्राचीन नहीं है। उसके परिभाषा का ही अर्थ होता है समाज विरोध रूप विज्ञान के क्षेत्र में समाज साधिका प्रयोग वह सब कुछ ही समय की प्रकृति है। अस्तु समाज के प्रति मानव दृष्टिकोण में परिवर्तन ही समाजशास्त्र के विकास के लिये उत्तरदायी है। पारम्परिकों का मत है कि यूरोप में समाजशास्त्रीय अध्ययन अपने प्रारम्भिक रूप में यूनानी दार्शनिकों ने किया था। प्लेटो ने कहा है प्रकृति ने मनुष्य के हाथ में उर्ध्व दिया बनाई है। कि कि समस्त-समस्त साधक को है। उन्हीं से वह अनेक कलात्मक और सुन्दर अस्तु तथा धीमा बनाता है। एतावतोंपरसे ने इसी लिए मानव बुद्धि और उसके विवेक को हाथों के कारण स्वीकार किया था। किन्तु साथ इसके विपरीत विपरीत है। मनुष्य इसलिए बुद्धिमान नहीं है कि उसके हाथ हैं। पर वह इसलिए बुद्धिमान है कि स्वभाव ने ही वह विचारशील है और नये-नये कार्यों के बारे में सोच सकता है। उसने अपने सभी स्वभाव के कारण धीमा बनाये हैं।

इस दृष्टि से मनुष्य में भी बहुत विचलन हुआ है, बल्कि अभी अधिक समीरता उसमें पाई जाती है। परन्तु नया अध्ययन उससे कुछ विचल ही है। यूनानी सोफिस्टा न प्रकृति और परम्परा के बीच एक ही येश खाँटा का जिनसे वे प्रकृति और समाज के नियमों में विवेक करते थे। सामाजिक व्यवस्था उनके अनुसार सामाजिक रचना की और इसलिए वे उसका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं कर पाते थे।

उनका मुख्य कार्य वैज्ञानिक अध्ययन न हीकर एक जातिवादी नीतिकला की स्थापना करना था। उनके उपरान्त प्लेटो और एरिस्टोटिल ने अपने महान् निष्कर्ष प्रकृति विवेक और प्रमाणित किया कि मानव पूर्णता की ओर धीमा होता जा रहा है। यह उसकी सहज परिस्थिति है और यही समाज है। समाज इस प्रकार ध्वनि ने पहले धाता था। ऐतिहासिक वैज्ञानिक और पतन उस पर प्रमाण कामते हैं, परन्तु उसका मुख्य धीमा अनेकों ही अन्तर्गत प्रकृतियों पर निर्भर रहता है। पारम्परिक मान्यता उसकी मुख्य ध्वनि है।

वैविध्य अनेक कारणों पर निर्भर हुआ है। अतः हम स्पष्ट ही देखते हैं, कि समाजशास्त्रियों में व्याख्यागत भेद भल ही बीच पड़ते हैं किन्तु उसकी व्याख्या में मूलकतः भेद नहीं है। प्रायः सब ही समाजशास्त्र की एक ही व्याख्या करते हैं जो ऊपर से घलंग सघने पर भी वास्तव में उमी मार्ग पर से जाती है।

मैक्स वेबर के मतानुसार केवल सामाजिक व्यवहार का अध्ययन ही समाजशास्त्र है। इसके प्रतिरिक्त अर्थों को छोड़ देना चाहिए। व सब विषय समाजशास्त्र के बाहर रखने चाहिए। सामाजिक व्यवहार रूप वह सामाजिक सदस्यों के उस कार्यकलाप को मानता है जिसे करन के सिधे से प्रेरित होते हैं। दुर्लभ और हाँबहाउस इस प्रकार के सर्वोत्तम विभाजन को सर्वप्रथम मानते हैं। सभी समाज विज्ञान परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं निर्भर हैं। अतः ऐसी रेखाएँ नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक विज्ञान अपने विधेय विषय का अध्ययन करता है, किन्तु समाजशास्त्र मानव व्यवहार की समस्त म में सेकर देखता है। समाजशास्त्र विभिन्न विषयों का सम्बन्ध स्थापित करता है।

दुर्लभ के मतानुसार—

(१) भौगोलिक पर्यावरण के आधार पर मनुष्य जाति के ढाँच बनाने और जनसंख्या के रूप का अध्ययन होता है। इसमें जनसंख्या प्रकृति पर निर्भर होती है। अतः प्रकृति का भी अध्ययन आवश्यक होता है।^१

(२) इसमें कला, धर्म, नीति, नैतिकता, अर्थशास्त्र इत्यादि आते हैं। विषयों की बहुलता के कारण सांगोपांग अध्ययन करने की उन्हें असम-असम करके देखा जाता है।^२

(३) इसमें अन्य सामाजिक विज्ञानों में प्राप्त सामान्य समस्याओं और नियमों का अध्ययन किया जाता है।^३

हाँबहाउस ने तो सब सामाजिक विज्ञानों के मिश्रण को ही समाजशास्त्र माना है। किन्तु सबका अध्ययन करने के पूर्व किसी एक विषय का अध्ययन कर लेना आवश्यक है। इसी में विषय की जानकारी प्राप्त करने में सफलता मिलती है।

१ यह Social Morphology कहलाता है।

२ यह Social Physiology कहलाता है।

३ यह General Sociology कहलाता है।

किंतु यह दोनों ही मत पूर्णतया उचित नहीं लगते। जिन प्रकार सकारणता नहीं की जा सकती उसी प्रकार समस्त को भी नहीं लिया जा सकता। प्रत्येक का विशेष अध्ययन और सबका सामाजिक रूप देखना ठीक बात है। अतः इन दोनों को मिला कर बंधना नितात अनावश्यक है। विशेष अध्ययन में प्रत्येक पर अपनी बात अधिक कहता है। अंतिम निष्कर्ष निकालने में मिला हम दोनों पक्षों में संतुलन करना आवश्यक है।

समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों के वर्गगत हो जाता है क्योंकि इन विषय में भी हम उन्हीं की भाँति नियम निश्चित कर सकते हैं। मौलिक विज्ञान की तुलना में सामाजिक विज्ञान सीमित होता है। इसमें हम विषय का एक कायदे से अध्ययन करते हैं। हम किसी बात को उसके पूर्वपरक सम्बन्ध से ध्यान करके नहीं देख सकते। किसी भी वस्तु का निम्नपूर्वक अध्ययन ही उसको विज्ञान की संज्ञा दिलाता है। विज्ञान का प्रारम्भ और अंत कुछ मापदण्डों में होता है। किंतु समाजशास्त्र का सम्बन्ध मानव प्रवृत्ति से है, जिससे किसी मापदण्ड से नहीं मापा जा सकता। इसीलिए वैज्ञानिक इसे विज्ञान मानने में असवीकार करते हैं। किंतु ज्ञान को प्रकार में विभाजित किया जाता है—एक गुणात्मक (Qualitative) और दूसरे मापात्मक (Quantitative)। समाजशास्त्र में मानव ज्ञान को समाजमान (Sociometry) से मापा जाता है। इसीलिए इसको विज्ञान मानना ही उचित है।

विज्ञान का उद्देश्य है ज्ञान की सीमा का स्पर्श करना गुणात्मक और मात्रात्मक—दोनों प्रकार के अध्ययन से किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। समाजशास्त्र में इन दोनों को ही संतुलित कर लिया जाता है। समाजशास्त्र में कुछ कायदे या पद्धतियाँ (Methods) अपनाई जाती हैं।

विज्ञान में चार पद्धतियाँ होती हैं—(१) एक धारणा प्रामाण्य (Hypothesis) (२) प्रयोग (Experiment) (३) निष्कर्ष (Deduction) और (४) नियम (Law)

सामाजिक विज्ञान पर प्रयोग लागू नहीं किया जाता क्योंकि उसमें वह प्रयोग से देखा नहीं जा सकता। मानव प्रवृत्ति इस प्रकार किसी भी प्रयोग के अधीन नहीं हो सकती क्योंकि मानवों की अंतःप्रवृत्तियाँ इस प्रकार प्रयोगों के बाध नहीं होती जा सकती। इसीलिये प्रयोग पद्धति यहाँ हमें लाभ नहीं पहुँचा सकती।

समाजशास्त्र का विषय बहुत ही जटिल हुआ है। जयम अन्तर्मुखी तथा

बहिर्मुखी शाना के वस्तु सत्य हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। उनका अध्ययन इसीलिए सम्भव कठिन होता है।

भौतिक विज्ञान पर हम किसी भी पद्धति को लागू कर सकते हैं, किन्तु सामाजिक विज्ञान में कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। पद्धतियों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है सामान्य और विशेष।

एम्बुड के मतानुसार पाँच पद्धतियाँ हैं

- (१) तुलनात्मक (Comparative) पद्धति
- (२) ऐतिहासिक (Historical) पद्धति,
- (३) अनुसंधान (Survey) पद्धति
- (४) निष्कर्ष (Deductive) पद्धति
- (५) दार्शनिक मूलनिर्धारण (Philosophical assumption) पद्धति।

बैपिन ने इनका विभाजन प्रस्तुत किया है—

- (१) ऐतिहासिक पद्धति (Historical)
- (२) सांख्यिकीय पद्धति (Statistical)
- (३) कार्यक्षेत्र अथवा सर्वेक्षण पद्धति (Field work observation)

हार्ब ने पाँच और भी पद्धतियाँ बतायी हैं—

- (१) सामान्य बुद्धि पद्धति (Commonsense)
- (२) ऐतिहासिक पद्धति (Historical)
- (३) म्युजियम सर्वेक्षण पद्धति (Museum Observation)
- (४) प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental)
- (५) सांख्यिकीय पद्धति (Statistical)

प्राम यह मतभेद बाह्य रूप सम्बन्धी ही हैं।

मानवशास्त्र में हमें वर्तमान समाज का अध्ययन करना पड़ता है। वर्तमान संस्थाओं और उनकी कार्य प्रणालियाँ का अध्ययन किया जाता है। समाज में जो हो रहा है उस सबको दृष्टि के अन्तर्गत रखा जाता है। इसलिये हमें घटित के विषय में भी जानकारी पड़ती है। ऐतिहासिक प्राचीन लेखों से महत्वात्मा लेनी पड़ती है। उनकी सहायता से हम निरंतर होते परिवर्तन को जान लेने की चेष्टा करते हैं। अतीत और वर्तमान के भेद हमारे सामने स्पष्ट हो जाते हैं। इतिहास हमें बताता है कि बहुत सी बातें अपना रूप बदल कर किस प्रकार बन जाती हैं या जहाँ के रूप में ही बनी रहती हैं। परन्तु हमारे पास जो इतिहास के ग्रन्थ हैं, उनमें भी कई प्रकार की कमियाँ हैं।

प्राचीन इतिहास प्रायः राजाओं का वर्णन करते हैं। उनमें जनसाधारण और समाज के बहुजनों का उल्लेख कम ही मिलता है। दूसरे के वर्णन किसी विषय में नहीं होते। इसीलिये प्राचीन के समाज के विषय में हमारी जानकारी बहुत ही कम हो पाती है। इसीलिये केवल ऐतिहासिक घासेला के अध्ययन की पद्धति को यहाँ नहीं कहा जा सकता। प्रायः ही जादुकार बरबारियो ने अपने सासकों का संतुष्ट करने के लिये झूठी-झूठी बातें लिख दी हैं।

सुसमात्मक पद्धति का प्रयोग पहले मानवशास्त्रियों ने किया और बाद में इसको समाजशास्त्रियों ने अपनाया। इस पद्धति के अन्तर्गत दो समाजों की तुलना करते हुए अध्ययन किया जाता है जिसमें मानव जीवन के विभिन्न रूप विकास के वैविध्य इत्यादि को मिला जाता है। यह समानताएँ और असमानताएँ हमें समाज के अध्ययन के विषय में एक सहायता देती है। सांस्कृतिक आदान प्रदान को जानने के लिये यह एक महत्वपूर्ण पद्धति है। इसी के अन्तर्गत हमें प्राचीन काल की वस्तुओं को खोजने वाले पुरातत्व-वेत्ताओं के भी दर्शन होते हैं, जो प्राथमिक तथा प्राचीन का सुसमात्मक अध्ययन करते हैं। समाज विकास में सम्पन्न और सभ्यता के स्तर विदेशों की ओर इन लोगों ने ध्यान दिलाया है। इन लोगों को कार्य प्रणाली वैज्ञानिक ढंग से ही चलती है। इनका अध्ययन बड़े ध्यान से होता है।

धनुर्वीक्षण पद्धति में कार्य-क्षेत्र में जाकर जाँच करनी पड़ती है और तथ्य एकत्र करने पड़ते हैं। उन तथ्यों के एकत्रीकरण के उपरांत धोबकर्ता अपनी व्याख्या से उनका विमानन करके परिणाम निकालता है। धनुर्विज्ञान-कर्ता स्वयं कार्य-क्षेत्र में जाता है और उसी विशेष समाज में सुल-मिस जाता है। वह समाज की जानकारी प्राप्त करता है। इसी को तथ्य एकत्र करने का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जाता है। किन्तु इसमें एक कठिनाई होती है। धनुर्विज्ञानकर्ता को समाज विशेष के किसी व्यक्ति को अपने साथ लेना पड़ता है। उसकी सहायता से अपना कार्य पूरा करना पड़ता है। इसमें धनुर्विज्ञान करने वाले की विद्या से भी अधिक आवश्यक होती है—उसकी सहायता उसकी शैक्षिक निपुणता प्रदर्शिता सामाजिक प्रवृत्तियों की भीतरी बातों को देख लेने वाली दृष्टि। उसकी कल्पना को संयमित होना आवश्यक है। उस किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रहों से काम नहीं लेना चाहिये और अपने विचारों के अपने में से नये तथ्यों को ग्रहण करना उसके लिये उचित नहीं है।

सर्वेक्षण पद्धति दो प्रकार की होती है। एक में अनुसंधानकर्त्ता सीधे ही बातचीत करता है। दूसरी में वह किसी के माध्यम से बातचीत करता है।

किन्तु प्रायः यह पद्धति एक रूप के बंधीभूत होती है। अनुसंधानकर्त्ता की अपनी भी एक विचारधारा होती है और इसलिये वह प्रायः ही पूर्वाग्रह ग्राम्य रहता है। प्राप्त तथ्यों का वह मनोनुकूल रूप में ही ग्रहण करता है। पूर्वाग्रह जातीय धार्मिक वर्ण संबंधी या अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

निर्धारण (Inductive) पद्धति में सामान्य से विशेष की ओर गमन किया जाता है। अनेक सामान्य समावधानों में तथ्यों को देख कर विषय निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामान्य निष्कर्ष के आधार पर विशेष के विषय में भी वही स्वीकार कर लिया जाता है। किन्तु मानव स्वभाव में भेद होता है। इसके विपरीत जब विशेष से सामान्य निष्कर्ष (Deductive) निकाला जाता है, तब अनुसंधान-कर्त्ता का मन सीमित रह जाता है। कुछ का अध्ययन करके प्रीतिरूप से उसे सबके बारे में मान लिया जाता है। इसलिये आवश्यक यह है कि दोनों ही पद्धतियों को अपनाने से जो तथ्य निष्कर्ष उन्हीं को अधिक महत्त्व दिया जाये। इनको अलग अलग करके बैलना समावधानात्मक अध्ययन के लिये हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

वार्त्तनिक मत निर्धारण पद्धति में हम अतीत के वर्त्तनों की सहायता लेते हैं। इस प्रकार भी अनेक मत बनाये जाते हैं। किन्तु प्रत्येक संयोजन अस्वाभाविक और समाज में हम इस प्रकार पहुँचने से अपनी पैठ करना कठिन हो पाते हैं। किन्तु इसमें अनुसंधान-कर्त्ता का अपना वार्त्तनिक मतनिर्धारण सामने आ जाता है और वह उसी के आधार पर सारी व्याख्या करता बना जाता है।

सांख्यिकीय पद्धति में अंकों और संख्याओं के आधार पर अध्ययन किया जाता है। प्रत्यः यह पद्धति अपने गणित के ठोस आधार के कारण अधिक प्रबलित होती आ रही है। किन्तु इसका समावधानात्मक में अनेक अधिक व्यापक नहीं है। जन-संख्या तथा ऐसे ही विषयों तक प्रत्यः इसकी पहुँच है। किन्तु यह प्रत्यः भावात्मक अध्ययन है और इसका बुद्धात्मक अध्ययन से अधिक संबंध स्थापित नहीं हो सका है। जब तक मानवनात्मक अध्ययन के साथ अच्छी व्याख्या नहीं होती तब तक संख्या और अंक अधिक समर्थ नहीं बन पाते।

मूखियम सर्वेक्षण पद्धति में अनेक अतीत की वस्तुओं को स्रष्टावय से एकत्र करके विशेषज्ञों द्वारा वस्तुमान-कालीन वस्तुओं से उनका तुलनात्मक

अध्ययन होता है और ये विकास-क्रम को देखने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु इसमें भी एक कमी रहती है कि कामनिर्धारण कठिन होता है। रेडियो कार्बन विधि-निर्णय की प्रणाली प्रत्येक वस्तु पर लागू नहीं होती। घात विरोधज्ञा में मतभेद हो जाना कठिन नहीं होता।

साधारण बुद्धि पद्धति में हार्प यह मानता है कि हम अपनी सामान्य बुद्धि से ही बहुत से तथ्य एकत्र कर सकते हैं। वस्तुतः यहाँ पद्धति प्रत्येक पद्धति के युग में होती है।

घात समाजशास्त्रीय अध्ययन वास्तव में बहुत सस्मिष्ट कार्य कहना सकता है। इसमें हमें विभिन्न विज्ञानों में काम पड़ता है।

भाषार भूमि पद्धति (Method of Hypothesis) में हम कोई भी काम प्रारम्भ करने के पहले अपने मन में एक धारणाया को भाषार-भूमि बना लेते हैं। विषय के अनुसंधान का हो इससे सहारा लिया जाता है। किन्तु अपने आप में यह भी ठीक पद्धति नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि विषय के अनुसंधानों के जा एतत्त्वक्य परिणाम हम निकालें वे हमारे लिए एक ठीक भाषार-भूमि ही बन जायें।

मानव जीवन के समस्त रूप और कार्य-व्यापार एक दूसरे से असंपृक्त नहीं उनका आन्तरिक-बाह्य संबंध होता है। किसी को भी समझ कर उसका विषय अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु संपूर्ण का अध्ययन घन विषय में सीमित नहीं हो सकता। आधुनिक दार्शनिक-विज्ञान में बाहर सौभाग्य में कोई कान विरोध होत है, कोई धार्मिक-विरोध किन्तु संपूर्ण दार्शनिक के विरोध नहीं बन सकते। इसीलिये संपूर्ण का अध्ययन एक व्यापक दृष्टि चाहिये है।

समाजशास्त्र का सबसे प्रथम सभी सामाजिक विज्ञानों में है। उसका जीवनशास्त्र वनस्पतिशास्त्र तथा रसायन और भौतिकशास्त्रों से भी संबंध है।

सामाजिक उत्पत्ति वस्तु विवरण वस्तु-अवयव-अवयव इत्यादि अध्ययन के विषय होने पर भी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है। प्रत्येक सामाजिक प्रक्रिया का एक सामाजिक मूल्य होता है।

मानव का अध्ययन होने के कारण समाजशास्त्र है। सिय मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक जीवन में अनुपपन्न विचारों से प्रेरित होता है, यह जानना समाजशास्त्र का विषय है। समाज में अनुपपन्न क्यों रहता

सर्वेष्टण पद्धति दो प्रकार की होती है। एक में अनुसंधानकर्त्ता सीधे ही वातचीत करता है। दूसरी में वह किसी के माध्यम से वातचीत करता है।

किन्तु प्रायः यह पद्धति एक बाप के बसीमूत होती है। अनुसंधानकर्त्ता की प्रपत्ति भी एक बिचारबारा होती है और इसलिये यह प्रायः ही पूर्वाग्रह बनाम खड़ा है। प्राप्त तथ्यों को वह मनोनुकूल रूप में ही ग्रहण करता है। पूर्वाग्रह जातीय, धार्मिक, वर्ण संबंधी या अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

निर्धारण (Inductive) पद्धति में सामान्य से विशेष की ओर बल प्रयोग किया जाता है। अनेक सामान्य समाजशास्त्रों में तथ्यों को एक कर विशेष निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामान्य निष्कर्ष के आधार पर विशेष के विषय में ही स्वीकार कर दिया जाता है। किन्तु मानव स्वभाव में भेद होता है। एक विपरीत जब बिनाप से सामान्य निष्कर्ष (Deductive) निकाला जाता है, तब अनुसंधान-कर्त्ता का ध्यान सीमित रह जाता है। कुछ का अध्ययन करके शेषतः रूप से उसे सबके बारे में मान दिया जाता है। इसलिये प्राक्कल्पक है कि दोनों ही पद्धतियों को अपनाते से जो तथ्य निकलें उन्हीं को अधिक महत्व दिया जाय। इनका प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष करके देखना समाजशास्त्रीय अध्ययन में सिने हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

वार्त्तिक मत-निर्धारण पद्धति में हम अतीत के वर्त्तनों की सहायता लेते हैं। इस प्रकार भी अनेक मत बनाये जाते हैं। किन्तु प्रत्येक संगठन संस्था और समाज में हम इस प्रकार गहराई से अपनी पैठ करना कठिन हो पाता है। किन्तु इसमें अनुसंधान-कर्त्ता का अपना वार्त्तिक मतनिर्धारण सामने आ जाता है और वह उसी के आधार पर सारी व्याख्या करता जाता जाता है।

सांख्यिकीय पद्धति में व्यक्तियों और संस्थाओं के आधार पर अध्ययन किया जाता है। प्रायः यह पद्धति अपने गणित के छोटे आधार के कारण अधिक प्रचलित होती आ रही है। किन्तु इसका समाजशास्त्र में क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं है। जन-संख्या तथा ऐसे ही विषयों तक प्रायः इसकी पहुँच है। किन्तु यह प्रायः मात्रात्मक अध्ययन है और इसका गुणात्मक अध्ययन से अधिक संबंध स्थापित नहीं हो सका है। जब तक मात्रात्मक अध्ययन के साथ अपनी माहिरा नहीं होती तब तक संख्या और मात्रा अधिक समर्थ नहीं बन पाते।

व्युत्थित सर्वेष्टण पद्धति में अनेक अतीत की वस्तुओं को संग्रहालय में एक करके विशेषज्ञों द्वारा वर्त्तमान-कालीन वस्तुओं से उनका तुलनात्मक

अध्ययन होता है और वे विकास-क्रम को देखने का प्रयत्न करते हैं। किंतु इस में भी एक कमी रहती है कि कासमिधारण कठिन होता है। रेडियो कार्बन विधि-निर्माण की प्रणाली प्रत्येक वस्तु पर लागू नहीं होती। अतः विशेषज्ञों में मतभेद हो जाता कठिन नहीं होता।

साधारण बुद्धि पद्धति में हार्थ यह मानता है कि हम अपनी सामान्य बुद्धि से ही बहुत से सत्य एकत्र कर सकते हैं। वस्तुतः यही पद्धति प्रत्येक पद्धति के मूल में होती है।

अतः समाजशास्त्रीय अध्ययन वास्तव में बहुत सस्मिष्ट कार्य कहसा सकता है। इसमें हमें विभिन्न विज्ञानों से काम पड़ता है।

आधार भूमि पद्धति (Method of Hypothesis) में हम कोई भी कार्य प्रारम्भ करने के पहले अपने मन में एक आराखो की आधार-भूमि बना लेते हैं। विषय के अनुसंधान का ही इसमें सहारा लिया जाता है। किंतु अपने आप में यह भी ठीक पद्धति नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि विगत के अनुसंधानों के जो फलस्वरूप परिणाम हम निष्कर्षों से हमारे तिय एक ठीक आधार-भूमि हो बन जायें।

मानव-जीवन के समस्त रूप और कार्य-व्यापार एक दूसरे से अलग नहीं उनका अन्तर्भावित संबंध होता है। किसी को भी धसग करके उसका विशेष अध्ययन किया जा सकता है किन्तु संपूर्ण का अध्ययन धन विशेष में सीमित नहीं हो सकता। आधुनिक शरीर-विज्ञान में डाक्टर लोगों में कोई काम विशेष होते हैं, कोई शल्य-विशेषज्ञ किन्तु वे संपूर्ण शरीर के विशेषज्ञ नहीं बन सकते। इसीलिये संपूर्ण का अध्ययन एक व्यापक दृष्टि चाहता है।

समाजशास्त्र का सबब प्रायः सभी सामाजिक विज्ञानों से है। उसका जीवशास्त्र वनस्पतिशास्त्र तथा रसायन और भौतिकशास्त्र से भी संबंध है।

सामाजिक उत्पादन वस्तु वितरण वस्तु प्रयोग-धन इत्यादि अर्थशास्त्र के विषय होने पर भी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। प्रत्येक धार्मिक प्रक्रिया का एक सामाजिक मूल्य होता है।

मानव का अध्ययन होने के कारण समाजशास्त्र के लिये मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक जीवन में अनुपपन्न विचारों से प्रेरित होता है यह जानना समाजशास्त्र का विषय है। समाज में अनुपपन्न रहता

है। उसकी समुदाय प्रकृति इसके लिए उत्तरदायी है। कुछ के मतानुसार मनुष्य के रूप में जो बातें होती हैं—उसकी प्राणि-चेतना और उसको सामाजिक चेतना। प्रथम में आनुवंशिक सामर्थ्य होती है जिसके द्वारा वह परंपरा रिवाज, इत्यादि को समाज में अपनाता है। सामाजिक चेतना में मनुष्य अपने समस्त सामाजिक कार्य करता है। बानों ही चेतनाएँ वास्तव में मनोव्यापित होती हैं। व्यक्ति समाज में अपने सिध स्वागत बनाता है और इसलिये वह अपने को कुछ झुकाता उठाता है। प्राणि चेतना प्रकृति (Instinct) से संबंध रखती है। सामाजिक चेतना सर्क और संसर्ग से उत्पन्न होती है। समाज में मनुष्य किस प्रकार रहे, वह इसी चेतना द्वारा ज्ञात होता है। व्यक्ति में दो प्रकार की प्रवृत्तिएँ होती हैं। एक का परिचासन उसके प्रवृत्तियों और प्रकृति द्वारा होता है दूसरे का पारस्परिक संबंधों द्वारा। उसकी सामाजिक चेतना का संचालन सामाजिक दृष्टिकोण (attitude) द्वारा होता है। व्यक्ति की सामाजिक चेतना पर प्रभाव व्यक्ति की प्राणिचेतना का भी निरंतर पड़ता रहता है। व्यक्ति से व्यक्ति तक जाते-जाते हमें जो उनके व्यवहारों में भेद मिलता है, वह इसीलिये कि प्राणिचेतना में भेद होता है। सामाजिक चेतना ही उनके सामाजिक व्यवहार और क्रिया-कलापों को समाज के अनुकूल बनाती है।

सामाजिक मनोविज्ञान हमारे सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहारों की व्याख्या करता है। समाजशास्त्र व्यक्ति के मनोविज्ञान को समाज से सापेक्ष करके देखता है, जब कि मनोविज्ञान व्यक्ति को ही अपना पूर्ण क्षेत्र मान लेता है।

समाजशास्त्र का विधि-विज्ञान (Jurisprudence) से भी संबंध होता है। विधि-विज्ञान में हम कानूनों के बारे में अध्ययन करते हैं। कानून राज्य द्वारा लागू होते हैं। राज्य ही उनका परिचासन करता है। मनुष्यों में अस्तित्व से समाज का निर्माण होता है। समाज बिना मनुष्य के नहीं रह सकता। समाज मनुष्यों से ही बनता है। समाज और व्यक्ति का संबंध प्राचीन काल से ही है। मनुष्यों का जीवन सुचारु रूप से चले इसीलिए समाज बना है। इस व्यवस्थामय अस्तित्व के लिये कुछ धार्मिक कानून प्रारंभ से ही बनाये गये हैं। मनुष्य ने समाज में विधियों के अनुसार जीवन व्यतीत किया है। समाज ने ही राज्य को भी बनाया है। राज्य के नियमों को विधि या कानून कहा जा सकता है। सरकार नियमों का प्रतिपालन करती है।

किन्तु नियम या विधि अपने आप हवा में से नहीं बन जाते। मनु ने तो कहा है कि विधि वेद के अनुक्रम हो परन्तु उससे भी आवश्यक है कि वह वेद विशेष की परम्पराओं का निर्वाह करे। हिन्दुओं के लिये बने नियम मनुस्मृति के आधार पर ही थे। सामाजिक जीवन और परम्पराओं को देखकर ही विधि नियम की जाती है—अथवा सोम उन विधियों को स्वीकार नहीं करते। विरोध होते हैं।

समाजशास्त्र का नीतिशास्त्र (Ethics) से भी सहारा सम्बन्ध है। नैतिक नियमों और सामाजिक नियमों में सफर काफी निकट होता है। किन्तु दोनों में भेद भी वर्तमान होता है। नैतिक नियम बचने नहीं जा सकते क्रमशः बनते हैं, किन्तु सामाजिक नियम बनने जा सकते हैं। नैतिक नियमों के पीछे एक प्रकार की कर्म भावना होती है। यद्यपि उन्हें पवित्र माना जाता है।

प्रासिद्धिमान और समाजशास्त्र का भी संबंध होता है। मनुष्य प्राणी है, बीम है। सभी वह समाज का सदस्य बनता है। व्यक्ति पहले प्राणी होता है तब होता है सामाजिक। कास घटे बढ़ाता है। मानव विकास के अध्ययन के लिये हमें प्रासिद्धिमान का भी अध्ययन आवश्यक होता है, क्योंकि एक दूसरे के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। मानव विकास के साथ ही सामाजिक विज्ञान भी विकसित हुआ है और निरन्तर होता जा रहा है।

समाजशास्त्र का इतिहास से काफी संबंध है। किसी भी समाज और संस्था के अध्ययन के लिये आवश्यक है कि उसका भवित्त्व देखा जाये। इस प्रकार इतिहास और समाजशास्त्र की पतिष्ठता स्पष्ट हो जाती है।

विज्ञान का बाध भारतीय समस्या

आज प्रत्येक विषय का अध्ययन करते समय हम विज्ञान की भरसक सहायता लेने की चेष्टा किया करते हैं। और इसीलिये भारत में यह प्रवृत्ति बढ़ रही कि हम अतीत में भी विज्ञान की उन्नति विज्ञान की चेष्टा करने लग गए हैं। हमें जो पुनर्जागरण कहा जा सकता है। परन्तु दूसरी ओर एक अतिबाध है। भारत में पहले कुछ भी नहीं था जो आया वह बाहर से ही आया है। औपवीय विज्ञान भारत के ज्ञान का स्रोत पहले यूनान का मानते थे और अब विचार होकर वे मैसेडोनिया को भारत का घुस बताने लगे हैं।

हमारे सामने शान्ति प्रकार की बातें हैं। एक ओर अति राष्ट्रीयता है, उन्नी और राष्ट्रीय-तिरस्कार। किन्तु हमें किसी भी ऐसी विचारधारा से अलग होने की आवश्यकता नहीं है।

किसी भी देश की प्रौद्योगिक उन्नति (Technological Advancement) वहाँ के विज्ञान से गहरा संबंध होता है। इस उन्नति से सम्बन्ध का विकास आता है। लेकिन इससे संस्कृति की जीव नहीं की जाती। संस्कृति का अध्ययन अन्य भाषाओं से किया जाता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का संबंध सम्बन्ध की उपलब्धियाँ और उनकी प्राप्ति पर प्रकाश डालता है। अतः आवश्यक हो जाता है कि भारत के अतीत पर दृष्टिपात करें और यह देखें कि भारत में पहले कितनी उन्नति थी थी।

सम्पत्ता को बाह्य-विकास कह सकते हैं। संस्कृति मानव का आंतरिक विकास है। परन्तु बाह्य और आंतरिक का परस्पर संबंध होता है। हमारी बहुत सी धारणाएँ अपने युग के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होती हैं। भारतीय संस्कृति ने अपना खेप्ट लक्ष्य योग को माना है। योग अततोपरवा विज्ञान ही है। दाय देशों में धर्म कसा है, भारत में उसका ध्येय विज्ञान की एक विजय ही है। देखने को समता है कि यह एक विरोधाभास है परन्तु ध्यान से देखने पर यह विस्तृत स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य का विकास आंतरिक हो यही भारत को चेप्टा रही है। परन्तु उगने बाह्य का भी ठिठकार नहीं किया था। विकास की ओर भारत ने प्रयत्न प्रयत्न किया किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी थी कि उसे बाह्य विकास का अधिक प्रयत्न और प्रयत्न प्राप्त नहीं हुआ। राजनीतिक और सामाजिक कारणों ने भारतीयों के विकास को बरिष्ठ कर दिया। इनके बावजूद भी भारत ने मानव के अन्दर का विकास करने की चेप्टा की थी।

पश्चिम ने एटम बम बनाया है। पूर्व के लोगों ने मुना और धारम में किया। कुछ दिनों बाद लोगों को उज्ज्वल बम के बारे में पता चला जो अपनी प्रयत्नता से कई गुना ध्येय बना हुआ था। अभी पूर्व इसे पूरे तरह से रमा भी नहीं पाया था कि सहसा आकाश में मानव के फेंके हुए नकली उपग्रह घुमने लगे और रॉकेट अग्रमा की ओर जाने लगे। विज्ञान की एक उन्नति ने एकदरे, बेठार के ठार इत्यादि सब अन्वेषण पीछे छोड़ दिये। लेकिन फिर भी भारत में एक आवाज उठी : अपना यहाँ पहले यह सबकुछ था। समय ने उसे नष्ट कर दिया।



चित्र १—बहुता की उत्तरियाँ। संस्था पूरी नहीं है।

प्रत्येक आश की बात का नहीं है इसमें प्राचीन भारत की संस्कृति और इतिहास का प्रदन है। भारत के शास्त्रों में अम्यास्य बायभ्यास्य ब्रह्मास्य इत्यादि अमानक फेंके जाने वाले हविषाओं का भी वर्णन आया है, के क्या किसी समय इस चेप्ट के मनुष्यों के पास सबकुछ थे ? या वह सब मनुष्य की स्रपना है ? मनुष्य की कल्पना कितनी हो

गकती है ? इसका कोई घंठ नहीं है । यदि मुझे कोई पूछे कि संसार में मनचिप (सिनेमा) की कल्पना सबसे पहले किसने की तो मैं कहूँगा कि हिन्दी के ही एक लेखक ने । लेकिन क्याकि हिन्दी के लेखक की उस समय विस्तृत ही पूछ नहीं थी इसलिये उसका उल्लेख भी किसी ने नहीं किया ।

उस हिन्दी के लेखक का नाम था—देवकीनन्दन खत्री । उसने बम्बईका संतति में इंग्लैण्ड के तिसरम में सिनेमा के ॥ प्रकारांतर की कल्पना विपत शास्त्री में की थी । उस समय यूरोप में सिनेमा नाम की कोई चर्चा नहीं थी । यह सब ज्ञाते हैं, कि उस समय संसार में सिनेमा नहीं था लेकिन देवकी नन्दन खत्री ने काँच की बीमार के पीछे रात में बिजली के धोर से पुतलों में जाल भरकर पूरा महाभारत का नाटक कर दिखाया । एष भी वैष्ण को इंग्लैण्ड का वैज्ञानिक कपाकार माना जाता है । वह लिखता था कल्पना करता था और वैज्ञानिक वैसी ही चीजें ईजाद करते थे । तो यह स्पष्ट ॥ कि कल्पना हो सकती है । कल्पना अनन्त होती है, पर उसके लिये भी आधार होना चाहिये । तो पहले आधार क्या था ? आधार था पशु-पक्षी प्रकृति प्रादि का साम्य । पक्षी चढ़ता है, तो उड़नखटोसा भी उड़ने लगा ।

लेकिन हमें इसे इस प्रकार सहज नहीं समझना चाहिये । पहले हमें भारतीय विज्ञान की उपलब्धियाँ देखनी होंगी । पृथ्वी किताबों तथा इतिहास में भारत की बहुत सी आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हमें मिलती हैं ।

वेद में वर्णन है, कि अश्वनीकुमार बड़ा अन्ध्रा धौपरेधन (धर्म-चिकित्सा) करते थे । उन्होंने विषयता की जाँच कटन पर ही की थी । यदि स्वान की सभी प्राँखों को उजासा दिया था । ज्यवन की ज्वानी लौटापो थी । उपनिषद् में नारद ने सर्व विष चिकित्सा इत्यादि अनेक विचारों की खोज की थी ।

रामायण में अरुणा की बात छोड़ दें तब भी तप्त-नील जैसे ज्वररस्त ह्रीनियर के और सुपेण जैसे अन्ध्रा वैद्य था ।

महाभारत में शिखण्डी का उल्लेख बहसा था । (क्या स्मृत्यान्तर्गत वस कोई वैद्य था ? क्या तब इतना ज्ञान था ?) ईसा के आसपास के युग में भारत ने सबसे पहले ० (यूसु) की ईजाद की थी । इस क्रान्तिकारी परिवर्तन ने संसार के दणित को ज्वररस्त तरकी की तरफ बढ़ाया । पहले ही लिखने के लिये यूरोप वाले X को दस बार लिखते थे—XXXXXXXXXX
१०० लिखने में तो आपत्त था जाती थी । भारत ने तो विभिन्नों में

कमास कर दिया। न कुछ जोड़ने में संख्या बढ़ा दी। धरम के लोग यही से बँक ले गये जो यूरोप पहुँचे। वे बँक को 'इन्वेंसा' कहते थे।

सोच बुझिबडते ज्योतिषी (ज्योतिषि) का प्रारम्भ मानने हैं। पर भारत में उपनिषदों और सूत्रों में ही यज्ञभूमि के मापने और निर्माण में त्रिकोण आदि बने थे। त्रिकोण परम्परा में तो त्रिकोण आदि का ज्ञान और भी बहुत पुराना है। आपस्तम्ब में हमें त्रिकोण का निर्माण बृहत् पुराणा मिलता है।

आपस्तम्ब इसा में बहुत पहले ही ज्योतिष विज्ञान का आचार्य माना जाता था। पालकाप्य बहु-चिकित्सा करता था। पंचास नामक नाम-विज्ञान का सम्यक् था। हारीश विष-चिकित्सा करता था। औषधायन में रेखाचित्र के उल्लेख मिलते हैं। साटयायन इमि-यास्त्र (कीड़े मकोड़े के विज्ञान का ज्ञानकारी) का पण्डित था। लख ज्योतिष का पण्डित था। वेद आधुर्बेरा चार्म था। पित्तानह ज्योतिष का पण्डित था। चरक आधुर्बेराचार्म था। ईसा से पहले ही इनके अतिरिक्त हमें और भी नाम मिलते हैं। अश्व-अश्व विद्या (पशुचिकित्सा) के पण्डित का नाम बृहत् आश्वक मिलता है। अश्व और घोड़ा विज्ञान के पण्डित से आधुर्बेरा और आश्वक।

ईसा के बाद भी अनेक पण्डित भारत में हुए। मनुष्य के शरीर की बीमारियाँ करके उसे भीतर से देखने वाला संसार का सबसे पहला विज्ञान मनुष्य था। उसी ने शरीर की पहली जाँच की थी। ब्राह्मण था और इस नाम के लिये मुँह खुल कर काटता था। एक दिन पकड़ा जाकर पिटा और पिटाए और पत्थर पहनाया। परन्तु कुछ दिन बाद सोमो ने इसरी महत्ता को समझा। ईश्वर की परम्परा बहुत दिन तक चलती रही। ईसा की पाँचवीं सदी की धरम में भारत के बीच मनका (माणिक्य) का बड़ा सम्मान हुआ।

ईसवी ४७६ में आर्यभट्ट ने संसार में सबसे पहले यह कहा था कि यह पृथ्वी झुण्डो है और सूर्य का चक्कर लगातो है। इस धम्मा के समय ६००० वर्ष बाद ही कोपर्निकस के द्वारा यूरोप को इसका पता लगा। लेकिन यह विद्वान्त भारत में माध्य नहीं हुआ। लल्ल ने इस तर्क को काटा था। अपने कहा था कि यदि पृथ्वी झुण्डो है तो सबसे अँधेरे से उड़ो बिड़िया को धाम के बड़ धम्मा बँधमा नहीं क्यों मिलता है? सीधी-सी बात थी लोगों ने मान ली। उस समय तक पृथ्वी के आकर्षण तथा उसके आधुर्बेरा के अपने मिले रहने की बात लोग नहीं जानते थे।

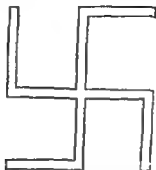
मैक्सिम स्मूट १९७८ ई० के लगभग मास्कराचमों हुआ। उसने स्पूटन १ १०० वर्ष पूर्व के लगभग संसार में पहली बार पृथ्वी के आकर्षण के सिद्धान्त को प्रमाणित किया। सम्भवतः इस जन्म के २०-२२ वर्ष बाद ही गोरी का हमला न होता तो खोज बढ़ता पर नया हमला चाही संस्कृति को भी उखाड़ दे रहा था, कितामें जमायी जा रही थी। विज्ञान का काम बन्ना हो गया। भारत की शक्ति संस्कृति को बचाने में अब गयी। जर्म के लिये संत भक्ति होने लगे।

किन्तु भारत में इतनी ही खोज हुई हा ऐसा नहीं है। गणित में यहाँ भारी काम हुआ। अरब-वासियों ने सस्सा बिन बाहुर नामक एक भारतीय पण्डित का उल्लेख किया है। बाहुर विद्या का उपनिषदों में उल्लेख पाया है। बाहुर भारतीय सभ्य है। बिन अरबी सभ्य है, जिसका अर्थ है बटा। सस्सा शायद सशि जैसे किसी सभ्य का बियड़ा हुआ रूप है, यदि माणिक्य का घरबों में नाम चलता है मनका। इस सस्सा बिन बाहुर ने छतरंज के खेल की ईजाद की थी। छतरंज का नाम कुछ लोग चतुरंज से निकला मानते हैं, जिसका अर्थ है चार हिरनों से लैस फौज। कुछ लोग कहते हैं कि 'छतरानि रंजमसि' (छा का मनोरंजन एक साम करती है) अतः यह छतरंज है। तो बाहुर ने अपनी खोज राजा शिरराम (बीराम) को बतायी। राजा ने इनाम माँगने को कहा। उसने माँगा एक बिछाट पर चौंसठ खाने हैं। पहले पर एक बाना में रखा जायें। दूसरे पर दो तीसरे पर चार चौथे पर आठ और इसी तरह बढ़ाते जायें। राजा ने कहा यह तो मामूली बात है। पर जब बान रले बान सब तो बिचाना निकल गया। पूरे चौंसठ खाने मरने के लिये १८४४६७४४ ७३७०६ ३३१ ११२२ बानों की जरूरत थी। संसार में गेहूँ की ओ पैदावार है, यदि २ ० वर्ष की पैदावार भी सी पाव तो ही यह इसको पूरा कर सकती है।

इस कथा से गणना अपरिमित संख्या और भारतीयों का धनत्व का ज्ञान प्रकट होता है।

किशकिशियों में इस प्रकार का ज्ञान बहुत बिलचस्पी से प्रकट किया गया है। इसी तरह की कथा है, कि काशी में एक पुम्बय ॥ ओ संसार का मय्य-विन्दु है। उसमें एक लंबि की लम्बी है। उस पर तीन हीरे की कीलें जड़ी हुई हैं। उनमें एक पर सोने की ६४ लस्तरियाँ रखी हैं। सबसे भीषे की सबसे बड़ी है। और सबसे ऊपर की सबसे छोटी। यह बह्या की भीनार है। वहाँ का पुजारी

हमारी स्वस्तिका भी भगम का ही चिन्ह है। इसके छोटे बड़े पर भी सभी मिलेंगे नहीं।^१



चित्र ३

इसी प्रकार वर्ग संहिता में कहा गया है कि एक बार कृष्ण अपने गोमूक में थे। उनसे मिलने बड़ा विष्णु महेष्ट गये। राधा मिली। इन दोनों ने कहा कि हम कृष्ण से भिन्नता चाहते हैं। हम बड़ा विष्णु महेष्ट हैं। राधा ने पूछा : आप किस और-मंडल के बड़ा विष्णु महेष्ट हैं। यह कह कर राधा ने उसी के द्वारे से कई सुदृढ़ गोले बिछाये। वे तट्ट तट्ट के सोक थे जो जल छल्ले से बूझ जाते थे।

यह कहा बतायी है, कि भारतीय प्राचीन काल में सैकड़ों और मंडलों का होना मानते थे।

वामनपुर के प्रणवनाथ में कहा गया है कि सात ग्रहों के साथ एक सूर्य को ब्रह्माष्ट कहते हैं। ऐसे ७ ब्रह्माष्टों से एक जगत बनता है। जैसे १ ० जगत से एक विश्व बनता है। जैसे षड् करोड़ विश्वों से एक महाविश्व बनता है। जैसे दो स्रज महाविश्व एक लोक के बराबर होते हैं। जैसे १ महास्रज

१ स्वस्तिका बहुत प्राचीन चिन्ह है। यह हरप्पा और मोहनजोदड़ो में भी प्राप्त हुआ है। प्राचीन हीलियोलिथिक संस्कृति (१५ ० वर्ष पूर्व) में भी इस चिन्ह को प्रकट किया जाता था। कुछ लोगों का मत है कि स्वस्तिका परवर्ती काल में बहुतों को यज्ञोपवीत का प्रतीक-चिन्ह थी। स्वस्तिका आज भी ग्राम ग्राम में सुब चिन्ह मानी जाती है। मिरासर ने अपने की शर्मा समझकर ही इसे स्वीकार किया था।

लोक से एक महालोक बनता है। धीरे-धीरे १०० परम महालोकों से एक संसार बनता है। यह कहानी बताती है कि भारतीय प्राचीन काम में यह नहीं भागते थे कि बस इसी पृथ्वी पर सबकुछ है। धीरे-धीरे अंतर्मुख लोक है। यह विचार कितना पुराना है? कैसे बताया जा सकता है। वेद में 'पुरयसूक्त' में बताया गया है कि यह सृष्टि कैसे बनी। उसमें जब निर्माण का उल्लेख है तब कहा गया है कि 'यथापूर्वम कल्पयत धर्मात्' पहले वैसी बनायी। पहले कब? भारतीय चिन्तन ने सबकुछ को साहकित (चक्र) बना माना है। यह चलता है, चलता ही रहेगा। इसीलिए हमारे यहाँ ९ वर्षों का एक चक्र माना जाता है। हर संवत्सर का प्रलय नाम होता है। जब ९० समाप्त हो जाने हैं तब फिर पहले से गिनना शुरू कर देने हैं। इसी मनोवृत्ति के कारण हमारे यहाँ कल्पवृक्ष इतिहास भी लिखने की धार रखता नहीं समझी गयी। प्राचीनतम पुराणों में भी इतिहास के चिन्ताप्रद भाग को ही छोड़ दिया गया है। तो यह 'चक्र' मानना हमारी संस्कृति में कठोर ध्येय है। यह परंपरा कब से है? चक्र मोहनजोदड़ो में लिपि में धारा है। पुराणों में उल्लेख है, कि रावण ने हस्तिनापुर (हस्तिनापुर) (धर्म्य नाथों की पुरानी बस्ती जिसे कुरुओं ने जीत लिया था) से बर्मेचक्र से जाकर लका में स्थापित किया था। बहुत बाद में यह रघुवर्षी सिम्बलविगण में मिलता है। इसे सिम्बलविगो से लेकर अष्टोक्त में बताया। समय २२०० वर्ष बाद फिर इस बनावुरमान नेहक ने बताया है।

धर्मव (इतिहास) की भावना तो भारत में बहुत प्राचीन है। ब्राह्मन्विद्वान ने प्रमाणित किया कि हमारा समय सूर्य की गति के कारण है। हमारी पृथ्वी का जो सूर्य से सम्बन्ध है, उसने कारण ही दिन-रात है और हम इसे समय कहते हैं। यह सूर्य से सापेक्ष है। पर समय इसी में सीमित नहीं है। यह विज्ञान भारतीय जानते थे। पौराणिक कथा है, कि सत्ययुग में एक राजा ने जिनका नाम था देवत। उनको लड़की देवती को बर नहीं मिला तो वे सत्ताह सेने ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास गये। वहाँ उस समय ब्रह्मलोक में हाहा और हूह नामक गम्भीर गाना गा रहे थे। राजा देवत भी गाने की समाप्ति की प्रतीक्षा में बैठ रहे। इस पाँच मिनट में पीछे लम्बे हुए। ब्रह्मा ने स्वागत करते उनके जाने का कारण पूछा। जब राजा ने बताया तो ब्रह्मा हँसकर बोले—तुम जो इस लोक में बस मिनट बैठे रहे पृथ्वी लोक में तो सत्ययुग धीरे-धीरे बीतकर अब आपर समय गया।

धर्मी, वैष्णव, वैदिक और अवैदिक धर्म और धर्म तांत्रिक इत्यादि सबने ही स्वीकार किया है।

भारत को यह वैज्ञानिक उन्नति विधिबद्ध रही है, पर हमें कोई एक कानून सा नहीं मिलता। यागियों की एक धारणा में बड़े-बड़े ईश्वर हैं जिनमें सर्वदेवता का नाम लिया जा सकता है। वे स्वतन्त्रता को मानते थे। उनका हिस्सा वे पारा भगवान् शिव का योग्य है, और नभक देवी पार्वती का राज। वे इनको सिद्ध करते थे। उन्होंने ही बड़ी बूटियों की खोज बढ़ायी। जैसे तो प्रायुर्वेद में 'काष्ठ' चिकित्सा पुरानी है। कहते हैं गौतमबुद्ध के समय में एक जीवक नामक ईश्वर था। वह उत्तरीय में पड़ा था। पुत्र ने उससे कहा था कि मुझे एक कोश के घेरे में से ऐसी बड़ी बूटी चुन कर ला दे जिसकी दवाई न बनती हो। वह महीने भर तक ढूँढ़ता रहा पर उसे ऐसी कोई बूटी नहीं मिली। जीवक बीरफाड़ी भी करता था। उसने राजा बिम्बिसार की मर्त्यदण्ड छीक भी दी। उसने एक बार एक मिस्रु का शोषण किया। चूँकि उन दिनों क्लोटोफार्म (बेहोशी की दवा) न थी मिस्रु के बहुत दर्द हुआ। उस वीरम बुद्ध ने शोषण को हिंसा कह दिया। बुद्धों बीजों के प्रभाव ने इस विज्ञान को मज्जा किया। धारण के समय में सुमाधुत बढ़ गयी। मुझे बीरम बिम्बिसार को मज्जा किया। धारण के समय में सुमाधुत बढ़ गयी। मुझे बीरम तो शोषण और हड्डी बैठाना सुतना सब था पड़ा हमारे बराबर-मार्द पर। मांस मांस में मार्द भी डाक्टर होते हैं। पर सर्वदेवता ने काष्ठ के साथ धातु की दवा बनायी। सोमा बीजों से लोहा इत्यादि का मस्य करना। दवाओं का वृद्धि में चमत्कार आया। लेकिन बीजों से इन दवाओं से काया मुख कल्ले थे। और भारतीय समाज में यह बीज धारण की एमासी का धारण बनी और बीज बीजों में खोज खोजकर, दवाओं का स्तन इत्यादि की दवाएँ बनायी।

पर इसी धारणा में राजा भोज और व्याधि का नाम लेना होगा। व्याधि विज्ञान के चमत्कार बिनावा था। भोज की एक किताब मिली है, जिसमें विमान बनाने की तरकीब है पर उड़ता वह कैसे था यह पता नहीं है। धारण कोई पुष्पांश से उड़ाने वाला होता। विमान बीजों बीजों की भी तो आधारण उड़ान करने वाली। धारण के से जहाज नहीं थे। बीज धारण में भी विमानों का वर्णन है पर उड़ते कैसे थे यह स्पष्ट नहीं होता। धारण का शिको-रसावन के क्षेत्र में वर्णन है कि दवाओं से धारणों के

विमान को बिपाड़ा या तकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि किन जड़ी-बूटियों से वे ऐसा करते थे। प्राचीन जाम में अण्डे मसाले बतते थे। पत्थर की रोगन बनती थी। अक्षरब और बुद्ध के दाब को बहुत दिनों तक तैम में रखा गया था कि वे सड़ें नहीं।

यह दो बातें ऐसी हैं, जिन्हें सुनकर ही आश्चर्य होता है। सब जानते हैं कि एक किताब है, जिसे 'भूष-संहिता' कहते हैं। इसमें सवा लाख अक्षरपत्रियाँ हैं, और हर एक के तीन जम्मा का अभिप्राय है। जो सुनता है, वह इसे पंडितों की पोषणीता कहता है। पर इसके पीछे सचार्थ क्या है? वह भारत का पुराना विज्ञान है। उन दिनों मारनीयों ने रातों-रात जाकर आकाश का बिना दूर बोन के ही अध्ययन किया। यह अक्षय छति क्योंकि वे अच्छी अवस्था बदलने में। फिर नक्षत्र छटिते। फिर राशिमाँ देखो। पर उन दिना मनुष्य यह भी समझता था कि जो कुछ है वह आकाशी के लिए है। जब उस समय के विज्ञान ने आकाशी और चिंतारों का संभव जोड़ा अयोधिया बिद्या बनी। पर वह पूर्णरूप से सफल नहीं रही। इसका कारण यह है कि जब तक यह बिद्या संपूर्ण है। और से देखा जाम तो संपूर्ण आकाश का अध्ययन मध्य समय और विक (कम्प्यूटिड टाइम एण्ड स्पेस) का अध्ययन है। ऐसा अध्ययन होने पर अभिप्राय अपने आप स्पष्ट हो जाएगा। पर यह देखना आवश्यक है, कि भूष-संहिता के पीछे मनुष्य का चिंतना परिचय है। आकाश में तारे देखना वह देखना अन्त समय देखना फिर कई-कई लोगों के जीवन के बारे में पूछना निष्कर्ष निकालना सहज नहीं है। साईं बार लाख निष्कर्ष निकालने को बिजने सोनो से बिजने सदिया से इन्टरम्यु नी गयी होगी? जब भूष में उन सारे तारों का छोटकर संभावन किया गया। इतना परिचय क्या महान नहीं है?

एक कथा वास्तविक रामायण में है। एक बार रामचन्द्रजी की समा में एक पिंड और एक लम्बु था यय। अम्मा एक पेड़ के पीछे था। दाता का दावा था कि वहल से एक रहता था दूसरे में फिर हमला करके अपना छोटा। मयबात राम ने पिंड से पूछा 'तुम वहीं कब से रहते हो? पिंड ने कहा

इय बभुवतोराम मनुष्यो परित्त यया।

चिन्तितराभुता सर्वा तथा प्रभुति मे भूभूमि॥

अर्थात्, हे राम! सृष्टि के प्रारम्भ में जिस समय वह इन्को मनुष्यो से दुक्त हुई और अब नव भोग इस पर बस गये तभी से इस पर पर मेरा अधिकार बना था रहा है।

धर्मी वैद्यसुर, वैदिक और अवैदिक और भीड़ और तांत्रिक इत्यादि सबने ही स्वीकार किया है।

भारत की यह वैज्ञानिक उन्नति विविध रही है, पर हमें कोई एक कामूना नहीं मिलता। योनिशों की एक भाषा में बड़े-बड़े लेख हुए हैं जिनमें अर्पटनाम का नाम लिया जा सकता है। वे रसेश्वरमत को मानते थे। उनमें हिसाब से पारा मंगलान शिख का बीर्य है और गंयक देवी पार्वती का रत्न। वे इनको सिद्ध करते थे। उन्होंने ही बड़ी कूटियों की खोज बढ़ायी। जैसे तो ब्राह्मणों में 'काष्ठ' विद्विष्टा पुरानी है। कहते हैं गौतमबुद्ध के समय में एक बीरक नामक बौद्ध था। वह सप्तसिमा में पड़ा था। मुख में सससे कहा था कि मुझे एक कोस के घेरे में से ऐसी बड़ी कूटी ढूँढ़ कर ला दे जिसकी बर्बाद न बनती हो। वह महीने भर तक ढूँढ़ता रहा पर उसे ऐसी कोई कूटी नहीं मिली। बीरक बीरफाड़ी भी करता था। उसने राजा विन्धसार की भगंवर ठीक की थी। उसने एक बार एक मिथु का अपरेक्षण किया। चूँकि उस बिना क्लारोप्यार्म (बिहोली की दवा) में भी मिथु के बहुत बर्ष हुआ। गौतम बुद्ध ने अपरेक्षण को हिसा कह दिया। जुगाने बीरों के प्रभाव में इस विज्ञान को मष्ट किया। प्राये के समय में दुष्प्राकृत बढ़ गयी। मुझे औरन वाले सुवृत्त की संतान ब्राह्मणों ने इसे गंवा समझ कर छोड़ दिया। फिर तो अपरेक्षण, और हड़्डी बैठाना सुतना सब था पड़ा हमारे बर्तमानों पर। गांव गांव में नाई भी डाक्टर होते हैं। पर अर्पटनाम ने 'काष्ठ' के साथ 'वातु' की दवा बताया। सोमा जाती लोहा इत्यादि का भस्म करना। बवाभा की दुनिया में अमलकार छाया। लेकिन योगी तो इन दवाओं से कामा घुड़ करते थे। और आधुनिक समाज में यह बीर सार्मता की ऐयासी का साधन बनी और बीच लोगों ने खोज खोजकर, बघोकरछ बाबीकरछ स्तंभन इत्यादि की दवाएँ बनायीं।

पर इसी साक्षात् में राजा भोज और व्याधि का नाम लेता हुआ। व्याधि विज्ञान के अमलकार दिखाता था। भोज की एक मित्राव मिली है, जिसमें विमान बनान की तरकीब है पर छबता बह कैसे था यह पता नहीं है। यावत् कोई दुष्प्राणों से उड़ाने वाला रहा होगा। विमान जैसी चीज भी थी तो साधारण उड़ान करने वाली। प्राक्कल के से बहाय नहीं थे। जैन प्रागया में भी विमानों का वर्णन है पर उक्त कति से यह स्पष्ट नहीं होता।

प्राक्कल साइको-रसायन के क्षेत्र में वर्णन है कि बवाभों में प्राग्मी के

विमान को बिचाड़ा जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता, कि किन बड़ी बुद्धियों से वे ऐसा करते थे। प्राचीन काल में अच्छे मछाने बनते थे। पत्थर की रोबन बनती थी। बसरब और बुद्ध के सन को बहुत दिनों तक ठेल में रखा गया था कि वे सड़ें नहीं।

धन को मारते ऐसी हैं, जिन्हें सुनकर ही आश्चर्य होता है। सब जानते हैं कि एक किताब है, जिसे 'युग-संहिता' कहते हैं। इसमें सब साक्ष्य जम्मा-जमा हैं, और हर एक के तीन वर्णों का यन्त्र है। जो सुनता है, वह इसे पंक्ति की पोषणीता कहता है। पर इसके पीछे सचार्थ क्या है? यह भारत का पुराना विज्ञान है। उन दिनों भारतीयों ने रातों-रात जाग्रत आकाश का बिना दूर बीन के ही अध्ययन किया। यह धर्म्य छवि क्योंकि वे जन्मी जन्म बहसते थे। फिर मन्त्र छोटें। फिर राधियाँ देखी। पर उन दिनों मनुष्य यह भी समझता था कि जो कुछ है वह धारणी के लिए है। तब उस समय के विज्ञान ने आधमी और विचारों का संबंध जोड़ा, ज्योतिष विज्ञान बनी। वह वह पूर्णरूप से छलन नहीं रही इसका कारण यह है, कि धन तक वह विद्या प्रचुर है। गौर से देखा जाय तो संपूर्ण आकाश का अध्ययन समस्त समय और दिक् (कम्प्यूट टाइम एंड स्पेस) का अध्ययन है। ऐसा अध्ययन होने पर यन्त्र अपने धाप स्पष्ट हो जाएगा। पर यह देखना आवश्यक है, कि युग-संहिता के पीछे मनुष्य का किताब परिसर है। आकाश में घारे देखना वह देखना जन्म समय देखना फिर कई-कई लोगों के जीवन के बारे में पुष्टता निष्कर्ष निकालना, यह नहीं है। चाहे बार साक्ष निष्कर्ष निकालने को किन्तु लोगों से किन्तु सदियों से इन्टरम्प्ट भी पयी होनी? तब युग ने उन घारे-तप्पों को छोटकर संपादन किया होगा। इतना परिधम क्या महान नहीं है?

एक कथा बाल्मिकि रामायण में है। एक बार रामचन्द्रजी की समा में एक बिड़ और एक उत्तू या गव। ऊपरका एक पेड़ के पीछे था। दोनों का हावा था कि पहले से एक रहता था दूसरे ने फिर हमला करके मकान छोड़ा। मन्वान राम ने बिड़ से पूछा तुम वहाँ कब से रहते हो? बिड़ ने कहा

इय बलुसोराम मनुष्ये परितो यथा।

अन्धितराजुता सर्वा यथा मनुष्ये मे गृहम् ॥

अर्थात्, हे राम! सृष्टि के प्रारम्भ में जिस समय वह भूमी मनुष्यों से कुछ हुई और अब सब लोग इस पर बस गये तभी से इस पर पर मेरा अधिकार बना या रहा है।

उप बस्तु ने कहा :

अनुकूलवादीबोधम पादपेक्षमशोभिता ।

यदेवं पृथिवी राजसत्ता प्रभृति नै नृनृ ॥

पर्याप्त, है राजस । अब से यह पृथ्वी पेड़ों से शोषित हुई उस से मैं इस तरह पर रहूँगा ।

राज ने फैसला दिया कि पृथ्वी पर मनुष्यों से पहले पेड़ से शायद उससे अधिक कहता है ।

यह कहा है कि सत्य है कि राजसत्ता की आधुनिक विज्ञान के विकास बाद के सिद्धान्त को मानते हैं । राजसत्ता की शुरुआत विज्ञान की द्वितीय पुस्तिका में विज्ञान कहते हैं कि भारतवासी विकासवाद को जानते हैं । तभी तो उनके अकादमियों में मध्यमी (मध्य) कक्षा (कक्षा) धारि के काम से मनुष्य का विकास दिखाया गया है । इसी विचार के लोग यहां से कुछ भी खोज सकते हैं । बल्कि, मशीनगत रूप कुछ भी । लेकिन वेब में से यह भी तब निकलती है जब यूरोप से बनकर आ जाती है । ऐसा नहीं बेला गया, कि कुछ पहले से लोग बता दें कि इस सिद्धान्त से बहुत बस्तु बननी और उसे बनाया जाने ।

हमारे यहाँ ऐसे बाण होते थे जो फेंकने वाले के पास खीट खाते थे । मास्टेलिया के आदिवासियों के पास भी बुरे पाले गये हैं । परन्तु बुरे पाले चिन्मिया मारता है । क्या वह १४००० ईसवी को मार सकता है ? यह प्रश्न प्रकट करता है कि संभवतः बसे बाण नहीं होते थे । वेब ने अतिष्ठ बस्तु में चापस टोका के आधार पर ता शमलकार कम मिलते हैं, परन्तु परबर्ती पुस्तकों में अधिक ।

दूसरी बात है महाभारत में संभव का विषय हृष्टि से सारे कुरक्षत्र के कुछ को बेचना । कुछ लोगों का मत है कि वह कोई टैलिबिजन जैसी चीज थी । मेर मत से वह कमि पल्पता है या अनर विमान पर आर जाता जान तो वह योग कियों का कुछ समलार है । यहाँ मैं वह कहना अनिष्ट समझता हूँ कि भारत में एक तथ्य विज्ञान भी है । मैं उसका कुछ उत्कृष्ट योग के समलार कर आया हूँ । किन्तु इस तथ्य में योग से मेर है । इसमें मंत्र भी आता है । यह सब है, कि लोग वाली पीठ से निपटकर चाप कटे का बहुर पतारते हैं । यह कौनसी प्रक्रिया है, यह सभी तक स्पष्ट नहीं है । मैं उनमें हूँ जो समझ में न आने वाली बात का उपहास नहीं करते । वैज्ञानिक तथा अन्य

हेसों की धादिम आतिथों में भी ऐसे मज प्रयोग पाये जाते हैं। यह एक घने पछा का विषय है।

भारत में इसके बाद जो सबसे अधिक जोर दिया वह मनुष्य के मरने के बाद की समस्या को जानने के विज्ञान पर। भारता के बारे में उसने काफी बात की है। यह सच है, दार्शनिकों में भारता परमारता के बारे में उत्तमे काफी सेकिम होव वैष्णव जैन भारता को न मानने वाले बौद्ध अपने को हिन्दू न कहने वाले आदिवासी गौड भावि भारत के सब संप्रदाय पुनर्जन्म को मानत हैं। मन्तर ऐसे कर्णों की कहानियाँ कही जाती हैं जो पुराने जन्म की बात बताव हैं। क्या यूरोप और अमेरिका इत्यादि में ऐसा नहीं होता? क्या कारण है कि संप्रदायों के बारे भारत में तो यह सिखाव मान्य है पर बाकी ईसाई यहूदी मुसलमान बर्कि संसार की कोई भा जाति इसे नहीं मानती? मेरे मत में इस विषय में प्रवेष्ट का रास्ता केवल योग मार्ग है, मतलब दिमाग की ताकत को बढ़ाने से धामद इसकी जातकाये हासिल हा। पैरासाइकॉलाबी इवो का नया रूप है। किन्तु पुनर्जन्म का सिद्धान्त एवो जातियों में रहा है, जिनमें विज्ञान की सोच बहुत हा कम रही है। भारों में यह पूर्ण रूप से आबासि के समय मान्य हुआ परन्तु उस समय योग मार्ग की महत्ता भारों में कम थी।

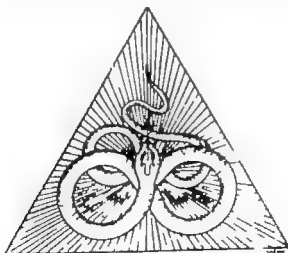
विज्ञान के विकास में पश्चिम के विस्वासा की जड़ हिंसा ही है। वहाँ का धार्मी अपनी छया से स्वयं डरने लगा है। विज्ञान ने इतने व्यापक विस्तार बताया कि प्रसिद्ध विचारक एडिन्ग्टन ने रहस्यवाद को प्रथम दिया और कहा कि छठी के द्वारा सर्वम की अनुमति हो सकती है। जीस ने इयाय किया कि यह सबकुछ है नहीं ऐसा हमें लगता है। अन्य रूप में यह बात भी स्पष्ट हुई कि वस्तुव किसी वस्तु में कोई रंग नहीं है। हमारे धार्मिक की बनावट ही ऐसी है जिसके कारण हमें सूर्य के प्रकाश के समान से विभिन्न रंग दिखते हैं। यह प्रकाश बीपक द्वारा भी मिलता है। धक्कार में कुछ नहीं दिखता।

संकराचार्य न सोंप में रस्ती का भ्रम बहुत पहले बताया था। कहा था सब मिथ्या है ही नहीं लगता है। केवल ज्ञानानुमति से ही ब्रह्म मिल सकता है जिसका हम कोई वर्णन नहीं कर सकते। भारतीय परमाणुवादी वैपिकों ने भी सृष्टि-क्रम बसता हो रहा है, माना है। संकराचार्य के युग में भारत में जनों को बड़ा ब्रह्मार्मिक माना जाता था। कहानी है, कि बीना से पुणिमा की रात पर ब्राह्मसो की बहुल पड़ गयी। बीना ने एक दिन पहले कहने की

मलती कर ही। अब क्या होता। लेकिन जैनों ने बाकी जगत्‌काकर धाकाध तक कहा भी। यह कहानी सच्ची नहीं है लेकिन यह बताती है कि जैन वैज्ञानिक खोज करते थे। उनकी विद्या को बिना धाधार के ही आसमान पर बढ़ने वाली—“निरासब गगनारोहिणी” कहा गया है। जैनों की स्थापना की धारणा, करीब-करीब आइंस्टाइन के सापेक्षतावादी निकट है। जैन हर पुरुषमा के लिए एक आकाश मानते हैं। स्थापना में धार्मिक सत्य बस है—अनन्य सत्य सम्मत सत्य नाम सत्य स्थापना सत्य कम सत्य प्रतीति सत्य व्यवहार सत्य भाव सत्य योग सत्य तथा उपमा सत्य। यह सब सत्य को सापेक्ष मानते हैं। आधुनिक विज्ञान भी इसी का प्रकट करता है। इस विषय पर मुनि श्री नगराजजी ने बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है।

किन्तु जहाँ धार्मिक व्याख्या एक ओर इसकी वैज्ञानिक प्रतीति होती है, दूसरी ओर भौतिक तथा वैज्ञानिक विचार जैनों में भी पुराने रूप के मिस्र हैं। उनकी बुद्ध-कल्पना भी असंख्य है, और धर्म की ओर इंगित करती है।

लेकिन इन उपसर्गियों की पुष्टि क्या की? बुद्ध के मानव से पहल होने की कथा राम ने बताया है ‘धारम म सूर्य जन्म आकाश पर्वत बन



चित्र ४—भारतीय दृष्टियों द्वारा साक्षात् की गयी वह बुद्धमूर्ति जो जिसके जन्म पर धीमन्-मरुत जन्मान्तर और धर्ममार्गों के प्रयोग के रहस्य कथाएं बुल जाते हैं

समेत तीनों लोक विष्णु के उदर में थे। वे सोते रहे। बह्मा उनके पेट में घुसे। तब उन्होंने तमिसे का सा कमल भिक्षा। उसमें बह्मा योग-मस से प्रकटे। उन्होंने सबकुछ तप के प्रभाव से रखा। उन्होंने के कान के मीन से मधु रत्नम ईश्वर पैदा हुए। वे बह्मा को खाने दीडे। बह्मा भिक्षाये। तब विष्णु ने प्रकट होकर उन्हें मारा। समकी चर्ची से पृथ्वी सर हो गयी। तब विष्णु ने उसे छोडा। तब पवित्र पृथ्वी पर कुछ उगे। चर्ची से छा जाने के कारण पृथ्वी का नाम मेदिनी पडा।

इस कथा से विकासवाद पुष्ट नहीं होता।

अन्ततःवाय को हम वैज्ञानिक नहीं मान सकते। वह जातीय अव्यभिचारे में विभिन्न देवताओं को परमात्मा के रूप में स्वीकार करने की कहानी है। कुछ भी बाव में अन्ततःवाय बने हैं। एक अन्ततःवाय तो होना चाही है।

भारत में पृथ्वी कपटी माना जाती थी। सूर्य सुमेरु के पारों पोर घूमता है, ऐसा माना जाता था। आकाश ज्ञान में सुरेन्द्र गैल्यून और ज्योत्सना भी पडा नहीं था। कुछ पाँच लाख माने जाते थे जबकि सब भी से भी ऊपर जात है। अभी तक बुद्धाईकों न विज्ञान के विकास के बारे में अधिक प्रयत्न नहीं किया है।

अनु-परमाणु को कानू में करना विज्ञान के सौष्ठव संबंधों पर निर्भर है जिसका कही उल्लेख नहीं है। सबसे प्रकट होता है, कि भारत ने इस क्षेत्र में अपनी कमजोरी नहीं की थी।

भारत की अव्यभिचारी मस्तिष्क-विज्ञान के क्षेत्र में। वह योग है। भारत ने दर्शन चिन्तन और अनुभूति की महारत को देला था। वह हमें अपनी वैष्णवों और वेदान्तियों में मिलता है। अमरा राज्य चिकित्सा रसमन्त्र, ज्योतिष विज्ञान, ज्योतिष आदि विकास कर रहे थे। समय उनमें रकावत नहीं जाती तो शायद भारत दीड में आगे रहता। उसका चिन्तन बहुत व्यापक था। काल (टाइम) स्पेस (विश्व) सत्यता परमाणु-सूत्रगत (मैटर) इत्यादि के बारे में उसने सोचा था। उसने यंत्र-यंत्र (ऑप्टिक मैजिक) पर भी काम किया था। पर सच्चा ही कुछ आक्रमणों ने उसकी गति को रोक दिया। जो विकास होता जाता था रूडा था वह एकदम रुक गया। इसी तरह वह विकास यूरोप में ईसाई मत के फैलने पर रुक गया था। ईसा के बाद एक हजार साल तक यूरोप ने कुछ नहीं किया। उसके बाद फिर वहाँ आयरलैंड हुआ। फलस्वरूप

धीरे-धीरे उत्पत्ति हुई। यह उत्पत्ति कोपनिवस से मीढ़ का बनी। लूटन से तेज हो गयी। धीरे-धीरे तक लीकने लगी। अब यह उब रही है। लेकिन अब तक यूरोप के पाँच परती पर रहे उसे भीतिरबाह पर बर्भक रहा व्याप्री उसने भाकाय को देखा उसका मन हिरा गया। बाज यूरोप दर्शन खोज रहा है। उसे साँति का दर्शन माण है सकता है, पर उसे वैज्ञानिक लोनें तो यूरोप से ही मनी पड़ेगी। भारत के पास एक लव के प्रयोग अधिक है वह है सोम विज्ञान। भारत इस विद्या का यूरोप को सिखा सकता है। परन्तु इस विद्या में भी भारत का मनी तक बहुत खोज करनी है।

यदि भारत के विकास में बाधा नहीं पड़ती तो कौन जाने हम कहीं पहुँचते ? यहाँ आर्यभट्ट को स्वीकार नहीं किया गया। यहाँ भास्कर के सिद्धांत को मान्यता नहीं मिली। अब हम इन दोनों के दोलन पीछे हैं क्योंकि यूरोप में इन्हीं मान्यताओं को धावर मिल चुका है, परन्तु मान्यता अब मिली नहीं इसका भय यह नहीं कि मिलती ही नहीं। उसके बाद कं रूप में दोष और अन्वेषण के पीछे ही नहीं मिले। यूरोप से तो कुछ मध्यकाल में बा शोध प्रवृत्त बनाना पारस हुँकना प्रेसविद्यालय सेना बाहू करना टोना-टोटका मंत्र करना पुरानी रास्तेबा का प्रयोग करना अभी बूटी खोजना ज्योतिष की खोज करना यह सब पहली से छसवीं ली के भारत में मौजूद बा। इन्हीं बाटी में से, मौका मिल जाने के कारण यूरोप बह गया। भारत में स्वतंत्रता छिन जाने से अबसर बसता रहा। कायबे की छिला के न रहन से यहाँ अब बिस्वास बह गया। इस्लाम के उष्य के समय अरबों में विज्ञान के प्रति यही छिब भी लेकिन अब मे ईरान आये तो ईरानी संस्कृति मे इस्लाम को रेंव दिया। इस्लाम की प्रगति रुक मयी। भारत में धान पर तो वह बिस्मृत ही पट हो बयी। भारत में घाठ ली बर्ष में भी ईस्लामी साक्षक बर्ष एक भी वैज्ञानिक नहीं है सका। बोड़े से पकीरों में जरूर कीनियाई बसती रही लेकिन मे फकीर पुराने जोसीया बौद्ध से जिनमें परम्परा बसती रही। इस्लाम में जो लंन-मंत्र या वह भी पुराने बहुरियों के कबालों और भूतिपूजक अरबों से उत्तरा बा। इस प्रकार भारतीय विज्ञान अपना विकास नहीं कर सका।

भारत में कम्पना बहुत सघन थी। किन्तु धर्मों के लिए धुधम मंत्र बाह्य में भारत में कहीं मे ? उनका उन्मेष नहीं है। बाबर से पहले बाबर यहाँ नहीं था। धर्मशास्त्र से, परन्तु धर्मशास्त्र से बाध फँकी जाती थी। ऐसे अरबों को सवम्पी मुसुम्बी इत्यादि कहते थे। धर्मधर्म में धर्म को छोड़ा जाया है। इसका

धर्म्यता बड़ा विषय है जो--० पर व्यापारित है। यह भारत में इस रूप में नहीं था। तत्त्व को एक रूप से दूसरे रूप में बदलने के लिये एक अव्यस्त मर्त्य चाहिए जो एटम तोड़कर पैदा की जाती है। अपने नहीं तो ऐसे किसी है, कि साधु ने पीठस या ठीका विषय में रखा एक जड़ी-बूटी रखकर हम मध्याम धीर विषय उलट ही ती तबि का सोना हो गया। जड़ी-बूटी में ऐसा जम त्कार हो सकता है, यह सहज मान्य नहीं है पर मैं मानता हूँ, कि हो सकता है। संजीवनी बूटी भी इसी तरह विकसाल है। पर क्या यह सब बीजों सहज भी। दुर्गेत में भी आर्जेजमजय (धर्म्य) पारस पन्थर धीर कीमियाई मध्यकाल में ज्ञात तत्त्व है। नेटे न कुतों से भी बातें करते पाव दिखाये हैं। यह मध्य कालीन विद्वांस का। आरहवीं सदी में भारत में आये विदेशी अस्त्रवेदनी ने लिखा है, कि भारतीय अपने पूर्वजों की बहुत तारीफ करते हैं और कहे भी छूट पर म्द भरोसा कर बैठे हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि यदि सूर्य न बूमता और इन्ही बूमती तो भारतीय गणित के हिसाब से बहुत ठीक समय पर क्यों पकता। यह तो सीबी-सी बात है। किसी को भी धूमता माना जाये, यदि दोनों की गति का ध्यान है तो नतीजा हमेशा ठीक निकलेगा।

यह माना जाता है कि पहले सबकुछ का धीर फिर गल्ट हो गया। इस वेद उपनिषद, बीजात्म, बीजरोत पुरास इत्यादि में सृष्टि कैसे हुई इसका उत्तेय पाते हैं। सब समय भ्रमण हैं और जमत्कारपूर्ण हैं। उनको वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। कल्पना और अनुपुति से भारत में जिस व्यापकता के वर्धन होते हैं, उसने पीछे गहन मनन है साधन साम्यता नहीं है। साधनों के अभाव में ही विज्ञान अविष्ट हुआ। उसके फल हमारे सामने मौजूद हैं। यह सोचना, कि लोह कई हैं संभव है। यह सोचना कि समय 'एक' है सोय डार आना जा सकता है। अस्त्रों की अमान्यता की कल्पना की जा सकती है। रामायण में तो अस्त्र-अस्त्रों का वर्णन है, मत्ता दुर्जों का उत्तेय है पर वेधों में नहीं। कायदे से देखा जाय तो पहले वेद में उत्तेय होना चाहिए। रामायण के बाद वर्णन है महाभारत में। पर इस सारे युग में सबाटी का सबसे ठीक सामन रख था। हूँ यह बात अवश्य है, कि वे पोट बाधुने से बसते हैं। वे तो बोरे, कोई रंग नहीं था। इस हाथ से जलाया जाता था, ट्रैक्टर भी नहीं थे। महाभारत और रामायण के युग में दिने पकते थे बिजली नहीं। पैसे हाथ से भले जाते थे बिजली से नहीं बसते थे। परमाणु पर काबू करने वाले लोग ऐसा क्यों करते हैं ? कुएं बलवाते थे नम नहीं लपकाते थे। महाभारत में लिखा है "महो ! कैसा आश्चर्य है

कि स्त्री (सबकुछ पचा लेती है, पर उसके पेट में बीर्य नहीं पचता। वे यह बात सुनकर के पहले नहीं जानते थे कि पेट में बच्चा एक घमन मिक्सी में होता है। वे तो यह समझते थे कि बीर्य किसी भी भाँति स्त्री में पहुँचना चाहिए। इसीलिए काग-नाक से होने वाले बच्चों का भी वर्तन है। इसीलिए यह भी कहा जाता है, कि पुनर्जन्म में जीव माता के गर्भ में मम मूत्र में पड़ा मरण-यातना भोगता है। क्या संन्य की दिव्य दृष्टि से इस ज्ञान का भेज बैठता है? योगियों ने मस्तिष्क की दक्षि बड़प्पी पर सूत्रों और घम्य ज्ञानों पर उन्होंने प्रभाव नहीं डाला। परम योगी बैरब्र और गोरख ने भी इस विषय पर कुछ प्रकाश नहीं डाला।

पर चिंतन में मारताय जानते हैं कि एक ही 'वार्ता' है—बो जानते बोध्य है कि सूर्य इस पृथ्वी को आकाश के घुट से रखकर पका रहा है। कितना सौरभ है एक ओर और कितना घमास है दूसरी ओर। भारत में योग क्यों बढ़ा? बाह्य साधन कम बने। और आश्चर्य के लिए सबसे बढ़ा रहस्य बना अपने भाषको खोजना। यहाँ इतनी सम्मिश्र' बनी बिगड़ी कि खड्ग देव-देवकर मनुष्य ने बाहरी उन्नति को भूना समझ। 'बध्यबो न नियतबाह' (कितरमिनिज्म) को प्रतिपादित किया उसी ने 'धन्या' की कल्पना को जन्म दिया। इसके कारण एक ओर व्यापकता की मावना' फीनी दूसरी ओर वैज्ञानिक चिंतन का ह्रास हुआ।

इतनी उन्नति है, पर कुछ भी नहीं है। हम यह नहीं जानते कि बो भोजन हम खाते हैं, उससे मस्तिष्क में विचार कैसे जन्म लेता है? हम यह नहीं जानते कि मनुष्य कैसे इस पृथ्वी पर आया? हम यह नहीं जानते कि अनेकतम से बेतम जीव कैसे जन्मे? क्योंकि अभी तक विज्ञान मूल प्रश्नों को नहीं समझ सका है यह सारी उन्नति बाहरी उन्नति है। आब भी बड़ी समस्या हमारे सामने है, बो देव के कवि के सामने भी या उपनिषद्धारों के सम्मुख थी। मातृवस्तु से लेकर धरकर तक के सामने जो समस्या थी, वही हमारे सामने है। आबिन फायद एबलर खुश हृदयसे आइन्स्टाइन रहिन तक सब उसी का सोच रहे हैं। बीस एडिस्टन ग्राइड ऐब और न जाने कितने यही पुछते मबर मात है। तो जिन सवासों का जबाब प्राचीन द्रव्य मांगते थे, हम भी उन्हीं का मांगते हैं। प्रसन्नी सवास धाव तक का वैज्ञानिक विकास भी हम नहीं कर सका है। प्राचीनों ने सोचकर हम निकाले थे। हम उन्हें देखकर ताकड़ करके हैं पर घाने कैसे सोच सकते हैं? बहुत-सी वार्ता में

हम छोटे-छोटे मुद्दाएँ कर सके हैं। बच्चा जो जन्म लेता है, बहुत या बहुत है, एटम में टूटता है, बिहार का तार जो बजता है, सैन्य जो बदलता है पर यह सब छोटे सवाल हैं। बड़े सवाल हैं—जीन कैसे आया ? मृत्यु के बाद क्या होता है ? प्राणी कैसे साबित है ? मनुष्य के भविष्य में कितनी शक्ति है, बिहार इस पर्याप्त (मीटर) पर कबू कर सकता है या नहीं ? सृष्टि क्यों हुई ? मनुष्य कहाँ आया ? और क्यों जन्मा ? अन्ततः से अन्ततः प्राणी क्यों बना। पर 'क्यों' की व्याख्या से भी काम नहीं चलता। मनुष्य जानना चाहता है—क्यों ?

इस क्यों का उत्तर कोन देगा ? हमारे भारत में वैदिक चिंतन में परमात्मा को साबित करने की कोशिश। जैन चिंतन में परमात्मा को छोड़कर कोशिश। बौद्ध चिंतन में आत्मा को भी अस्वीकार करके कोशिश। इसने अज्ञान के रह कर देखा। फिर आधुनिक का प्रयोग किया। और न जाने क्या-क्या प्रयोग किया। पर उत्तर नहीं मिला। इसका उत्तर अभी तक पश्चिम भी नहीं दे सका है। इसीलिए हम यह देखकर चौंकते हैं कि प्राचीन लोग न जाने क्या-क्या कोशिश करे हैं। लेकिन सच यह है, कि आज तक जो कोशिश गया है, वह अज्ञान का और सीमित वैज्ञानिक साधन, जैसे कि बीजक है, वे भी उस चिंतन से आगे नहीं जा सके। इसीलिए विचार-स्वातंत्र्य के इस देश में जो अनेक प्रयोग हुए, वे हमारे लिए गौरव का विषय हैं।

जिस काम से मैंने विकास दिखाया है, वह एक बीजक देश की परंपरा को प्रकट करता है। दुर्भाग्य से उसके बाद हमें संस्कृति की रक्षा में लय आना पड़ा। शिक्षा के साधन कम हो गये। उसके बाद वैज्ञानिक लोग साधुओं के हाथ में चली गयी। साधुओं के हाथों में वह स्त्रिय लोग नहीं बनी रह सकी। साधुओं ने उसमें अमलकारवाद बढ़ाया और विज्ञान के सिद्धान्त अज्ञान नहीं रह सके। और लोग का विकसित विज्ञान भी वहीं इतना एकाधिक रहा कि उसने कोई विषय आवरण नहीं दिया।

यह निराश है, कि भारत की अभी वर्तमान वैज्ञानिक स्तर पर आने के लिए बहुत सीखना है, या मनुष्य के विकास की अगली संक्रिया है। हम विकास की ओर दृष्टि और जैन चिंतन ने हमें विरोधता बढ़ाया है। गौतम बुद्ध का यह विचार कि कुछ भी अपरिवर्तनीय नहीं रह सकता, वैज्ञानिक का। लेकिन बुद्ध ने विकास का विकास प्रयोग रूप से रखा। जब मृत्यु के पश्चात् दम्बाधि के सम्बन्ध में जिज्ञासा के प्रश्न उठे, तब बुद्ध ने यह दिया कि

जिस माँप हमें जाना नहीं, उसका नाम जानने से हमें क्या साज है ? विज्ञाना विज्ञान की जाननी है । बार-बार सृष्टि को समझने की चेष्टा हुई है । यह समस्त सृष्टि सीमित है, यह आइंस्टाइन ने कहा है । इसकी पुरानी व्याख्या है 'अद्वैताह' । इसे वैष्णवों की अनुभूति ने बताया है । पर आगे वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है ।

यूरोप कब अमेरिका ने क्या नहीं किया ? रामायण महाभारत की सब चीजें बना डालीं । सैन्य बल का टैक्निक से बन्ने पैदा कर दिये । बिना शीर्षक के ही स्त्री के घरीर में रजकल को बिजली के मटकों से तोड़कर सड़की पैदा कर दी । बीरपत्रों में प्लास्टिक छर्बरी कर ली । बेतार का तार टेसीबिजम अल्मास रफिट विमान रेल ब्रह्मास्त्र सब बना डाले । लेकिन हार किससे आयी ? हिंसी के उसी मत्तक से । बेहोशी बुर करने की बजा में बह सब अभी तक नहीं छोड़ी नहीं ला सके हैं, जो हमारे बेबकीर्नदल अन्धी के ससलके में भी कि सुजाया और वो चीजें क्या अभी कि नड़ी से कड़ी बेहोशी गायब ।

इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संस्कृति ने भौतिक उत्थति भी की जो और काफी विकास भी किया था । पिछे का मत है कि भारत में पहले अत्रिमान माना जाता था । बाद में जब सूर्यमान माना जाने लगा तब वैवस्वत मन्मन्तर का प्रारंभ माना गया । वैवस्वत विवरदान अर्थात् सूर्य का पुत्र माना गया है । पिछे का मत है कि विवस्वान संबंधी कहने के लिए विवस्वान से वैवस्वत शब्द बनाया गया है । यह विषय अभी तक बहुत विवादास्पद है अतः इस पर हम अभी अंतिम बात नहीं कह सकते । किन्तु संस्कृति के विकास में सम्यता और उसके आधार विज्ञान का विकास बताता है कि हम जिस रास्ते पर चले थे उसे पुरा नहीं कर सके और हमारी विद्या एकांगी बनकर रह गई ।

मनुष्य के रूप महाद्वीपीय अध्ययन

मनुष्य का मानव जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये आवश्यक है कि हम संसार के विभिन्न प्रदेशों का अध्ययन करें। इससे हमको स्पष्ट होगा कि मनुष्य कहाँ कहाँ किस प्रकार रहता है। इसी से हमको उन कारणों का भी ज्ञान होगा जो मनुष्य के बारे में यह बता सकेंगे कि मनुष्य समुद्र के तट पर समुद्र के किनारे से ही क्यों रहता है ?

हमें यह पता चलता है कि विभिन्न सुसंस्कृतों में मनुष्य एक ही रूप से नहीं रहता। संस्कृतियों के अनेक प्रकार के भेद होते हैं। इनको मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा है—

- (१) भौगोलिक प्रभाव
- (२) ऐतिहासिक प्रभाव
- (३) वैज्ञानिक विकास का प्रभाव
- (४) दार्शनिक प्रभाव

भूगोल में हम प्राकृतिक परिस्थितियों का ही विशेष कर अध्ययन करते हैं।

ऐतिहासिक प्रभाव के हैं जो किसी जाति विशेष के साथ बने रहते हैं और भौगोलिक परिस्थिति बदलने पर भी पुराने रिवाजों में आसानी बिपना रहता है।

विज्ञान का विकास नयी प्रौद्योगिकी को जन्म देता है। प्राकृतिक आवश्यकताओं से नयी नयी वस्तुओं का जन्म होता है।

जापान, पूर्वी द्वीप-समूह, मलाया जका आदि। यहाँ की औसत वर्षा औसत ८० इंच प्रति वर्ष है। यथासंभव ऐसा स्थान है जहाँ पर सर्दियों के दिनों में वर्षा होती है। एशिया के अरब ईरान और बार के रेगिस्तान तुर्किस्तान, बोर्नी का मैसिस्तान साइबेरिया आदि जगहों में १० से भी कम वर्षा होती है। ये प्रदेश या तो अधिकतम रेगिस्तानी हैं अन्यथा सर्वाधिक शीतोष्ण प्रदेश हैं। एशिया में विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है। अत्यधिक उष्ण भी अत्यधिक शीतोष्ण भी तथा कहीं-कहीं समशीतोष्ण भी पायी जाती है। यहाँ का सर्वाधिक तापक्रम ८० फ़ॉरेनहाइट है। एशिया की कुल १२ अरब जनसंख्या में से ८३ करोड़ से भी अधिक व्यक्ति मानसूनी प्रदेशों में निवास करते हैं। साइबेरिया मंगोलिया तुर्किस्तान ईरान अरब आदि में कम जनसंख्या पाई जाती है।

एशिया महाद्वीप की व्यापकता तथा विस्तारता के अनुक्रम ही यहाँ पर जातियाँ पाई जाती हैं। इन जातियों के रंग-रूप स्वल्प-सुरत ज्ञान-यान रखन सहन पर भौगोलिक परिस्थितियों का अमिट प्रभाव पड़ा है। यहाँ की प्रमुख जातियाँ में फाकेसस मंगोलियन हब्बी प्रारम्भ की जातियाँ हैं। अविष्य में इन जातियों के अनेक वर्ग हो चके तथा अनेकों उपजातियों का प्रादुर्भाव हुआ गया। प्रचीन युग में एशिया में सहस्रों प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं। फाकेसस जाति के लोग आर्य कहलाते हैं। ये लोग दीर्घाकार लम्बे पीर बर्तु व्यक्तित्व में गठन तथा सौम्यता मिले हुए चीने मैनों जैसे होते हैं। इनके बाप बड़े मुसा यम होते हैं। ये लोग ईरान अफगानिस्तान भारत और पश्चिमी एशिया में पाये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि यूरोप के लोग भी इनकी ही सन्तानें हैं। मंगोलियन जाति के लोगों का रंग पीला होता है, इनकी नाक बपटी और कुछ पिचकी हुई होती है। आँखें बन्द सी और ठिठकी होती हैं। इस जाति के लोग चीन जापान मलाया इण्डोनेशिया में बसे हुए हैं।



चित्र ९

मनुष्य के रूप : महाद्वीपीय अध्ययन

तीसरे प्रकार की जाति हथ्थी पायी जाती है। जाकेसस जाति में जब कोई व्यक्ति अधिक क्रुद्ध हो जाता है तो उसे हथ्थी' नाम से सम्बोधन करके बिज्ञाया जाता है। हथ्थी जाति पहले स्वामन्त्रों की होती है। इनका जब प्रायः नाटा लगमग ३ फीट से ३३ फीट तक ऊँचा होता है। इनके मोठ मोठे घोर बड़े होते हैं। बाल बड़े घोर बड़े तथा बल धावे हुए घोर घुंकराते होते हैं। इनके पूर्वज प्रायः जंगली अवस्था में रहकर पशुओं का शिकार किया करते थे। अब इनकी अवस्था में जो सुधार होता जा रहा है। प्रचलमान पूर्वी द्वीपसमूह तथा मलाया में ये लोग निवास करते हैं।



चित्र ७

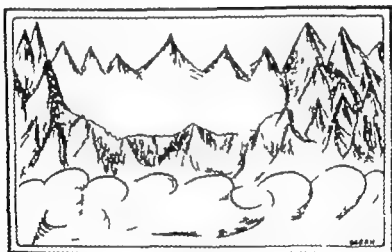
एशिया के सम्पूर्ण उद्योग-धन्धे वहाँ की जीवोत्पत्ति पर परिस्थितियों पर आधारित हैं। समुद्र के निचले स्थानों पर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। जिससे वहाँ पर अधिकतर व्यक्ति मछली उद्योग द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। सबन जलो से लकड़ी-उद्योग प्रचलित है। चाय ही शिकार भी किये जाते हैं। पठारी स्थानों पर भेड़ें चराई जाती हैं। समतल तथा उपजाऊ भूमि पर कृषि की जाती है। एशिया के उद्योगों पर एक विह्वल दृष्टि डालने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि उनमें प्रमुख व्यवसाय निम्नलिखित हैं—

एशिया के प्रविकास देशों में कृषि की जाती है। कृषि उन देशों में होती है जहाँ मालमूलों से वृद्धि होती है या सिंचाई के धन्य साधन उपलब्ध होते हैं। कृषि प्रधान देशों में भारत ब्रह्मा स्वाम चीन आदि देश प्रमुख हैं। इन देशों की प्रमुख पैदावार चावल सम्बाहु यहाँ की प्रथम कपास आदि है। साइबेरिया प्रदेश में यहाँ की जलो से उत्तराश्वर वृद्धि होती जा रही है। आसाम पूर्वी चीन जापान में चाय पैदा होती है। भारत आसाम आदि देशों में कच्चा उत्पन्न होता है। एशिया माइनर तुर्किस्तान भारत में विभिन्न प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। इसके मलाया खनिज कोयला भी एशिया का प्रमुख व्यवसाय है। खनिज प्राकृतिक साधन है जिनमें किसी भी देश की आर्थिक अवस्था में आवश्यकतानुसार परिवर्तन जा सकता है। किसी देश की आर्थिक उत्पत्ति, मुक्त-समुद्रि इन्हीं खनिजों पर आधारित होती है। एशिया के प्रमुख

अभिन्न पर्वतों में सोना चाँदी कोबाल्ट, ताँबा आश्रक आदि प्रचिद हैं। सोना साइबेरिया में सल्टाई पहाड़ मन्चूरिया मैसूर जापान बोनिया तथा काकेशिया में मिलता है। मालाकुण्डा में हीरा ब्रह्मा में जाल मलामा में टीन जापान में ताँबा और पारा। भारत चीन जापान में कोबाल्ट मिलता है। फारस, ब्रह्मा में मिट्टी का लेस पेट्रोल आदि मिलता है। पर्वतीय प्रवेदों में लकड़ी काटने का काम किया जाता है। इन सक्रियों पर विभिन्न उद्योग घन्ने आचारित होते हैं। हिमालय की तराई स्थान ब्रह्मा में लकड़ी काटने का कार्य अधिक किया जाता है। इन जलों में सात उद्योग, चीड़ देवदार, स्प्रूस, बाँस रबर आदि कीमती वृक्ष होते हैं। समतल मैदान तथा चारगाहों में जानवरों को पालने चराने तथा एकजिठ करने का कार्य किया जाता है। तुर्कितान साइबेरिया इस कार्य के लिये अधिक प्रचिद हैं। समुद्र तटों पर मछली मारने का उद्योग किया जाता है। यह व्यवसाय जापान सागर जापान कोरिया फिलीपाइन आदि देशों में किया जाता है। साइबेरिया समस्त जलो से व्यापक होने के कारण बहाँ पर बिकार का व्यवसाय किया जाता है। बिकार में विभिन्न वनस्पति जैसे—लेर चीता व्याघ्र हिरण, मेड़िया रीस आदि प्रमुख हैं। समुद्रों के समीप बसे हुए देशों का एक बड़ा जाल घीर है कि समुद्रों में मोटी पाय जाती है। बहुत से स्थानों पर गहरे समुद्रों से मोटी निकाले जाते हैं जस कि फारस को खाड़ी इसके लिये अधिक प्रचिद है। इन व्यवसायों के अतिरिक्त एशिया में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हैं। इन कारखानों के लिये कच्चा मास पृष्ठभूमि से ही प्राप्त हो जाता है। इन कारखानों के कच्चे मास के उत्पादन पर भौतिक परिस्थितियाँ अपना प्रभाव डालती हैं। सूती कपड़े के कारखाने कम जलवायु में ही स्थापित हो सकते हैं। जापान और भारत में लोहे ठल कपास तथा रेशमी कपड़ों के कारखाने पाये जाते हैं। चीन में रेशम के कारखाने तथा बंगाल में छूट के कारखाने हैं।

भौतिक परिस्थितियाँ में पर्वतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। पर्वतों से अनेकानेक लाभ हैं। पानी मरी हवायें इन्हीं पर्वतों से ठहर कर समीपवर्ती प्रदेशों में वर्षा करती हैं। तलहटी प्रवेदों में वनस्पति अधिकतम पाये जाते हैं। जानू भागों पर चारागाह तथा पर्वतीय भागों पर उद्योग वन बढ़ होते हैं। इन जलों से विभिन्न प्रकार की सक्रियाँ तैयार प्रायः जातुएँ प्राप्त होती हैं। एशिया के पश्चिम में से हो पर्वत श्रेणियाँ चलती हैं और बहुत दूर तक साम-साव चलकर पामीर के पठार में एक-दूसरे से मिल जाती हैं।

पामीर के पूर्व में तिब्बत का पठार पड़ा है। यह पठार बड़ा विस्तृत है। एशिया के दक्षिण में भारत तथा दक्षिणी भारत का पठार जमीन से अपकमिष्ट हुए प्रतीय होते हैं। इन पहाड़ों के समीप समी नदियाँ बहती हैं तथा नदियों के लटकती प्रवेशों में अनेक नगर बसे हुए हैं। इन नदियों द्वारा लार्दुई मिट्टी से ये मैदान बने हुए हैं। पामीर का पठार बहुत ऊँचा है। पामीर के पठार से जो पर्वत पूर्व की ओर एक ऊँची सीढ़ार के समान चला गया है, उसे हिमालय पर्वत है।



चित्र ८

यह संसार का सबसे ऊँचा पर्वत है। एवरेस्ट इसकी सबसे ऊँची चोटी है। इसके दक्षिणी ढालों पर पानी वर्षा के कारण संचयन बन है। हिमालय पर्वत हिमालय के हिम क्षेत्रों का हिम क्षेत्र है। इसका भारतीय शैक्षणिक विभाग पर भी प्रमुख प्रभाव पड़ा है।

मैदानों का मानव-जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। नदियों के निकटवर्ती समतल मैदानों में ही यमुष्म की प्रचीन सभ्यताओं ने विकास किया है। इन उपजाऊ मैदानों में ही मानव-जीवन अधिक जनसंख्या पायी जाती है। उपजाऊ होने के कारण मानव-जीवन पर इन मैदानों का बड़ा प्रभाव पड़ा है। हिमालय के पठार में दक्षिण से उत्तर की ओर जुका हुआ एक विशाल मैदान है। यह साह्यद्वीप का मैदान कहलाता है। इस मैदान के उत्तरी भाग में हमने अधिक

सही पड़ती है कि निपचत रेखा के समीपवर्ती भोवों को घसड़ा हो जाती है। अधिक बर्फ पड़ने के कारण यहाँ जनस्वस्थियों का पूर्णतया घमाज रहता है। बर्फ के घर मौसम-मछली का भोजन यहाँ की विशेषतायें हैं। यहाँ के लोग पशुओं की खास के नस्ल पहिनेते हैं। इस बड़े मैदान में धोबी मनोसी सीता नामक तीन नदियाँ बहती हैं। किन्तु साल के कुछ महिनों को छोड़ कर, बर्फ



चित्र २

भर जमी रहती है, जिस कारण से हमें व्यापारिक जहाज भी नहीं आ जा सकते हैं।

एशिया के दक्षिण में नदियों द्वारा बनाये गये दो बड़े मैदान हैं। उनमें से एक भारत में गंगा सिंधु जलपुत्र द्वारा बनाया गया है। समजाऊग की दृष्टि से यह मैदान विश्व के प्रमुख उपजाऊ मैदानों में से एक है। इस मैदान

मनुष्य के रूप महाद्वीपीय अध्ययन

की प्रमुख पैदावार में से भी बना चावल, चाय कहना सदा पूरा इत्यादि बन्धु हैं। इस प्रमुख मैदान बजला फगल बा है। बजला और फगल की नदियों के बीच यह बड़ा मैदान है। इसे मैमोपोटामिया का मैदान भी कहते हैं। पैदावार की दृष्टि से अच्छे होने के कारण यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है।

इसी बीच एशिया के प्रमुख देशों के मैदानों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। हिमालय के पूर्व में चीन प्रदेश है। इस प्रदेश में नदियों ने बड़े-बड़े मैदान बनाये हैं। झ्यांग्पो नदी डारा निर्मित मैदान में करोड़ों की जनसंख्या बसी हुई है। इपि के लिए यह मैदान उत्तम है। जिसमें चावल अधिक पैदा होता है। मांगसीक्याम नदी के मैदान में तामाब और भीसे अधिक है। तिब्बत से निकल कर यह नदी दुर्गम स्थानों में होती हुई मैदान में पहुँचती है। इस मैदान में बहुत अधिक वर्षा होती है तथा उष्ण जलवायु होने के कारण यहाँ चावल अधिक पैदा होता है। चावल ही यहाँ के मनुष्यों का प्रमुख भोजन है।

मध्य एशिया में विश्व का सबसे बड़ा रेल मार्ग है। जिससे दो महाद्वीपों को परस्पर मिला दिया है। जो ट्रान्स साइबेरियन रेलवे का नाम से जाना जाता है। कुल रेल मार्ग की सम्बाई २७०० मील है और इसके द्वारा यात्रा करने में १५ दिन लगते हैं। यूरोप महाद्वीप के मास्को नगर से म्नाडीबोस्टक बन्दरगाह तक पहुँचने के लिये केवल १५ दिन लगते हैं। इसके अनिश्चित एक अन्य पाड़ी भी ट्रान्स कास्पियन रेलवे मुरघिज है जो लगभग २००० मील लम्बी है।

पशुधारा का जीवन देश की जनसंख्या तथा जलवायु पर आधारित होता है। इनमें कुछ पास्तू पशु होते हैं जिससे घरेलू कार्य लिये जाते हैं तथा दूध भी मांस मत्स्य प्राप्त होता है। चीन के पामीर के पठार में स्थित मैमोपोटामिया में जेडिया, रीघ सोमड़ी, गानू, बीजा आदि जयमी जानवर मिलते हैं। दुर्गम प्रदेश में बाख्मिज तथा स्पी में चाड़े भेड़ बकरी बिल मिलते हैं। ईरान में ऊँची और छोटी शिखर में याक नाम का जानवर होता है। याक भारत के बिल में मिलाता-जुलता जानवर है जो बिल में ही खरब काम करता है। रेगिस्तानी प्रदेशों में ऊँट लाभदायक पशु होता है। इसके अनिश्चित मत्स्यजी प्रदेशों में चोड़ा हिरण मर भी मिलते हैं। मान

सूनी प्रवेष्टों में तथा पूर्वी द्वीप समूह के टापुओं में जैसे—बाबा सुमात्रा बोर्निओ इत्यादि में बम्बर, नीले भानू हाथी सीमुर हिरण हार्ना तापिर बंन चौड़े भंस भेड़ बकरी धावि जानवर पाये जाते हैं। बिद्यास धाकार के पशुओं को एक विशेष जलपाश की आवश्यकता पड़ती है। उनके अनुकूल वातावरण में ही वे पनप सकते हैं। प्राचीन बीर्बाकाय सरीसृप प्रायः सोप हो चुके हैं। प्राचीन युग में भी बीर्बाकार धरीर वाले जानवर जैसे भेर मयूर, हाथी गेंडा धावि भीरे-भीरे छुस होते जा रहे हैं। आबाजमन के साबनों तथा विष्वंसकारी हथियारों के प्रयोगों से इनका जीवन यापन दुर्लभ है।

एशिया के विषमकुल उत्तर में एक ठूड़ा प्रदेश है। यहाँ पर बर्फ अधिक पड़ती है। यह हर समय बर्फ से ढका रहता है। यहाँ थोड़ी यनीसी सीमा नाम की तीन नदियाँ बहती हैं। सदियों में इनके निकलने का उबराम स्थान जम जाता है। यहाँ भीमें तथा दलबल अधिक है। यहाँ के रहने वाले लोग ऐस्कीमो कहलाते हैं। ये लोग घरती के बूसरे लामो स विषमकुल प्रलय होते हैं। इनका नाम मस्सी भारमा और ठिंकार बेलना होता है। यहाँ बारहसिमा नामक जानवर पाया जाता है। इसके पैरों के बुर चिरे होने के कारण यह बर्फ पर नहीं चिम्स सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ कुत्ते भी पाये जाते हैं। ये लोगों जानवर ऐस्कीमो लोगों की स्लेज गाड़ी को खींचने के काम आते हैं। ये लोग बर्फ में बर बनाते हैं तथा बारहसिमा की खास के कपड़े पहिनाते हैं। ये लोग मांस मछली खाते हैं। यहाँ पेड़ पीछे पैरा नहीं होते हैं।

ठूड़ा प्रदेश के नीचे ब्रिजण में पूर्वी साइबेरिया नाम का देश है। समस्त प्रदेश पठारी होने के कारण यहाँ मैदान का अभाव है। यह पठारी भाग जंगलों से ढँका हुआ है। ये जंगल बहुत दूर तक फैले हुए हैं। इन जंगलों में फर सनोवर लार्च के पेड़ बहुत हैं। अत्यधिक ठण्ड पड़ने के कारण यहाँ की जलसंध्या बहुत कम है। इसके पूर्व में म्वाजीबोस्टक नन्दरगाह है।

म्वाजीबोस्टक ही ट्रान्ससाइबेरियन रेलवे का अंतिम स्टेशन है। यहाँ का बरबोमास्क नामक स्थान संसार का सबसे ठण्डा स्थान है।

इस देशों के मिश्रण ही साइबेरिया का बूसरा हिस्सा पश्चिमी साइबेरिया है। यह एक जीम्स मैदान है। जो यूराल पर्वत तथा यनीसी नदी के बीच में है और थोड़ी नदी इसमें बहती है। इस देश में रूस का राज्य है। अभी रूस में इनमें से ही पैरा करले का विचार तय किया है। इस देश का ऊपरी

मनुष्य के रूप महाद्वितीय अध्ययन

हिस्सा तो बहुत ठन्डा है। और बीच में यहाँ बासा हिस्सा है। और नीचे बासा भाग जामबरो के बरने का स्थान है। यहाँ एक अस्टाई नाम का विशाल परबत है जिसमें सोना चाँदी, सोसा मिलता है। इनकी राजधानी टोमस्क है। इस शहर के पास ही अधिक सोना मिलता है। इसके अतिरिक्त यहाँ मोमस्क नाम का बड़ा शहर है। यहाँ से मक्खन का व्यापार बहुत होता है।

सुर्विस्तार—इस देश को पुरान भी कहते हैं। इस देश में तुर्क लोग अधिक रहते हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े मैदान हैं। जिनमें घास उगती है। इन घास के मैदानों में कहीं-कहीं खीस तथा बलरन हैं। इसे स्टीपी प्रदेश भी कहते हैं। यहाँ पर लगभग बार माह तक बर्फ पड़ती है। इस बर्फ के पिघलने ही वहाँ सुन्दर फूल उगते हैं जो गर्मी में सूख जाते हैं। यहाँ के रहने वाले लोगों को खिरवीज तथा कालमुक कहते हैं। इन लोगों का रहन-सहन अन्य देशों से भिन्न है। इनके बरने के स्थान बड़े हुए होते हैं। ये लोग घनी के बिलों में अपने जामबरो को बरने के लिये ऊँचे पहाड़ पर ले जाने हैं। इनका एक बलता फिटा घर होता है, जिसे कब्रिस्तान कहते हैं। इसे मुड़ाकर ऊँटों पर भी बाँधा जा सकता है। उन जामके के नीचे काशीन गनीबा रूपके मौस, सबकुछ इन्हें अपने जामबरो से प्राप्त होता है। एक जगह घास समान होने पर ये अपने जामबरा को दूसरी जगह ले जाते हैं। इनका रहन-सहन अमलसीस जातियों की भाँति होता है। सुर्विस्तार के नीचे की ओर सर तथा घामू नदियों से सिंचाई होती है जिससे यहाँ सब उम्माड़ भाषि की बेटी होती है तथा अहतत के पेड़ों पर रोग के कीड़े पाने जाते हैं। सेब नाशपाती अंगूर आदि फल बहुत होते हैं। इस प्रदेश में द्राक्ष नास्पियन रेलवे बनती है। इस देश का सबसे बड़ा शहर ताशकन्द है। ताशकन्द ही यहाँ की राजधानी है। यहाँ पर फल अधिक पैदा होते हैं तथा बाँझ बनाने का काम किया जाता है।

एशिया के पास ही भूमध्यसागर है। उसके निचटबर्ती देशों को भूमध्य सागरीय प्रदेश कहते हैं। इस प्रदेश में कुछ बड़े देश हैं, जैसे—एशिया माइनर, आरमीनिया सुर्विस्तार मैसोपोटामिया आरिया मेसोस्टाइन और काकेशिया आदि। ये देश भूमध्यसागर के निचटम निचट हैं। जलवायु भी वही ही है।

एशिया माइनर—इसका अधिकांश भाग पठारी है। अथवा ऐसब यहाँ होकर जाती है। घोड़, फर जैतून, अंजीर आरंगी नींबू, सेब के पेड़ यहाँ पर अधिक हैं। यहाँ की नहरियाँ भी उन सुन्दर तथा सुसायन होती हैं।

यहाँ घोना चाँदी, सीसा मोहा और कोयला भी मिलता है। यहाँ के निबुज्ज नगर, बूसर आदि प्रसिद्ध नगर हैं। बगदाद रैलवे निबुज्ज से प्रारम्भ होती है।

भारसीनिया और कुदिस्तान—यह एक बहुत ऊँचा पठारी भाग है। यहाँ पर अररात नाम का बहुत बड़ा पहाड़ है जिससे बजला-अररात नाम की दो बहुत बड़ी नदियाँ निकलती हैं। यहाँ सारे पानी की तीन बड़ी भीर्म हैं। यहाँ पर तम्बाकू कपास और अँधूर पैदा होते हैं। यहाँ के लोगों का मुख्य धन्दा भेड़ें पालना और भेड़ी बरना है। भेड़ों की ऊँच से कन्वस कासीन दुधामे धादि बनते हैं। इसकी राजधानी एरीबान है।

किमिस्तान और सीरिया—यह दो पहाड़ों के बीच एक घाटी है। समान बसा हुआ है। इसमें बार्डन नामक नदी बहती है। जो मृत सागर नामक समुद्र में गिरती है। यहाँ बक्स नामक बन्दरगाह है तथा यह सीरिया की राजधानी है। यहाँ की बाटियों में अँतून अँधूर अँबीर धादि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ एक अजसलम नामक नगर है, जो फिसस्तीन की राजधानी है। अज महदियों ने अजस ही इजराइल नामक राज्य बना लिया है। बार्डन नदी इतनी छोटी है कि उसमें मछलियाँ भी जीवित नहीं रह सकती हैं। इसलिये वहाँ अधिक मात्रा में नमक बनाया जाता है।

मैसेपोटामिया—इसी भाग में बजला अररात नामक नदियाँ बहती हैं। इन दोनों के बीच का स्थान मैसेपोटामिया कहलाता है। अब यह भाग ईराक के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ की मिट्टी अच्छी होने के कारण मक्का यहाँ जो कपास धादि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, इस कारण से यहाँ के लोग जमीन के नीचे मकान बनाकर रहते हैं। यहाँ मिट्टी का तेल भी निकाला जाता है। नदियों से नावों द्वारा व्यापार भी किया जाता है। मोसल बगदाद बसरा धादि यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। बगदाद तो पुराने समय में सलीफादों की राजधानी भी रहा है। इसमें छुपारे अधिक पैदा होते हैं। यहाँ के छुपारे प्रसिद्ध होने के कारण उन्हें दूर-दूर तक भेजा जाता है। बगदाद और बसरा हवाई रास्ते के बीच में पड़ते हैं। यहाँ से अम्बल सिगापुर को हवाई जहाज जाते हैं।

कस्बिझिया—यह कालासागर तथा कालियम सागर के बीच में स्थित है। अब इसके दो भाग हो गये हैं जो क्रमशः जाबिया तथा एजल-बीजल के नाम से पुकारे जाते हैं। इन देश के बीच की घाटी में गह्रें अँधूर, नारंगी,

मनुष्य के रूप : महादीपीय मध्यम

मक्का तम्बाकू कपास आदि अधिक पैदा होती है। यहाँ तरह-तरह की जाति रहती है। यहाँ पर मिट्टी का तेल बहुत निकलता है। इसके लिये बाकू नामक शहर बहुत प्रसिद्ध है। इसका आसपास तेल के सैकड़ों कुए हैं।

मध्यस्थतीय प्रवेश शुष्क होते हैं तथा चारों ओर बाकू रेत के पहाड़ होम हैं। पानी बहुत कम बरसता है जिससे पैदावार कम होती है तथा कहीं-कहीं तो बिल्कुल ही नहीं होती है। एशिया में शरब फारस अफगानिस्तान आदि बड़े रेगिस्तानी देश हैं।

शरब देश के तीनों ओर समुद्र है, इसका पश्चिमी भाग तो बिल्कुल रेगिस्तान है, यहाँ खजूर के पेड़ अधिक हैं। यहाँ का मुख्य नगर मक्का है। यहाँ पर मुसलमान धर्म प्रचारक हजारों मुहम्मद साहब पैदा हुए थे। इसलिये मक्का मुसलमानों का तीर्थस्थान है। यहाँ का दूसरा शहर मदीना है। मदीना में भी खजूर अधिक पैदा होते हैं। यह शहर भी मुसलमानों का धार्मिक स्थान है। इसका नीचे का भाग जवाब पड़ा हुआ है। यहाँ भी बहुत कम होती है। यहाँ की जन-संख्या बहुत कम है। इस भाग में प्रत्येक बड़ा शहरनाह है, जहाँ जहाज कोयला लेते हैं। शरब में बहुत सोंग रहते हैं। ये सोंग घर बनाकर नहीं रहते हैं। ये ऊट पोके मेड़, बकरियाँ पास ले हैं। ऊट यहाँ का रेगिस्तानी जहाज है। ये सोंग गाँव, खजूर वृक्ष आदि से घेरे पासते हैं। जानवरों को चराना तथा कर्मियों को रास्ता बताना ही इनके मुख्य कार्य हैं। शरब के बीच में वास्तविक रेगिस्तान है। जहाँ पर रात में भारी ठण्ड पड़ती है तथा दिन में बड़ी ही गर्मी जिससे बहुतों का दूध-भूटने का कार्य होता रहता है। यहाँ पोका घनाब, खजूर, दाल आदि पैदा होते हैं। फारस की छाड़ी शरब के बीच है। जहाँ पर बहुरिम नामक टापू है। टापू के चारों तरफ जल होता है। यहाँ मोती निकालने का कार्य किया जाता है। नजब नामक पठार शरब के बीच में है। यहाँ के लोगों की धार्मिक स्थिति बहुत बराबर है। इनका मुख्य मोत्रम खजूर तथा ज्वार है तथा यही यहाँ की पैदावार है।

फारस एक पहाड़ी रेगिस्तान है। यहाँ नदियाँ बहुत कम हैं। यहाँ तम्बाकू कपास घनाब रेशम उज्ज अफीम घाराब और गुलाब के फूल अधिक होते हैं। यहाँ से इन निकाला जाता है। यहाँ पर काफी तेल के कुए हैं तथा केवल एक रेशम नाल है। इसका प्रसिद्ध शहर तेहरान है। यही राजधानी है। गीराब नामक शहर गुलाब का है तथा शरब के लिये प्रसिद्ध है।

यहाँ सोना चाँदी सीसा लोहा और कोयला भी मिलता है। यहाँ के निबूजन स्मरणा, बसुरा आदि प्रसिद्ध नगर हैं। बगदाद रेलवे निबूजन से प्रारम्भ होती है।

आरमीनिया और कुर्विस्तान—यह एक बहुत ऊँचा पठारी भाग है। यहाँ पर अरारात नाम का बहुत बड़ा पहाड़ है जिससे बजसा-फरात नाम की दो बहुत बड़ी नदियाँ निकलती हैं। यहाँ आरे पानी की तीस बड़ी झीलें हैं। यहाँ पर तम्बाकू कपास और धंशूर पैदा होते हैं। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़ें पालना और खेती करना है। भेड़ों की ऊँ से कच्चा कालीन बुनाने आदि करते हैं। इसकी राजधानी एरीवान है।

फिलिस्तीन और सीरिया—यह दो पहाड़ों के बीच एक चाटी के समान बसा हुआ है। इसमें जार्दन नामक नदी बहती है। जो भूत सागर नामक समुद्र में गिरती है। यहाँ बक्स नामक बन्दरगाह है तथा यह सीरिया की राजधानी है। यहाँ की चाटियों में खैतून धंशूर रबीर आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ एक जक्ससम नामक नगर है, जो फिलिस्तीन की राजधानी है। अब यहूदियों ने अलग ही इजराइल नामक राज्य बना लिया है। जार्दन नदी इतनी घाटी है कि उसमें मछलियाँ भी बीचिन नहीं रह सकती हैं। इसलिये यहाँ अधिक मात्रा में मत्स्य बनाया जाता है।

मैसोपोटामिया—इसी भाग में बजसा फरात नामक नदियाँ बहती हैं। इन दोनों के बीच का स्थान मैसोपोटामिया कहलाता है। अब यह भाग ईराक के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ की मिट्टी अच्छी होने के कारण मक्का भेड़ें और कपास आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, इस कारण से यहाँ के लोग जमीन के भीतर मकान बनाकर रहते हैं। यहाँ मिट्टी का तेल भी निकाला जाता है। नदियों से नावों द्वारा व्यापार भी किया जाता है। मोसल अबदाद बसुरा आदि यहाँ के प्रसिद्ध सहर हैं। बगदाद दो पुराने समय में सभीफार्मों की राजधानी भी रहा है। इसमें कुमारे अधिक पैदा होते हैं। यहाँ के कुमारे प्रसिद्ध होने के कारण उन्हें दूर-दूर तक भेजा जाता है। बगदाद और बसुरा हवाई रास्ते के बीच में पड़ते हैं। यहाँ से कन्दल सिगापुर की हवाई जहाज जाते हैं।

कैस्पिया—यह कालासागर तथा कास्पियन सागर के बीच में स्थित है। अब इसके दो भाग हो गये हैं जो क्रमशः जार्जिया तथा एजम-बैजान के नाम से पुकारे जाते हैं। इस देश के बीच की चाटी में बहुत खैतून नारंगी

मनुष्य के रूप : महाशीवीय सम्प्रदाय

मक्का तम्बाकू कपास आदि अधिक पैदा होती है। यहाँ तरह-तरह की जाति रहती है। यहाँ पर मिट्टी का तेल बहुत निकलता है। इसके लिये बाकू नामक शहर बहुत प्रसिद्ध है। इसके आसपास तेल के संकड़ा कुए हैं।

मध्यस्थानीय प्रदेश सुष्प होती है तथा चारों ओर बाबू रेत के पहाड़ होते हैं। पानी बहुत कम बरसता है जिससे पैदावार कम होती है तथा कहीं-कहीं तो बिलकुल ही नहीं होती है। एशिया में अरब फारस अफगानिस्तान आदि बड़े रैगिस्तानी देश हैं।

अरब देश के तीनों ओर समुद्र है, इसका पश्चिमी भाग तो बिलकुल रेगिस्तान है यहाँ खजूर के पेड़ अधिक हैं। यहाँ का मुख्य नगर मक्का है। यहाँ पर मुसलमान धर्म प्रचारक हजरत मुहम्मद साहब पैदा हुए थे। इसलिये मक्का मुसलमानों का तीर्थस्थान है। यहाँ का दूसरा शहर मदीना है। मदीना में भी खजूर अधिक पैदा होते हैं। यह शहर भी मुसलमानों का आधिक स्थान है। इसका नीचे का भाग उजाड़ पड़ा हुआ है। वर्षा भी बहुत कम होती है। यहाँ की जन-संख्या बहुत कम है। इस भाग में घबल एक बड़ा बन्दरगाह है जहाँ जहाज कोयला लेते हैं। अरब में बहुत लोग रहते हैं। ये लोग घर बनाकर मही रहते हैं। ये ऊँट बोक्रे भेड़ बकरीयाँ पालत हैं। ऊँट यहाँ का रेगिस्तानी जहाज है। ये लोग मांस, खजूर, दूध आदि से पेट पालते हैं। जानवरों को बराना तथा काफिलों को रास्ता बताना ही इनके मुख्य कार्य हैं। अरब के बीच में वास्तविक रेगिस्तान है। जहाँ पर रात में भारी ठण्ड पड़ती है तथा दिन में बड़ी ही गर्मी जिससे बट्टानों का टूटने-फूटने का कार्य होता रहता है। यहाँ थोड़ा घनाब, खजूर आम आदि पैदा होते हैं। फारस की खाड़ी अरब के नीचे है। जहाँ पर बहरिन नामक टापू है। टापू के चारों तरफ जल होता है। यहाँ मोती निकालने का कार्य क्रिया जाता है। नजद नामक पठार अरब के बीच में है। यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। इनका मुख्य भोजन खजूर तथा ज्वार है तथा यही यहाँ की पैदावार है।

फारस एक पहाड़ी रैगिस्तान है। यहाँ मछियाँ बहुत कम हैं। यहाँ तम्बाकू कपास अनाज रेशम ठम अफ्रीम खराब और गुलाब के फूल अधिक होते हैं। फूलों से इन निकाला जाता है। यहाँ पर काफी तेल के कुए हैं तथा केवल एक रेलवे साधन है। इसका प्रसिद्ध शहर तेहरान है। यही राजधानी है। गीराज नामक शहर गुलाब का देश तथा खराब के लिये प्रसिद्ध है।

भारत और रूस के बीच में एक छोटा सा देश अफगानिस्तान है। यह पहाड़ी देश है। इसके एक भाग में शिमला है। यहाँ पर बाढ़ों से बर्ष पड़ती है और गर्मियों में विशेष गर्मी फिर भी पहाड़ों के उपरी भाग की जलवायु अच्छी है। यहाँ के निवासी अफगान कहलाते हैं। ये नाम डूमते रहते हैं। इनका कार्य जानवर चराना तथा व्यापार करना है। यहाँ की घाटियों में गहूँ ब फस होते हैं। यहाँ सोना चाँदी लाख मोह्र ताँबा आदि की खानें हैं। यहाँ से ५ बड़े-बड़े रस्ते विश्वा को जाते हैं। काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। यह प्रसिद्ध शहर भारत और एशिया के बीच का व्यापारिक स्थान है। कन्धार भी एक बड़ा शहर है। यह शहर भारत का द्वार कहलाता है।

मानसूनी प्रदेशों में निश्चित महीनों में वर्षा होती है। यहाँ पर एशिया के सबसे अधिक लोग रहते हैं। यह देश अधिक जनमान तथा व्यापार में सबसे भागे हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ की मिट्टी अच्छी होने के कारण यहाँ पैसाबार भी अच्छी होती है। जितने भी पुराने आविष्कार तथा संस्कृतियों सम्मत हैं, वे सब भारत तथा चीन से प्रारम्भ हुई हैं। पुराने धर्म यही से बने हैं। मानसूनी देशों में भारत पाकिस्तान का बर्मा मलाया इन्डोचायना चीन जापान हैं।

बर्मा—यह भारतवर्ष के पूर्व में स्थित बर्मा या ब्रह्मा नाम से जाना जाता है। पहले यह भारत का ही एक भाग था। यहाँ जल, कपास मकई ज्वार, बाजरा उम्माऊ आदि पैदा होते हैं। रंगून यहाँ की राजधानी है। यह एक विशाल नगरगाह है। यहाँ पर मकड़ी चावल तथा तेल साफ करने के कारखाने हैं। दूसरा प्रसिद्ध शहर मायमे है, जो यहाँ की प्राचीन राजधानी थी। यहाँ व्यापार अधिक होता है, यहाँ मकड़ी पीरने के कारखाने हैं। बर्मा में मिट्टी का तेल निकाला जाता है। यहाँ हाथी अधिक पाये जाते हैं। यहाँ के सस्ते हाथी अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ चाँदी तथा लोहे आदि की खानें हैं।

चीन—एशिया के पूर्वी भाग में चीन है यहाँ पर विश्व में सबसे अधिक लोग रहते हैं। यहाँ की जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है। इसका क्षेत्रफल १० लाख वर्गमील के लगभग है। इसके मध्य में एक पहाड़ है जो इसको दो भागों में विभक्त कर देता है। यहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ है। ऊपर के भाग में तेहूँ अधिक पैदा होता है तथा नीचे के भाग में अधिक वर्षा होती है।

मनुष्य के रूप : महाद्वीपीय अध्ययन

यहाँ पर अन्य देशों से अधिक चावल पैदा होता है। यहाँ बाहुतूर के पेड़ अधिक हैं। यहाँ रेशम चावल, चाय सूत अन्धे घादि अधिक पैदा होते हैं। इगका व्यापार भी दूसरे देशों से होता है। यहाँ पर कोयला सोडा लावा टीन सीसा कौसी घादि खनिज पदार्थ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ रबड़ तथा पटसन के कारखाने हैं। नरेन्डू इन्स्कारिया से चीम बहुत बड़ा बढ़ा है। यहाँ चीनी के बर्तनों पर सुन्दर बेल-बूटे बनाये जाते हैं और रेशम तथा जरी का कार्य बहुत सुन्दर किया जाता है। रेशम की पट्टियों पर नामा प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं जिनका व्यापार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यहाँ पैदावार अच्छी होती है तथा झांगहो और यांगसीक्यांग नामक नदियाँ बहती हैं। झांगहो तो चीन का शोक कहलाती है क्योंकि इसमें बाढ़ आने से शहर के शहर बर्बाद हो जाते हैं।

नेपाल—तिब्बत और भारत के बीच में नेपाल नामक देश है। इसमें कौकी पैदा होती है। इस देश के नीचे का भाग तराई का भाग कहलाता है। इसमें ऊपरी भाग में पहाड़ अधिक हैं। बीसविरी कंभनमंषा तथा एबरेस्ट की बहुत ऊँची श्रेणियाँ यहीं पर हैं। एबरेस्ट बिस्व का सबसे ऊँचा शिखर है। यह समुद्रम २८६ मील ऊँचा है। यहाँ पर कपास चावल गेहूँ, गन्ना तम्बाकू घादि पैदा होते हैं। साम लोचम बाँस घादि के बड़े बंगल हैं। यहाँ चाय भी होती है। बंगलों में बड़े-बड़े जानवर जैसे भेड़ चीता हाथी भेड़िया भकड़बग्गा और हिरन घादि जानवर पाले जाते हैं। जस्तूरी का हिरन भी यहीं मिलता है। यहाँ लावा सीसा जस्ता घादि की पालें अत्यधिक मात्रा में पायी जाती हैं। यहाँ मूरे रंग का कोयला जूने का पत्थर घादि भी काफी मात्रा में मिलता है। यहाँ मंथोल घादि के लोग निवास करते हैं। नेपाल की तराई में गोरखा नामक जाति रहती है जो अपनी बहानुरी और बख्खारी के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

हिन्द महासागर तथा प्रशांत महासागर के बीच छोटे बड़े बहुत से टापू हैं। इन टापुओं को 'इन्डोनेशिया' कहते हैं। ये टापू लगभग २०० हैं। जिनकी सम्बाई लगभग १००० मील और चौड़ाई लगभग ११० मील है। इनमें बड़े टापू, मुमाबा जावा सेलबोर्न बोर्नियो और सुमिनि हैं। इनमें भी सुमिनी सबसे बड़ा है। इन टापुओं की जमीन बहुत पथरीली है। इन पहाड़ों से गर्म तावा निकलता है जो वायु में ठण्डा होने पर काफी मिट्टी का रूप धर भेता है। इन्डोनेशिया में ऐसी ही जमीन है, जिसका एक तिहाई भाग अधिक

उपजाऊ है। इसमें घान मकई, सामुदायिक चावल कौन्से सिन्कोना भादि पैदा होते हैं। जो बाहर के देशों को भेजे जाते हैं। यहाँ से मछली पेट्रोलेियम टिम रबर, गारियल चाय भादि का दूसरे देशों से व्यापार अधिक



चित्र १०

होता है। इण्डोनेशिया में महिलाएँ कम नहरी तथा तेज बहने वाली होती हैं। यहाँ फील्ड भी अधिक है। यहाँ भारी वर्षण है। इन जंगलों में घेर सुभा साँप पैदा तथा अति सुन्दर चिड़ियाएँ अधिक हैं।

यहाँ की जनसंख्या लगभग २ करोड़ है। यहाँ मलायी जाति के समुच्च अधिक रहते हैं। यहाँ मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहाँ की सहरी स्त्रियाँ यूरोप जैसी पोशाक पहनती हैं। यहाँ पर साल भर वर्षा होती है। वहाँ की जलवायु गर्मी है। यहाँ पर न अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी है। यहाँ अनेकों भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ की राष्ट्रभाषा मलयाई है।



चित्र ११—इण्डोनेशियन लोग

मनुष्य के रूप महाद्वीपीय अध्ययन

इग्जोनेटिया की वृत्त्यकता अधिक प्रसिद्ध है। बाली टापू का मुख्य बिन्दु विख्यात है। जकरता बोम्बाकारता सराबिया इग्जोनेटिया के प्रसिद्ध सहर हैं। बोम्बाकारता इसकी राजधानी है। इन टापूओं को पूर्वी द्वीप समुह भी कहते हैं। ये टापू पक्का तथा गरम मसाले के लिये प्रसिद्ध हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जापान का निर्मित मास दूसरे देशों को निर्यात किया जाता था। उस समय जापान देश अन्न के निर्यात पर था। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध में हार जाने के कारण इसकी बहुत औद्योगिक इन्धन हुई जिसकी यह सब पूर्ति कर रहा है। यह कई बाठों से यूरोप से मिलता-जुलता है। जापान की खनिज स्रोतों के सहाय हैं। यह पूरा पहाड़ी देश है। यहाँ पर फ्यूजीयामा नामक ज्वालामुखी पर्वत बहुत प्रसिद्ध है।

यहाँ पर प्रीम्य जल में बर्बा होती है तथा शहर जल से सूखा पड़ती है। वहाँ एक क्योरोसीको नामक गर्म पानी की बाग बहती है। यहाँ के मध्यमाय से समुद्र लगभग सी सील दूर है। यहाँ पर जल विद्युत, कोयला पेट्रोल अधिक होते हैं। यहाँ का समुद्री किनारा कटा-फटा है। यहाँ कई तरह के कारखाने भी हैं। जंगल अधिक होने के कारण इनमें कोक पाइन कपूर के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। इसके मध्य पतझड़ वाले जंगल पाये जाते हैं। यहाँ के लकड़म ५ % भावना होती करते हैं। जी कई राई, माहु, कैहू, बाजरा माहि बहुत पैदा होते हैं। यहाँ की मुख्य फसल चाय चावल, सहस्र की है। यहाँ सबसे अधिक चाय पैदा होती है। बिस्म की २ % चाय जापान से ही प्राप्त होती है। यहाँ की जमीन डालू तथा चाय के लिये खनिज जलवायु है। चाय का दूसरे देशों से निर्यात किया जाता है। वहीं छोटे ही समय पड़ने के कारण चावल की एक ही फसल काटी जाती है। यहाँ चावल अन्य देशों की प्रति एकड़ मात्रा से बहुत अधिक पैदा होता है। सहस्र के लिये जापान प्रसिद्ध है। सहस्र के पड़ क्षेत्र के चारों तरफ लगा दिने जाते हैं तथा इनमें रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। रेशम के लिये भी जापान अधिक प्रसिद्ध है।

टाबा टेल, कोहा तथा कुछ कोयला को भी यहाँ पाये जाता है। यूरो तथा रेशमी कपड़े बनाने का कार्य अधिक होता है। समुद्र के किनारे मछली अधिक पकड़ी जाती है। यहाँ की जनसंख्या को देखते हुए कोयला और लोहा बहुत कम निकलता है। जापान की जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है। यहाँ के

राजपूत के अनुसार आबादी बहुत घनी है। टोकियो यहाँ की राजधानी है जो एक बरबरगाह भी है। यहाँ के सिने यहाँ औरस अमीन है। यहाँ का प्रोसाका नामक सहर सूती कपड़े के लिये अधिक प्रसिद्ध है। नापासाकी में भाँति भाँति के कारखाने हैं तथा कोयला की खानें भी हैं। इसके अतिरिक्त कोल नापोपा धादि आपान के प्रसिद्ध सहर हैं।

प्राचीन काल में भारत अपनी सभ्यता और संस्कृति के लिये प्रसिद्ध था। कुछ वर्ष पहिले पाकिस्तान भारत का एक अंग था किन्तु अब इसके दो भाग हो जाने के कारण भारत का कुछ भाग पाकिस्तान में चला गया। भारत विश्व में एक बड़ा देश माना जाता है। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत बहुत विद्यमान है। बाकी तीन ओर समुद्र है। दक्षिण में हिन्द महा सागर, पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। इसके पड़ोसी दो सँका पाकिस्तान और बाह्या हैं। सुमि की बनावट के अनुसार इसे हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला उत्तर का वह भाग जो हिमालय के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा इसके नीचे यंग और सिन नदियों का मैदान है। यह भाग बड़ा उपजाऊ और समृद्धिवादी है। तीसरा भाग दक्षिणी भारत का पठार है। तथा चौथा भाग है समुद्री तट। भारत के दक्षिण में पूर्वी तट और पश्चिमी तट की दो पहाड़ों की कतार ली गयी हुई है। इसके बीच का भाग समुद्री तट का मैदान कहलाता है। यहाँ नारियल, जूट, गरम मसाले अधिक पैदा होते हैं।

भारत की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ है। जनसंख्या के दृष्टिकोण से इसका विश्व में द्वितीय स्थान है। यहाँ का मुख्य धन्धा खेती करना है। यहाँ के लोग अधिकांश मौकों से रहते हैं। यहाँ हिन्दू मुख्यतः सिख ईसाई धादि अनेक जातियाँ रहती हैं। यह देश बड़ा होने के कारण कई राज्यों में बाँट दिया गया है। इन सभी राज्यों की संसदों पर राज-सदन धादि सभी अलग अलग हैं तथा सभी की भाषा भी अलग-अलग पायी जाती है।

यहाँ नदियों में जल से जल-निष्कास उत्पन्न की जाती है तथा नावों द्वारा व्यापार भी होता है। उत्तर भारत की नदियों में यंग और इसकी सहायक नदियाँ सिन्ध और उसकी सहायक नदियाँ तथा ब्रह्मपुत्र धादि मुख्य हैं। दक्षिण भारत की नदियों में महानदी बाबावरी कृष्णा कावेरी मरवा ताप्ति पेनार वेगई धादि प्रसिद्ध हैं। इन नदियों से सिंचाई के अतिरिक्त जल विद्युत भी पैदा की जाती है।

मनुष्य के रूप महाद्वितीय अध्ययन

भारत एक विद्यालय देता है। इसमें कहीं अधिक गर्मी पड़ती है तो कहा अधिक गर्मी। पहाड़ी भागों में सर्वाधिक पड़ती है और औरम मैदानों में कम। बरसात भी यहाँ एक सी नहीं होती है। केरल में सामान्य रूप पर यहाँ बिस्व में सबसे अधिक वर्षा होती है। जबकि राजस्थान राज्य में बहुत ही कम पानी बरसता है। वर्षा गर्मी सर्वाधिक दोनों में होती है। सर्वाधिक वर्षा केवल मद्रास में होती है।

भारत में कई तरह के जल पाये जाते हैं। जिनमें मुख्य रूप से मानसूनी जल आता है। मुख्य रूप से यहाँ पानी कम बरसता है। ये जल अधिकतर राजस्थान में मिलते हैं। इनमें कीचड़ बहुत के वेड़ मुख्य रूप से पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए पहाड़ी जल औरम जल आदि भी पाये जाते हैं। इन जलनों में साल भरका रंगने का सामान जैसे कामका बनाने की सबाई पास तारपीन व लकड़ी का तेल तथा बहुत तरह की कोमती लकड़ी भी मिलती है, जिनमें चीड़ केबलार लकड़ी इनोवर प्लाईवुड आदि प्रसिद्ध हैं।

यहाँ की फसलों में गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा और मकई प्रमुख हैं। बाजरा उष्णकटिबंधीय फसल है। यहाँ बहुत सर्वाधिक पैदा होता है। कपास भी काफी मात्रा में उत्पन्न होती है तथा बाहर देशों को भी भेजी जाती है। चाय पैदा करने वाले देशों में इसका द्वितीय स्थान है।

भारत में कोयला लोहा मैंगनीज अभ्रक आदि अनेक प्रकार के अधिक मात्रा में पाये जाते हैं तथा कुछ सोना तथा चाँदी भी निकलता है। दिल्ली भारत की राजधानी है। इसके अतिरिक्त जमशेदपुर, बम्बई, कोलकाता, कटक, बिलासपुर, रायपुर, नागपुर मद्रास आदि इसके प्रमुख शहर हैं।

भारत को चार प्राकृतिक भागों में बाँटा गया है। जो ऊपर लिख जा चुके हैं।

(१) उत्तरी पहाड़ी प्रदेश—यह हिमालय पर्वत का भाग है। यहाँ सर्वाधिक गर्मी में बर्फ जम जाती है तथा गर्मी के दिनों में पिघलता प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ पानी तथा औरम जल का रूप धारण करता है। इसीलिए नंगा नहीं बाँध पाती बहती रहती है। हिमालय पर्वत सबसे ऊँचा तथा १२० मीटर लम्बा है। यह उत्तर से दक्षिण तक १२० से २०० मीटर तक लम्बा

है। हिमालय पहाड़ के ऊपर की तरफ पामोर का पठार है। जिससे हिमालय पहाड़ निकला है। काश्मीर से लेकर आसाम तक के भाग को बड़ा हिमालय कहा जाता है। इसकी ऊँचाई लगभग २० हजार फुट है। इसी भाग में एवरेस्ट की चोटी भी है। जिसकी ऊँचाई २९००० फीट है। इस भाग में मन्ना देवा तथा यन्मगिरी धारि चोटियाँ भी हैं। इसके नीचे ५ मील चौड़ा और लगभग १५ हजार फुट ऊँचा भाग है जो छोटा हिमालय कहा जाता है। इस जगह पर भारत का सुन्दर पहाड़ी शहर बसे हुए हैं। जिनमें गर्मी के दिनों में लोग जाते हैं। सिमला, मनीषाल, मसूरी, शिमला, धारि शहर यही बसे हुए हैं। इसका तीसरा भाग सहायक हिमालय कहा जाता है। वह भाग उत्तरी मैदान के मध्य है। यहाँ की मुख्य चोटी को टिबेटिक कहते हैं। छोटे हिमालय तथा सहायक हिमालय के मध्य उपजाऊ भूमियाँ भी हैं जो कहीं कहीं इन के मैदान कहें जाते हैं। हिमालय के नीचे का भाग तराई कहा जाता है। इस भाग में बने बंगल बसे हैं। वर्षा अधिक होने के कारण यहाँ पानी अधिक एकत्रित हो जाता है, जिससे बलबल हो जाता है। यहाँ की जलवायु अच्छी न होने के कारण से यहाँ जन-समाज नहीं रहता है।

यह कहा जाता है कि जिस स्थान पर आज हिमालय पर्वत स्थित है, इस स्थान पर पहिले टेथिस नामक एक बड़ा समुद्र था जिसमें नीचे बड़-बड़े पहाड़ थे। इस समुद्र में नवियाँ हर साल मिट्टी लाकर इकट्ठी कर देती थी इस प्रकार मिट्टियाँ जमावार बनती रहीं। धीरे धीरे यही मिट्टी का ढेर ५ मील ऊँचा हो गया। इस ढेर के बीच से समुद्री तल नीचे जलवा बसा गया और हिमालय ऊपर आ गया। इस तरह हिमालय बना।

हिमालय से इन अनेक नाम हैं। हिन्दू महासागर से पानी बकर हवा में बनती है और इससे आकर टकरा जाती है। तब नीचे के मैदानों में वर्षा होती है। हिन्दुस्तान की मुख्य नवियाँ गंगा जमुना धारि सभी इससे ही निकलती हैं जिनमें कतों की सिंचाई होती है तथा उससे पैदावार अच्छी होती है। भारत से ऊपर साइबेरिया जो बहुत ठण्डा प्रदेश है, से ठण्डी हवा में बनती है, जो हिमालय से रुक जाती है। यदि हिमालय न होता तो इन ठण्डी हवाओं के आने से भारत में बहुत ठण्ड पड़ती। इसके दक्षिण में बहुत वर्षा है। जिससे कीमती मक्की मिलती है। पहाड़ी भागों में कई तरह के जलबट भी पाने जाते हैं जिनका शिकार किया जाता है। इस पहाड़ के ढालों पर जलबट बराबे जाते हैं तथा भाग भी पैदा हो जाती है।

(२) इन्दरी भारत का मैदान—यह मैदान हिमालय से निकली नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है। पहले यहाँ समुद्र था परन्तु जब समुद्र सूख गया तब यहाँ मैदान बन गया। यह मैदान लगभग २००० मीटर लम्बा है। नदियाँ जो मिट्टी अपने साथ पहाड़ से बहा लाती हैं, उसे इस मैदान में जाकर बिछा देती हैं। यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। यह मैदान हिन्द के उपजाऊ मैदानों में से एक है। हिन्दी के पास इस मैदान के दो भाग हो गये हैं। एक तो पश्चिम में सिन्ध नदी का मैदान तथा दूसरा पूरब में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान है। यह भूमि बहुत उपजाऊ है। इस मैदान की मिट्टी बहुत पट्टी है जिससे महरों और नदियाँ सरसता से निकासी जा सकती हैं। यह मैदान कहीं कहीं औरत तथा झाड़ू भी है। जिससे इसमें रेलमार्ग तथा सब्जों सरसता से निकासी जा सकती हैं। इस मैदान की जलवायु अच्छी है। यहाँ एक धोर कपास होती है तथा दूसरी धोर गन्ना। बहुत चावल बूट तथा मक्का अधिक पैदा होता है। यहाँ पनी भाषाओ बसो हुई है।

(३) बलियाँ पठार—यह भाग बहुत प्राचीन है। यह हमारे देश के बलियाँ में है। जो भाग अधिक ऊँचे हैं वे तो पहाड़ बन गये हैं। पहले यहाँ ज्वालामुखी पहाड़ थे। पहाड़ों के कारण यहाँ की भूमि काली है। बलियाँ पठार में ऊपर की तरफ विष्णुचक्र सतपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं तथा पूर्व की तरफ राजमहल प्राय की पहाड़ियाँ हैं। इसके पश्चिम में कई दर्रे हैं। जो मोरवाट पालवाट प्राय के नाम से जाने जाते हैं। इस भाग में कई नदियाँ बहती हैं जैसे महानदी कुन्ना कावेरी गोदावरी प्राय। इन नदियों की बाटी उपजाऊ है। इस पठार की मिट्टी काली है जिसमें कपास अधिक होती है। यहाँ के कुछ भागों में ठीक वर्षा होती है। यहाँ बने जंगल भी हैं। यहाँ की नदियाँ नदियों में सूख जाती हैं। यहाँ के जंगलों से जलविद्युत पैदा की जाती है। बलियाँ पठार में कोयला भीड़ा धातु काफ़ी मात्रा में निकलता है। यहाँ पेवावार धर्म स्थानों की अपेक्षाकृत कम होती है।

(४) समुद्री किनारे के मैदान—समुद्र के पास छोटे छोटे दो मैदान हैं। उनमें एक तो पूरब की ओर है जो पूर्वी किनारे का मैदान कहलाता है। यह मैदान पूर्वी बाट धोर बंगाल की खाड़ी के बीच में है। इसका ऊपरी भाग उत्तरी सरकार धोर नीचे का भाग कर्नाटक कहलाता है। यह मैदान महानदी गोदावरी कावेरी प्राय के डेल्टा से घिरा हुआ है। डेल्टा वह जगह है जहाँ पानी समुद्र में गिरने के बल जायी मिट्टी बिछा देती है। इन डेल्टों की मिट्टी

है। हिमालय पहाड़ के ऊपर की तरफ पामीर का पठार है। जिससे हिमालय पहाड़ निकला है। काश्मीर से लेकर आसाम तक के भाग को बड़ा हिमालय कहा जाता है। इसकी ऊँचाई लगभग २ हजार फुट है। इसी भाग में एमरेस्ट की चोटी भी है। जिसकी ऊँचाई २९०६९ फीट है। इस भाग में मन्दा देवा तथा यमनगिरी आदि चोटियाँ भी हैं। इसका नीचे ३ मील चौड़ा और लगभग १५ हजार फुट ऊँचा भाग है जो छोटा हिमालय कहा जाता है। इस जगह पर भारत के मुख्य पहाड़ी शहर बसे हुए हैं। जिनमें गर्मी के दिनों में लोग आते हैं। चिमला नैनीताल मंसूरी वाग्लिमिय आदि शहर यहीं बसे हुए हैं। इसका तीसरा भाग सहायक हिमालय कहा जाता है। यह भाग उत्तरी मैदान के मध्य है। यहाँ की मुख्य चोटों को उपनिबि कहते हैं। छोटे हिमालय तथा सहायक हिमालय के मध्य खण्डाक घाटियाँ भी हैं जो कहीं कहीं दून के मैदान कहे जाते हैं। हिमालय के नीचे का भाग उखाई कहा जाता है। इस भाग में बने जंगल सड़े हैं। वर्षा अधिक होने के कारण यहाँ पानी अधिक एकत्रित हो जाता है, जिससे वसन्त हो जाता है। यहाँ की बसबाहु घनछी न होने के कारण से यहाँ जन-समाज नहीं रहता है।

यह कहा जाता है कि जिस स्थान पर आज हिमालय पर्वत स्थित है, इस स्थान पर पहिले टेपिस नामक एक बड़ा समुद्र था जिसमें नीचे बड़े-बड़े पहाड़ थे। इस समुद्र में लबियाँ हर साल मिट्टी लाकर इकट्ठी कर देती जो इस प्रकार मिट्टियाँ लगातार बमती रही। धीरे धीरे यही मिट्टी का ढेर १ मील ऊँचा हो गया। इस ढेर के बीच से समुद्री तल नीचे बसता जाता गया और हिमालय ऊपर आ गया। इस तरह हिमालय बना।

हिमालय से हमें अनेक लाभ हैं। हिम महासागर से पानी लेकर हवा में बसती है और इससे आकर टकरा जाती है। तब नीचे के मैदानों में वर्षा होती है। हिन्दुस्तान की मुख्य लबियाँ यंगा यमुना आदि सभी इससे ही निकलती हैं, जिनमें कठों की सिंचाई होती है तथा उससे पैदावार अच्छी होती है। भारत से ऊपर साइबेरिया को बहुत ठण्डा प्रवेश है, से ठण्डी हवा में चलती है जो हिमालय से रुक जाती है। यदि हिमालय न होता तो हम ठण्डी हवाओं के झरोके से भारत में बहुत ठण्ड पड़ती। इसके अतिरिक्त भी बहुत जंगल हैं, जिनसे कीमती लकड़ी मिलती है। पहाड़ी भागों में कई तरह के जानवर भी पाये जाते हैं जिनका शिकार किया जाता है। इस पहाड़ के ढालों पर जानवर बराबे आते हैं तथा बाय जो पैदा की जाती है।

(२) उत्तरी भारत का मैदान—यह मैदान हिमालय से निकली नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है। पहले यहाँ समुद्र था परन्तु जब समुद्र सूख गया तब यहाँ मैदान बन गया। यह मैदान लगभग २०० मील सम्भा है। नदियाँ जो मिट्टी अपने साथ पहाड़ से बहा लाती हैं, उसे इस मैदान में लाकर बिछा देती हैं। यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। यह मैदान विश्व के उपजाऊ मैदानों में से एक है। दिल्ली के पास इस मैदान के दो बाग हो गये हैं। एक तो पश्चिम में सिन्ध नदी का मैदान तथा दूसरा पूरब में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान है। यह भूमि बहुत उपजाऊ है। इस मैदान की मिट्टी बहुत पहेरी है जिससे नहरें और नदियाँ सरसता से निकाली जा सकती हैं। यह मैदान कहीं कहीं औरस तथा डाबू भी है। जिससे इसमें रेतमार्ग तथा चक्कों सरसता से निकाली जा सकती हैं। इस मैदान की जनबाध अच्छी है। यहाँ एक ओर कपास होती है तथा दूसरी ओर जूना। वेतुँ बावज बूट तथा गन्ना अधिक पैदा होता है। यहाँ जनी आबादी बड़ी हुई है।

(३) बलिसली पठार—यह भाग बहुत प्राचीन है। यह हमारे देश के बलिस मे है। जो भाग अधिक ऊँचे हैं वे तो पहाड़ बन गये हैं। पहले यहाँ ज्वालामुखी पहाड़ थे। पहाड़ों के कारण यहाँ की भूमि काँची है। बलिसली पठार में ऊपर की तरफ विष्णुधाम सप्तपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं तथा पूर्व की तरफ राजमहल आदि की पहाड़ियाँ हैं। इसके पश्चिम में कई बर्रे हैं। जो मोरवाट नामवाट आदि के नाम से जान जाते हैं। इस भाग में कई नदियाँ बहती हैं जैसे महानदी कृष्णा कावेरी गोदावरी आदि। इन नदियों की बाटी उपजाऊ है। इस पठार की मिट्टी काँसी है जिसमें कपास अधिक होती है। यहाँ के कुछ भागों में तीक बर्पा होती है। यहाँ जने जवत भी हैं। यहाँ की नदियाँ जमिनों में सूख जाती हैं। यहाँ के शहरों से जसविद्युत पैदा की जाती है। बलिसली पठार में कोयला सोडा धातु काफ़ी मात्रा में निकलता है। यहाँ पैदावार अन्य स्थानों की अपेक्षा कुछ कम होती है।

(४) समुद्री किनारे के मैदान—समुद्र के पास छोटे छोटे दो मैदान हैं। जिनमें एक तो पूरब की ओर है जो पूर्वी किनारे का मैदान बहुमात्रा है। यह मैदान पूर्वी बाट और बंगाल की खाड़ी के बीच में है। इसका ऊपरी मण उत्तरी सरकार और नीचे का भाग कर्नाटक कहलाता है। यह स्थान महानदी गोदावरी कावेरी आदि के डेल्टा से घिरा हुआ है। डेल्टा वह जगह है जहाँ नदी समुद्र में मिलने के बरत जायी मिट्टी बिछा देती है। इन डेल्टों की मिट्टी

उपजाऊ है। इसका समुद्री किनारा कटा-फटा नहीं है इसलिये बम्बरगाह भी न के बराबर ही है। इस भाग में केवल मत्स्य और विजगापट्टम दो बड़े बम्बरगाह हैं। पश्चिम की तरफ एक बूझरा मैदान है जो पश्चिमी किनारे का मैदान कहलाता है। यह मैदान पश्चिमी बाट और भरख सागर के बीच में फैला हुआ है। इसके ऊपरी भाग को कोलकन तथा नीचे के भाग को मत्तावार का किनारा कहते हैं। इसमें दो नदियाँ बहती हैं। गर्बवा और वासी दोनों भरख सागर में गिरती हैं।

भारत और अफ़ग़ानिस्तान के बीच में पाकिस्तान देश है। १५ अगस्त सन १९४७ से पहले यह भारत का एक प्रांत था अब इसका ही एक भाग पाकिस्तान बन गया है। पाकिस्तान के भी दो भाग हैं। पहला पश्चिमी पाकिस्तान तथा दूसरा पूर्वी पाकिस्तान है। पाकिस्तान की जनसंख्या लगभग ५ करोड़ है। बहुत भारत से भी अधिक होता है। भारत तथा पाकिस्तान की भौगोलिक सीमाएँ पृथक् कर दी गई हैं। यहाँ का खैबर का दर्रा बहुत प्रसिद्ध है जिसके द्वारा ही बिबेही आठियाँ हिन्दुस्तान में आई थी। पश्चिमी पाकिस्तान का नीचे का भाग सिंध नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ सतलज, रावी, चिनाब ब्यास जेलम आदि से सींचा जाता है। इसलिये यहाँ अच्छी फसलें होती हैं। मुल्तान के पास पाँचो नदियाँ 'पंचनद' बनायी हैं। यह ज़ूमि नेह्रू के लिये प्रति प्रसिद्ध है। पूर्वी पाकिस्तान में वनस्पति अधिक है। अतः यहाँ की पैदावारी कम है। पाकिस्तान का मुख्य व्यापार बेटी करना है। यहाँ पैतृ शासन कपास 'कूट' आदि अधिक पैदा होते हैं। कर्पाची तथा हीराबाद यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं।

हमारा देश बहुत से राज्या में बँटा हुआ है जो कि राजनैतिक मान कहलाते हैं।

काश्मीर—कश्मीर और काश्मीर दोनों रियासतें मिल कर काश्मीर कहलाती है। यह राज्य हमारे देश के ऊपरी प्रांत में हिमालय के विस्तृत निकट है। यह राज्य इतना सुन्दर है कि भारत का स्वर्गद्वार कहलाता है। यहाँ भीड़ें अधिक हैं। जिनके ऊँचाई पर होने के कारण गर्मी कम पड़ती है। यहाँ पहाड़ ही पहाड़ हैं। यहाँ गर्मियों में समुद्र्य जाते हैं। यहाँ पहाड़ों पर बर्फ भी है जिनमें चितार सनोवर, शम्भार पार के पड़ अधिक हैं। यहाँ फल अधिक पैदा होते हैं। नासपाटी सेब अमरौट पिस्ता अंगूर आदि यहाँ के मुख्य फल हैं। लहसुन तथा केसर की खेती अधिक होती है। यहाँ के मोष

धर्मिकों से भेड़ जाता है। इन लोगों की कम बहुत कोमल होती है जिसके पास दुष्टों पर समाप्त धर्म बनाये जाते हैं। यह सब के पैरों पर रोम के नीचे पाले जाते हैं। भीमवर में इनका बहुत बड़ा कारखाना है। जिसकी रोमों साइयाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। भीमवर यहाँ की राजधानी है। यहाँ लोग सबों पर अधिक रहते हैं तथा रोमों और ऊनी कपड़ों के कारखाने अधिक हैं। यहाँ के तरते हुए बाग अधिक प्रसिद्ध हैं जिनमें दासोमार नामक बाग तो और भी अधिक प्रसिद्ध है। जम्मू भी काश्मीर की राजधानी है परन्तु यहाँ पर लोग सड़ियों में अधिक रहते हैं। गमियों में भीमवर में अधिक मनुष्य रहते हैं।

बंजाल—यह राज्य पहले बहुत बड़ा था। परन्तु अब छोटा रह गया है। यह राज्य काश्मीर से नीचे है तथा सिन्ध नदी के मैदान में पड़ा है। यहाँ के लोगों में यहाँ अधिक मर्मों तथा सड़ों के लोगों में अधिक सड़ों पड़ती है। यहाँ सर्पों कम होती हैं। इसीलिए गहरें निकालकर सिंचाई की जाती है। इन राज्य से होकर ही सिन्ध नदी अपनी सहायक नदियों के साथ बहती जाती है। पाकिस्तान बनने से इस राज्य को बड़ा बस्का पहुँचा था परन्तु अब उलटि कटता जा रहा है। माउण्ट-नाथ से यहाँ और कपास अधिक पैदा होती है। कापड़ा की घाटी बाग के लिये अधिक प्रसिद्ध है। समुद्र तट में ऊनी सूती और रोमों कपड़ों के कारखाने हैं। यहाँ पर परेन्ट उद्योग-धंधे भी अधिक चलते हैं जिनमें सूत काटना तथा धातु बुनाई बनाने का कार्य अधिक होता है। बिजली कराना कठोरा करना भी प्रसिद्ध है। इस राज्य में समुद्र तट भूमिवाला धर्माला बन्धीयक धावि प्रसिद्ध नगर है। बन्धीयक यहाँ की राजधानी है। जम्मूवर में सिक्कों का बड़ा मुद्राण है। इतिहास-प्रसिद्ध जयिदाबाग बाग भी यहाँ है। समुद्र तट एक धर्माला धर है।

उत्तर प्रदेश—यह भारत का बहुत प्राचीन राज्य है। हमारी प्रसिद्ध एक पवित्र नदियाँ यथा यमुना गोमती बागध धावि इसी राज्य में बहती हैं जिनसे सिंचाई का कार्य अधिक होता है। इस राज्य में वीरवार अधिक होती है। हमारे देश में सबसे अधिक यथा यह वीर होता है। यहाँ गेहूँ, बाजरा बना सरसो अधिक पैदा होती है। इस राज्य में देहरादून के निकट भने बपल हैं। यहाँ सेता के प्रतिरिक्त बस कारखान भी अधिक चलते हैं। वानपुर धावरा तथा मुरादाबाद में सूती कपड़ा अधिक बनता है। यहाँ यथा अधिक होने के कारण यह नगर के कारखाने हैं। वानपुर सलनक बरेली धावि में सर्पों के कारखाने हैं। वानपुर तथा धावरा में कपड़ों की वस्तुएँ बनाने के

कारखाने हैं तथा और भी कई तरह के कारखाने पाये जाते हैं। मसमऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है। यह शहर गोमती नदी के किनारे बसा हुआ है। यह पहिले अन्न के मबाबों की राजधानी थी। यहाँ सोना चाँदी हाथीदाँत रेशम का काम अधिक होता है। हिन्दुओं का तीर्थ स्थान बनारस भी यहीं है। यह गंगा के किनारे बसा हुआ है। यहाँ ऐशमी कपड़ा अधिक बनता है। कानपुर तथा इलाहाबाद (प्रयाग) भी बसा यमुना के किनारे बसे हुए हैं। यहाँ रेशमी कपड़ा बनता है। यहाँ बारहूँ छात्र कुम्भ का मेला मनाता है। इसके अतिरिक्त मेरठ, बरेली धर्मीगढ़ मथुरा आसी बड़े-बड़े शहर हैं। जिनमें हर प्रकार के कारखाने पाये जाते हैं।

दिल्ली—दिल्ली का एक छोटा सा राज्य है। जो पंजा और सिन्ध नदियों के बीच में पड़ता है। यमुना नहर से इस राज्य में सिंचाई होती है जिससे यहाँ की पैदावार बढ़ जाती है। यह शहर हमारे देश के मध्य में होने के कारण यह भारत की राजधानी है। इसका नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। अब इसके दो भाग हो गये हैं। पुराना शहर पुरानी दिल्ली तथा नया शहर नयी दिल्ली के नाम से जाना जाता है। यह एक व्यापारिक स्थान है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने अधिक हैं तथा उद्योग-व्यवसाय भी अधिक चलते हैं।

राजस्थान—जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब बहुत से देशी राज्यों को मिला कर राजस्थान नामक राज्य बना दिया गया। राजस्थान में जितने भी राज्य सम्मिलित हैं, उनमें पहिले राजा राज्य किया करते थे। इस राज्य में जयपुर कोटा भूँडी झुँगरपुर बांसवाड़ा झालावाड़ टोंक जयपुर बीकानेर, जोधपुर आदि प्रियासत हैं। इस राज्य को पाँच भागों या कमिस्तरों में विभाजित किया गया है। जयपुर, बीकानेर जोधपुर, जयपुर तथा कोटा। प्रत्येक कमिस्तरों को जिलों में बाँटा गया है। राजस्थान का बहुत सा भाग रेगिस्तान है। यहाँ का यह रेगिस्तान थार का रेगिस्तान कहलाता है। इस राज्य में नमी अधिक पड़ती है। यहाँ कटीसी आड़ियाँ बहुत आदि के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ नाचरा बना कपास पक्का मूँ, आदि पैदा होते हैं। यहाँ वर्षा अधिक नहीं होती है। किन्तु जम्मल योजना और नाचरा-नावल योजना से राजस्थान की सूखि हरी-अरी हो गई है। यहाँ का गंगानगढ़ नामक शहर केरू, बसा कपास आदि के लिये अधिक प्रसिद्ध है। जयपुर शहर यहाँ की राजधानी है।

आसाम—आसम के उत्तर-पूर्व में आसाम स्थित है। इस राज्य का

प्रधिकांश भाग पहाड़ों पर बसा हुआ है। भासाम का मध्यभाग पठारी है। बहुमुख नदी इसी राज्य में होकर बहती है। इस नदी की घाटी समतली है। यहाँ पर बास के वंगल हैं। बीच के पठारी भाग में पारो सारी जेन्टिया नामक पहाड़ियाँ हैं। इस राज्य की जनजातें मम हैं। यहाँ वर्षा सबसे अधिक होती है। नेरापूँजी नामक स्थान यहीं पर है। यही कोयसा पेट्रोस तथा भूना पत्थर मिलता है। यहाँ वंगस अधिक हैं जिनमें छान सनोकर, टीसम बर्नरह के वृक्ष अधिक हैं। अन्य नदियों की घाटियाँ उपजाऊ हैं। यहाँ के पहाड़ों में चाय अधिक पैदा होती है तथा समस्त मैदानों में चावल अधिक होता है। यहाँ देश के कीड़े पाये जाते हैं, तथा यज्ञ भी अधिक पैदा होता है।

बिहार—यह राज्य बंगा नदी की बीच की घाटी में बसा हुआ है। यहाँ का अधिकांश भाग लकियों द्वारा सार्ई गई मिट्टी का बना है। यहाँ की मिट्टी अधिक उपजाऊ है। यहाँ से रंगी नदी पार होती है। यहाँ का एक भाग पठारी है जिसमें पहाड़ियाँ तो कम हैं किन्तु पठारी भाग घने वंगलों से घिरा हुआ है। जिसमें अंगसी जागर अधिक पाये जाते हैं। यहाँ नहरों द्वारा सिंचाई होती है। यहाँ पक्की खेती होती है। जंगलों में अधिक साय पाई जाती है। पठारी भागों में चावल भी होता है। कायज बनाने के लिये सवाई बास अधिक पाई जाती है। नामपुर में खनिज पदार्थ अधिक निकलते हैं। यहाँ कोयला लोहा अधिक निकलता है। चिहूँमि में लोहा बहुत पाया जाता है। पटना यहाँ की राजधानी है।

पश्चिमी बंगाल—यह राज्य देश की स्वतंत्रता के बाद छोटा हो गया है। इस राज्य में एक पहाड़ी भाग है जिस पर दार्जिलिंग बसा हुआ है। बाको छाया भाग मैदानी है। बंगाल का अधिकांश भाग समतली है। यहाँ मुख्यतः नामक जंगल पाये जाते हैं। समुद्र के निकट के समतली भाग में मुख्यतः नामक जंगल पाये जाते हैं। वर्षा अधिक मात्रा में होती रहती है। बंगाल राज्य में होकर रंगी और हुगली नदी बहती है। जो देखा जाता है मुख्य में गिरती है। यह केतला का मैदान अधिक उपजाऊ है। इन भूमि में चावल अधिक पैदा होता है। यहाँ के सोय चावल अधिक पाये जाते हैं। यहाँ बूट अधिक बोई जाती है यहाँ बूट के कारखाने अधिक हैं। दार्जिलिंग तथा जमपाईपुरी में चाय भी पैदा होती है। कोयला तथा लोहे की खानें हैं। यहाँ का सबसे बड़ा

महूर कलकत्ता है। जो हुमसी नदी के किनारे बसा हुआ है। यह देश का प्रसिद्ध मखरपाह है। यह देश की पुराने समय में राजधानी भी रह चुका है। यहाँ व्यापार अधिक होता है। यहाँ सूट, सूती कपड़ा तथा चावल साफ करने के बहुत से कारखाने हैं। आसमानी यहाँ का एक प्रमुख शहर है। जिसमें कोयला बहुत निकलता है। इसके मिश्र ही लोहे का विद्यमान कारखाना है।

मध्यप्रदेश—यह क्षेत्र इस भाग में बहुत सी रियासतें थी जिन्हें मिश्रकर यह राज्य बना दिया गया है। इसके उत्तर में राजस्थान तथा पूरब में उत्तर प्रदेश है। इस राज्य में बड़ी पहाड़ी जगह हैं बड़ी पठारी जगह तथा कहीं समतल मैदान तो कहीं पर नदियों की घाटियाँ हैं। यहाँ की नदियों की घाटियाँ बहुत उपजाऊ हैं। यहाँ की जलवायु मिश्र है इस कारण यहाँ की पैदावार भी मिश्र है। रासवे के पठार पर बड़े अधिक पैसा होता है। इस राज्य में दो बड़े पहाड़ हैं। एक तो सतपुड़ा तथा दूसरा है विन्ध्यजल। इन पहाड़ों के होने से वर्षा अधिक होती है। इनके नीचे जल बहुत है, जिससे लकड़ी अधिक मिल जाती है। यहाँ नमिका की घाटियाँ अधिक हैं। तर्बका की घाटी अम्बस की घाटी बेतवा की घाटी आदि की घाटियाँ हैं। यहाँ का मुख्य जल सेती है। सेतों की सिंचाई कुएँ तलाबों से अधिक होती है। अम्बस घाटी-मोजना तथा मोहागढ़ मोजना आदि से सिंचाई बहुत होती है। इस राज्य की मिट्टी काली होने के कारण यहाँ कपास अधिक होती है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने हैं। यहाँ व्यापार पन्ना आदि अधिक पैसा होते हैं। इस राज्य में सोहा इमारती पत्थर अधिक मात्रा में निकलते हैं। सूती कपड़े तथा बीनी बनाने के कारखाने भी हैं। यहाँ के इन्दौर व्याजियर रत्नमय आदि प्रसिद्ध शहर हैं। इन्दौर यहाँ की राजधानी है। इस शहर से कपास का व्यापार होता है तथा इसमें सूती कपड़े की मिलें हैं। रत्नमय अनेक व्यापारिक मन्त्री हैं।

मैसूर—यह स्थित भारत का राज्य है। यहाँ की जलवायु धन्दी है। यहाँ कावेरी नदी बहती है। जिसके ऊपर शिव समुद्रम् नामक विद्यमान भ्रमण है। जिससे जल निष्कृत सत्पन्न की जाती है। यहाँ की भीमगिरी नामक पहाड़ी जल तथा नहरों के सिरे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ की काली मिट्टी में कपास भी होती है। यहाँ सोने की खानें अधिक हैं। जोसार नामक स्थान पर तो सोना अधिक मात्रा में निखाला जाता है। हमारे देश में जल यही सोने की खानें हैं। यहाँ कन्नड़ की बोली का प्रयोग होता है। मैसूर

घोर बंजर यहाँ के बड़े शहर है। गैरुन यहाँ की राजधानी है। जिसमें सेल निकालने ज्वन तथा रेशमी कपड़े के कारखाने हैं। बंजर में हवाई जहाज बनाने का विद्यालय कारखाना है।

महाराष्ट्र—यह समुद्र के किनारे का राज्य है। इस राज्य की मिट्टी जाली है। इसलिये यहाँ कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ कुबराय का मैदान अधिक उपजाऊ है। इस भाग में नदियों द्वारा सिंचाई होती है। इस राज्य में पशुधनी घाट की तरह घने जंगल हैं। यहाँ बर्षा अधिक नहीं होती है। किन्तु पैसाबार अधिक होती है। यहाँ लकड़ों द्वारा सिंचाई होती है। यहाँ का मुख्य व्यापार लेनी है। किनारे के मैदानों में चावल बहुत पैदा होता है। यहाँ वस्त्र अधिक पैदा होता है जिससे दानेदार बोमी बनाई जाती है। समुद्र के किनारे मारिफत के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। यहाँ सूती कपड़ा अधिक बनता है। यहाँ सूती कपड़ के कारखान सबसे अधिक हैं। इसके अतिरिक्त रेशमी तथा ऊनी कपड़े के कारखाने भी हैं। यहाँ कानन बनाने के कारखाने भी हैं। अहमदाबाद तथा बम्बई यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। बम्बई के पास-पास की नुमि मरिफत उपजाऊ है जो कि रेशों द्वारा रेश के जीवनी नामों से बुनी हुई है। अहमदाबाद शहरमती नाले के किनारे पर बसा हुआ है। यह एक प्राचीन शहर है। इसके पास-पास कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने अधिक हैं।

भारत—बलिया के पठार पर यह राज्य बसा हुआ है। यह पहले ईदराबाद के नाम से प्रसिद्ध था। यह राज्य पठारी है। सोराबरी नाम की नदी यहाँ बहती है। इसके ऊपरी भाग में काली मिट्टी पाई जाती है तथा नीचे के भाग में मात। बर्षा कम होती है। अतः ईदराबाद भी कोई विशेष नहीं होती है। यहाँ का मुख्य शहर ईदराबाद है। जो इस राज्य की राजधानी है। यहाँ गोखकुडा नामक स्थान पर पहिले हीरे की खानें थी। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने भी हैं।

उड़ीसा—यह एक छोटा सा राज्य है। जिसका अधिकतम भाग महानदी की किनारी घाटी और केन्द्र से बना हुआ है जो कि बहुत उपजाऊ है। यहाँ सोहा, जूने का पत्थर तथा कोयले की खानें हैं। पठारी भाग में जंगल अधिक हैं। जिसमें बंजर भी पाये जाते हैं। मयूरभंज में सोहा अधिक निक्षपता है।

मद्रास—यह बलिया भाग का राज्य है जो समुद्री किनारे पर बसा है। यहाँ सब के दिनों में बर्षा होती है। इसमें सिंचाई के अल्प साधन

बहुत हैं। धूराफली यहाँ की मुख्य फसल है। इसमें सूती कपड़े धूराफली तथा भारियल का रेश निकालने के कारखाने हैं। यहाँ की आबादी बनी है। यहाँ जमड़ के कारखाने भी हैं। यह एक कृषि बन्दरगाह है।

छोराबू—यह पश्चिमी भारत का राज्य है। इसकी भरती से तेस जिससे की बहुत संभावना है। यहाँ अधिक जसवर्या होती है। यहाँ काँबसा प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ बाजरा और गहूँ की पैदावार अधिक होती है।

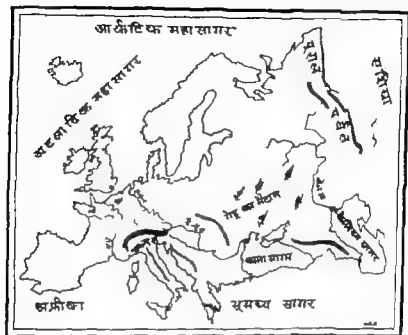


यहाँ की कपास तथा ज़रोंतर का भी प्रसिद्ध है। पशु-पालन को काफी महत्त्व दिया जाता है।

तका—भारत के दक्षिण में एक छोटा-सा टापू है जो संका कहलाता है। इसके चारों ओर पानी है। पहले इसे सिचमद्वीप कहते थे। इसका बीच का भाग पहाड़ी है। इस पहाड़ को धीराम पर्वत कहते हैं। यहाँ की प्रसिद्धि छोटी तथा तेज बहुत जाती है। यहाँ की सबसे समीचीन नदी महाबली नदी है। यहाँ वर्षा अधिक होती है। गर्मी तथा सर्दी दोनों ऋतुओं में वर्षा होती है। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। यह स्थान समुद्री रास्ते का पड़ाव है। यहाँ चारों ओर से जहाज आते हैं तथा पड़ाव बास कर बस जाते हैं। पहाड़ी भागों में जने जंगल हैं जिनमें घाबतूख के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ चाय अधिक होती है। यहाँ से लगभग २५ करोड़ पौण्ड का निर्यात प्रति वर्ष होता है। यहाँ के पहाड़ों पर हलामची हालचीनी सींग जायफस आदि मसाले के पेड़ अधिक मात्रा में मिलते हैं। नीचे के भाग में रबड़ कहवा के बाग हैं। यहाँ के अधिकतर लोग कोठी करते हैं। यहाँ मारियस का तेल निकालने रबड़ तैयार करने तथा चावल साफ करने के कारखाने हैं। यहाँ की औद्योगिक जनसंख्या ७० लाख है। यहाँ सिपाही लोग अधिक रहते हैं। कोलम्बो यहाँ की राजधानी है तथा बन्दरगाह भी है।

यूरोप—एशिया महाद्वीप के निकट ही यूरोप महाद्वीप है। यह महाद्वीप ऊपर से नीचे तक लगभग २४०० मील लम्बा है। यह महाद्वीप आस्ट्रेलिया को छोड़कर सबसे छोटा है।

जिस प्रकार एशिया में हिमालय पर्वत है उसी तरह यूरोप में अल्प्स पर्वत है। यूरोप के बीचोंबीच आल्पस पर्वत चारों तरफ फैला हुआ है। इसकी कुछ चोटियाँ समुद्र की सतह से लगभग डेढ़ मील ऊँची हैं। जिन पर हमेशा बर्फ पड़ी रहती है। यूरोप के पूरब में यूराल नामक पहाड़ है। यह यूरोप को एशिया से घसट कर बैठा है। यूराल के पश्चिम में इस का बड़ा मैदान है। यहाँ सर्दी कम पड़ती है तथा गर्मी अधिक। यहाँ गेहूँ अधिक पैदा होता है। इस मैदान के नीचे का भाग गेहूँ की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है। यूरोप की सबसे बड़ी नदी बोस्पा रशी मैदान में होकर बहती है। रशियाँ में इस पर बर्फ जम जाती है। इसलिये इसमें जहाज नहीं चलते हैं। पश्चिमो यूरोप में राइन, सेन, लोएर, रोन, डैम्यूब आदि नदियाँ बहती हैं। इन सब में राइन नदी

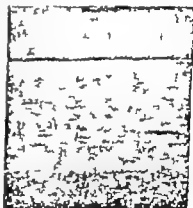


चित्र ११

सबसे प्रसिद्ध है। इस नदी के द्वारा व्यापार होता है। इन नदियों से सिंचाई के प्रतिष्ठित बल बिद्युत भी तैयार की जाती है।



चित्र १४—बोस्ना का एक विद्युत-गृह



चित्र १२—बोस्ना के पानी से निर्मित एक सुन्दर भोज

यूरोप का समुद्री किनारा अधिक जगह फटा है। जो लगभग १२ स मिल है। ऊपर की ओर सातसागर हर जगह जमा रहता है। इंग्लैंड के निकट एक प्लेटस्ट्रीम की गर्म धारा है जिससे उसने आस-पास का समुद्र ही जमता और व्यापार सरलता से होता है। यहाँ मछली अधिक पकड़ी जाती है।

यहाँ वर्षा अधिक होती है। प्लेटस्ट्रीम की धारा जलवायु को कुछ गर्म कर देती है। सर्दियों में पृथ्वी जल पर बर्फ पड़ती है। यूरोप की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ है। यहाँ की अधिकांश जन-संख्या खाना तथा कारखानों के निकट रहती है। यहाँ की सबसे अधिक जन-संख्या इंग्लैंड, फ्रांस, बेल्जियम, प्रुसिया, उत्तरी जर्मनी, हंगरी, पो लैंड की भाटी तथा पोलैंड में बसी हुई है। यहाँ एक वर्ग मील में लगभग २५० आदमी रहते हैं। बिस्व में सबसे अधिक जनो जनसंख्या बेल्जियम में है। यहाँ एक वर्ग मील में लगभग ७० आदमी रहते हैं। टुनिस तथा उत्तर अफ्रीका में बहुत कम आदमी रहते हैं।

यहाँ के निवासी पोरि कार्य भाषा के हैं। दक्षिण के लोगों का रंग कुछ कुछ सँवसा हो गया है। ये लोग बहुत मेहनती हिम्मतवर, तथा व्यापार कुशल होते हैं। यहाँ खेती अधिक होती है। अफ्रीका इंग्लैंड इटली हमरी क्वाड्रिमा में खेती अधिक होती है। दूसरा मुख्य कार्य खाने खोदना है। इसके अतिरिक्त यहाँ भेड़ें पालना चिकार खेती लकड़ी काटना मछली मारना व्यापार करना मजदूर तथा पनोर बनाने का कार्य भी होता है। अनेक पहाड़ों में कोयला खोदा अधिक होता है। इनके कारण यूरोप बहुत जनवान देश है। इनके अतिरिक्त मिट्टी का तेल ताँबा लौहा बस्ता सोना चाँदी पारा ताम्रक चीनी मिट्टी चिल्लाका अधिक होते हैं।

यूरोप व्यापार कारखानों तथा उपज के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ की जनसाधन सम है। न अधिक गर्मी है न अधिक सर्दी।

यूरोप में स्टेडीनरिया नाम का एक देश है। इसके अधिकांश भाग पठारी है। यहाँ पर गुकीली पत्तियों नाम पेड़ों के बने जंगल हैं।

नाम यूरोप का ही एक देश है। यहाँ की भूमि पहाड़ी है। यहाँ के लोगों का मुख्य काम मछली मारना है। यहाँ कौन हैरिज़ भादि मछलियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पर सोफोडम नामक टापू है। जिसमें लगभग २०

हजार आधमी तथा ४ हजार नार्वे मछली मारने के काम में लगे रहती हैं। यहाँ सेमन मछली भी पायी जाती है तथा सीस और जूँन आदि मछलियाँ आर्कटिक सागर से लार्ई जाती हैं। मनुष्य इन मछलियों को टीन के डिब्बों में बन्द कर बूंदरे देशों को भेजते हैं। यहाँ लकड़ी के बुराबे का कागज भी बनता है। इस देश की राजधानी ओसलो है। हैमर फेस्ट भी यहाँ का एक भाग है।

यूरोप में स्वीडन नामक एक देश है। इस देश की भूमि चौरस तथा मैदानी है। बँजर बँटर मसारा आदि स्थान हैं। यहाँ की लगभग सभी भूमि जंगलों से आच्छादित है। जिनमें बेबवार फर बर्ब के कुछ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ के कुछ धीरे धीरे बड़े होते हैं जिनकी लकड़ी कड़ी टिकाऊ और मूल्यवान होती है। यहाँ कड़ी लकड़ी को काट कर उसके बुराबे से कागज बनाया जाता है। गन्धक से बिबासलाई बनाई जाती है। यहाँ बोहा ताँबा अस्ता लौही तथा मैंगनीज निकलती है। नीचे के भाग में खेती की जाती है। जिसमें मोट राई भी आदि पैदा होता है। फुल्मर भी पैदा होती है। यहाँ की राजधानी स्टाकहोल्म है। यह शहर 'उत्तर का वेनिस' कहलाता है। इस में बोहा लकड़ी अस्ता तार बिबासलाई तथा कायब के बड़े-बड़े कारखाने हैं।

डेनमार्क—यह देश कई द्वीपों को मिलाकर बना है। इसमें कीर्सेन्ड पसुनाम सबसे बड़े हैं। यहाँ का समुद्री किनारा बहुत लम्बा है। इस देश में बाबु अधिक है। इसके ऊपरी भाग में बलवल अधिक है जिसमें पीट नाम के घास के मैदान हैं। इसके धाने भाग में खेती होती है जिसमें राई, जौ बई धानू, फुल्मर आदि अधिक पैदा होते हैं। अधिक बाघ पैदा होने के कारण यहाँ के लोगों का मुख्य काम पशु पालना है। विश्व का ६२ भाग मक्खन डेनमार्क में होता है। लगभग १५ करोड़ रुपये का मक्खन तो डेनमार्क ही प्रतिवर्ष आरुपता है। मक्खन निरुसा हुआ दूध घृणों को पिना दिया जाता है। सुभर का माघ तथा अग्रे के निर्यात में डेनमार्क सबसे धाने है। यहाँ मछली भी पकड़ी जाती है। कोपेनहेगन यहाँ की राजधानी है तथा एक प्रसिद्ध बन्दरगाह भी है। आइसलैण्ड भी डेनमार्क के आधिपत्य में है जिसमें लगभग एक लाख आधमी रहते हैं। यहाँ हेक्ला नामक ज्वालामुखी पर्वत है। इस द्वीप में मूँड़ पशु टट्टू आदि बराये जाते हैं। यहाँ से टट्टू और मक्खन बूंदरे देशों को भेज जाते हैं। आरमी अधिकोस सिमिठ तथा मैडनटी होसे हैं।

रूस—यह यूरोप का सबसे बड़ा देश है। भूमि मैदानी है। इसके मध्य बारबाई नामक पहाड़ियाँ हैं, जिनसे नदियाँ निकलकर चारा ओर बहती हैं। यहाँ यहीं कम तथा सर्दी अधिक पड़ती है। सर्दियों के दिनों में सारा देश बर्फ से ढक जाता है। इस देश को तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(१) दुर्गा—इसमें सप सैमोइक तथा एस्कोमो आदि जातियाँ रहती हैं। यहाँ सर्दियों बर्फ बनी रहती है। यहाँ का बारबाई नामक मुख्य जगह है, जो पाला जाता है। यहीं से जब बर्फ पिघल जाती है तब कुछ बांस उगती है। गोश की ओर देवदार तथा बर्फ के जंगल हैं।

(२) कालो मिट्टी का प्रदेश—यहाँ की कालो मिट्टी अधिक उपजाऊ है। इसमें बहुत तम्बाकू खाई मक्का आदि अधिक पैदा होते हैं। गोश के भागों में बड़े बड़े तथा अन्य पशु चराये जाते हैं। यहाँ से बहुत का निर्यात होता है।

(३) नमकीन रेगिस्तान—इसमें कुछ भी पैदा नहीं होता क्योंकि यहाँ की अधिकतर भूमि क्षारीय तथा ऊसर है।

रूस में कोयला लोहा ताँबा सोना चाँदी तथा जेटीम की खानें बहुत हैं। कश्चित् के निकट मिट्टी का तेल निकलता है। जब से रूस में सोवियत सरकार आयी है, तब से खेती कारखानों आदि में बहुत उन्नति हुई है। पंच वर्षीय योजनाओं द्वारा जन को बढ़ाया जाता है। जिससे बहुत से कार्य किये गये हैं। इन्हीं दिनों में मातामय के साधन बढ़ गये हैं। १९ हजार मील के लम्बे नदियों में जालें बल सकती हैं। लगभग ४२ हजार मील समुद्री तट बल गई हैं। मास्को यहाँ की राजधानी है। बिस्व की सबसे समुद्री दुग्ध छात्र बेरियन रेलवे यहीं से प्रारम्भ होती है। डूमरा शहर जेनिनग्राद है जो कि प्रथम विश्व युद्ध से पहिले रूस की राजधानी था। यहीं के दिनों में लकड़ी मछली तथा नमक पूरे देशों को यहाँ से भेजा जाता है।

दूधेन नामक राज्य पहिले रूस से अलग था किन्तु अब रूस में मिल गया है। यहाँ की भूमि फ़ारसी है। इसमें बहुत सत मक्का तम्बाकू फल आदि बहुत होते हैं।

बाल्टिक राज्य—बाल्टिक नामक समुद्र के निकट चार छोटे-छोटे राज्य हैं, जो मिलकर बाल्टिक राज्य कहलाते हैं।

फ़िनलैण्ड—इस देश की जनसंख्या लगभग ३४ लाख है। यह देश वन तथा ओसों से भरा हुआ है। घाघे से अधिक भाग में देवदार वन, बर्फ

घादि के जंगल हैं। यहाँ पर जानवर भी पाये जाते हैं। मत्स्यन का निर्मात किया जाता है। लेनी में जी चुकन्दर भाग्य घादि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ का प्रमुख शहर हैस्विकी है जो एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से लकड़ी फल मत्स्यन घादि बाहर भेजे जाते हैं।

ऐस्कोनिया—फिनलैंड की भाँति यह देश भी अधिकतर जंगलों में घाच्छादित है। इसकी जनसंख्या लगभग १८ लाख है। यहाँ पर चाई सन कई घोर भाग्य अधिक पैदा होते हैं।

सडबिया—यहाँ की जनसंख्या लगभग ६ लाख है। यहाँ भाग्य, सन चाई घोट तथा लकड़ी अधिक पैदा होती है। पैदा यहाँ की राजधानी है, यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ कपास टसर तथा चमड़े के कारखाने हैं।

लिकुनिया—इसकी आबादी लगभग ५ लाख है तथा घाम्य बस्तों में दूसरे देशों से निकला-बुलता है। कोयलों यहाँ का प्रमुख बन्दरगाह है।

वास्तिक राज्य में घाम्य अधिक रहते हैं जो स्वीडन के आदिमियों से मिलते जुलते हैं।

पोलैण्ड—यहाँ पर नर्मियों में अधिक गर्मी तथा उदियों में इतनी सर्दी पड़ती है कि बर्फ कम जाती है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ३ करोड़ है। यहाँ में लोगों का मुख्य कर्मा लेनी करता है। चाई की वेलें सन कई चुकन्दर भाग्य घादि उगाये जाते हैं। नीचे की घोर जानवर तथा भेड़ें पानी जाती है। मिट्टी का ठेक तथा लकड़ भी निकाला जाता है। यहाँ की राजधानी वारसा है। यहाँ चमड़ा उल तथा चककर के कारखाने हैं।

ल्थानिया—इसमें लगभग १॥ करोड़ मनुष्य रहते हैं। वर्षा तथा जलवायु में पोलैण्ड की ही भाँति है। यहाँ की काली मिट्टी बहुत उपजाऊ है, जिसमें वेहुँ मक्का तिलहन तम्बाकू घादि पैदा होते हैं। यहाँ लकड़, सोना चाँदी लोहा मिट्टी का ठेक निकाला जाता है। यहाँ के बासी पर भेड़ें चराई जाती हैं। बुकारैस्ट यहाँ की राजधानी है।

बेकोस्लोवाकिया—यह राज्य प्रथम विश्व युद्ध के बाद आस्ट्रिया घोर हुसरी के मिलने से बना है। यहाँ लगभग १२ करोड़ का जन-समाज रहता है। यहाँ वेहुँ जी घोर घादि पैदा होते हैं। कोयला घोर लोहा भी निकाले जाते हैं। प्रेग यहाँ की राजधानी है तथा प्रसिद्ध शहर भी। व्यापार तथा कला में यह नगर बहुत बड़ा बड़ा है। कार्सबाइ घोर मेरिनबाइ में घर्म पानी के छोटे हैं। यूरोप के लोग यहाँ आरोग्य के लिये जाते हैं।

हंगरी—यह देश एक उपजाऊ मैदान है। जो कि बनी से सरा हुआ है। यहाँ येँड़े मक्का तम्बाकू चुकन्दर की खेती होती है। यहाँ फस भी अधिक मात्रा में होते हैं। बुडापेस्ट यहाँ की राजधानी है। यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। जिसमें घराब घाटा भगाज अहद घाबि बेचा जाता है। बुडा घोर पेस्ट के मध्य एक नदी बहती है, जिस पर एक विशाल पुल बना है जो इन दोनों को मिलाकर एक कर देता है। पेस्ट में आटा पीसने चमड़ा घराब कोड़े के कारखाने हैं। टोकाज नामक शहर घराब के कारखानों के लिये अधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि यहाँ घंगूर अधिक पैदा होते हैं।

प्रास्ट्रिया—इसमें लगभग १४ लाख मनुष्य निवास करते हैं। ऊर्बाई पर यहाँ थोके फर घोर बीच के बने हैं। बाटियों में भनाज घंगूर लहसुन घाबि पैदा होते हैं। ऊपर की भूमि में घास के मैदान हैं। राई घोर जई यहाँ अधिक पैदा होते हैं। मूर नामक नदी की घाटी में कोड़े घोर कोवले को खाने हैं। ग्रेम नामक शहर कोहा साफ करने तथा रोशम के कारखानों के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ का प्रमुख शहर बीवागा है। जो प्रास्ट्रिया की राजधानी है। इसके निकट की भूमि उपजाऊ है। इसका वातावरण के साधनों द्वारा यूरोप से बना सम्बन्ध है। यहाँ कोहा कोयला कागज घोर चमड़े के कारखाने हैं।

स्विट्जरलैण्ड—यह यूरोप का छोटा-सा राज्य है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ४ लाख है। इसके ऊपरी भाग में बूरा नामक पहाड़ है। बीच में सुन्दर झीलें हैं। नीचे के भाग में फरने हैं। यहाँ अधिक होती है। पहाड़ों पर सबों तथा बाटियों में गर्मी पड़ती है। यहाँ जानवरों को चराने के लिये बहुत मैदान हैं। यहाँ जानवर अधिक पाले जाते हैं। मक्खन पनीर बहिर का कार्य अधिक होता है। प्रहूर, येँड़े, मक्का राई जई घाबि मुख्य फसलें हैं। रोशम के कोड़े भी पाले जाते हैं। स्विट्जरलैण्ड में बड़ियाँ बनाने कड़ाई का काम चाकसेट बनाया घाबि अधिक होता है। यहाँ का प्रमुख शहर बर्न है जो यहाँ की राजधानी है। जो बड़ियों के लिये विश्वविख्यात है। दूसरा शहर जिनेवा है जिसमें विश्व के राष्ट्रों की बैठक होती है। यहाँ भी बड़ियाँ बनती हैं।

जर्मनी—द्वितीय विश्वयुद्ध इसी पर हुआ था। जिसमें यह हार गया। सप्त, राई जो चुकन्दर येँड़े, जई फस तम्बाकू घाबि यहाँ अधिक पैदा होते हैं। इस देश में जंगल भी बहुत हैं। जिनमें देवदार घनोवर, सिन्दूर फर के

पेड़ अधिक हैं। जिनकी लकड़ी बहुत कीमती होती है। यहाँ पर कोयले तथा लोहे की खानें हैं। इसके अतिरिक्त सीसा बस्ता ताँबा स्नेह भी मिलते हैं। आठायत के साधन अधिक हैं। यहाँ का कसा-कौशल बहुत बढ़ा हुआ है। लगभग डेढ़ करोड़ भारतीय इसमें कार्य करते हैं। जोहा फौसाह सूती और ऊनी कपड़े तथा बनावियाँ बनकर, सराब रंग धोर धीरे का सामान बनाने के कारखाने अधिक पाये जाते हैं। स्टैटिंग हैम्बर्ग में बहान बनाने के कारखाने हैं। बर्लिन यहाँ की राजधानी है। यूरोप के सब देश इससे मिले हुए हैं। हैम्बर्ग व्यापार के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यह समुद्र से ७ मील दूर है किन्तु नहरों द्वारा बहान आते जाते हैं। आटा पीसन साबुन बनाना तथा बहान बनाने के भी बहुत से कारखाने हैं। बोमैन, कीस स्टैटिंग म्युनिच और मन्चन सीपजिय मीगडीबर्ग बर्मनी के प्रमुख शहर हैं।

हॉर्लैण्ड—बर्मनी के पश्चिम में एक छोटा सा देश है। जो हालन्ड के नाम से पुकारा जाता है। इसका भूमि नीची है। इसमें लगभग ८२ लाख भारतीय रहते हैं। यहाँ की मिट्टी नहरों से सार्ई हुई होने के कारण बहुत उपजाऊ है। इन यहाँ, घास, राई, चुकन्दर आदि की खेती होती है। यह एक वर्ग मील में लगभग ६२५ मनुष्य रहते हैं। खेती करना आसानी से करना पतीर बनाया आदि यहाँ के लोगों का मुख्य काम है। एमस्टर्डम यहाँ का प्रसिद्ध शहर व व्यापारिक राजधानी है। यह हीरा काटने के लिये विश्वविख्यात है। हेग भी यहाँ का मुख्य शहर तथा राजधानी भी है।

बेल्जियम—हॉर्लैण्ड और फ्रांस के मध्य में बेल्जियम नामक देश स्थित है। यह भी एक छोटा-सा देश है जिसकी जनसंख्या लगभग ८५ लाख है। यहाँ की भाषा भी बहुत बनी है। यहाँ की जलवायु इंग्लैण्ड के सदृश है। इसका नीचे का भाग पठारी है। जिस पर बेल्जियम के वन हैं तथा मेड़ें बरछी जाती हैं। बाकी भाग में राई ओट यहाँ घास, चुकन्दर और सब आदि की खेती होती है। यहाँ सूखर और अन्य पशु अधिक पाये जाते हैं। इसके मध्य भाग में कोयले की खानें हैं। उसके निकट ही पठारी भाग में बस्ता सीसा ताँबा आदि की भी खानें हैं। मुख्य शहरों में एन्टवर्प एक अच्छा बन्दरगाह है। ब्रैट नामक शहर लगभग और सूती कपड़े के लिये प्रसिद्ध है। ब्रुसेल्स यहाँ की राजधानी है। इसके नीचे बाटरलू नामक शहर बसा हुआ है।

फ्रांस—फ्रांस विश्व के धनी देशों में से एक है। यहाँ लगभग ५२ करोड़ भारतीय रहते हैं। यहाँ के उत्तरी मैदान में सींग भरी बड़ी है, जिसमें

नहूँ, जो राई थोड़ा बड़ा, सेब धारि अधिक होते हैं। यहाँ की भावारी बनी है। पश्चिम में मोर, रोम और उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं। मोर के मैदानों में चुन्बर घंघूरी घास, गहूँ तम्बाकू मक्का आदि अधिक पैदा होते हैं। रोम नदी के पास सेन्टप्टीन नामक शहर है। जहाँ रोमने की जालें अधिक हैं। रोम नदी की घाटी और यहाँ तक घंघूरी किनारा बहुत अच्छा है। यहाँ जवाबदार अधिक होती है। यहाँ बड़ा जैतून आसपास पंजीर, घड़ियाँ धारि बहुत होते हैं। यहाँ रोम अधिक बनता है।

यहाँ के सोप खेती करना पत्थरी मारता घास बनाना बगला से लकड़ी काटना जालों से कोयला लोहा धारि निकासने का काम करते हैं। यहाँ का मुख्य शहर पेरिस है। जो कि विश्वविख्यात शहर है। यह शहर रोम नदी के दोनों ओर बसा हुआ है। यहाँ की जन-संख्या लगभग १२ लाख है। यहाँ के यातायात के साधन अच्छे हैं। यहाँ पर पक्षियाँ बहाहिरात चुन्बर रोमनी सामान बूते जाने आदि बनाये जाते हैं। स्पेन नामक शहर कपास के कारखानों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। सिरी नामक शहर टसर कपास तथा लोहे के कारखानों आदि के लिये प्रसिद्ध है। माथीमस जमी सामान के लिये प्रसिद्ध है। बोर्गो शहर का दूसरे दिनों में निर्वात होता है। दूसरा नामक शहर पैरू घंघूरी घास धारि के लिये प्रसिद्ध है। इनके पश्चिम में सीरियस दूसरा मार्सेलोन सियोमस आदि इसके प्रसिद्ध शहर हैं।

स्वेन और पुर्तगाल—ये दोनों देश मिल कर धायवेरिया कहलाते हैं। छोटे टैमस म्हाडिमाना धारि यहाँ का प्रमुख नदियाँ हैं। इसके ऊपरी भाग में सर्प अधिक पड़ती है। वहीं अधिक नहीं पड़ती है। यहाँ वर्षा अधिक होता है। इसके मध्य के पठार में भेड़ें पायी जाती हैं, जिनके ऊन का निर्यात होता है। इसके ऊपरी भाग में शोक बीच विस्तृत के जंगल हैं तथा लोहे और जस्ते की खानें हैं। इसके पश्चिमी भाग में खेती होती है। जिसमें गहूँ, मक्का जैतून घंघूर घड़ियाँ धारि पैदा होते हैं। पुर्तगाल काई शोक तथा शराब के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कैटेसोनिया नामक पठार है जिसमें लीगा जंगल जस्ता जंकमरमर धारि निकलता है। स्पेन एक जंगल और पठारी मध्य है। इसमें कुछ पैदा नहीं होता। यहाँ अच्छे जंगलगाह भी नहीं हैं। नदियाँ भी थक नहीं हैं। यातायात के साधन भी ठीक नहीं हैं। मैड्रिड यहाँ की राजधानी है। मासिओला एक अच्छा जंगलगाह है जो कपास के लिये और व्यापार के लिये प्रसिद्ध है। यह स्पेन का 'मैनचेस्टर' कहलाता है।

यहाँ से संराब, ऊन कपास फल आदि बाहर भेजे जाते हैं। इनके प्रतिरिक्त बेलैधिया, आनाका इसके प्रमुख शहर हैं।

पुर्तगाल के प्रसिद्ध शहरों में लिस्बन एक प्रसिद्ध शहर है। यह टेबल ली के किनारे बसा हुआ है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यही पुर्तगाल की राजधानी है। यहाँ कमी-कमी भूषास भी जाते हैं।

इटली—यूरोप के दक्षिण में एक छोटा सा देश है। इसके उत्तर में एक पर्वत है तथा बीच में नदियों के मैदान हैं। इसके ऊपरी भाग में आल्प्स नामक पहाड़ हैं। जिससे नदियाँ ठीकी से नीचे उतरती हैं। जिससे जलविद्युत तैयार की जाती है। इस भाग में और भी कई नदियाँ बहती हैं। निचले भाग में नारंगी मेंहरी वीतून आदि के बगीचे हैं। इसके ऊपरी भाग में धूपूर और आयरोट के पेड़ हैं। इसके आगे पशु पाले जाते हैं। जिनके दूध से पनीर बनाया जाता है। पो नदी की बाटी इटली में सबसे अधिक उपजाऊ भूमि और आबाद है। पो नदी व उसकी सहायक नदियों की सहाई हुई मिट्टी से बना होने के कारण यहाँ का देश उपजाऊ है। यहाँ आबन मरई सग, मेहू, धूपूर, वीतून सहित की पैदावार होती है। पशु-पालन तथा मत्स्य पनीर बनाना इनका मुख्य काम है। रोमी कपड़ा तथा घरे के निर्माण किया जाता है। ज्यूरिच यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यहाँ रेशम तथा मोटरकार बनाने के कारखाने हैं। वातायत के साधन भी अच्छे हैं। वेनिस पो नदी के तट पर स्थित है। जो एक बड़ा बन्दरगाह है। यह शहर १२० द्वीपों पर बसा हुआ है। यहाँ नहरों द्वारा वातायत का कार्य चलता है। चकनों के स्थान पर नहरों में बहाव चलता है। यह चीसे तथा वीस के काम के लिये प्रसिद्ध है।

इटली में सबसे प्रसिद्ध शहर रोम है। यह टार्बिन नामक नदी पर बसा हुआ है। यही इटली की राजधानी है।

इटली के निकट कई छोटे-छोटे द्वीप हैं, जो सभी आसामुखी पर्वतों में प्रमुख हैं। इन सबसे बड़ा द्वीप सिसली है। जिसमें आसामुखी होने के कारण धूपूर, नीबू, नारंगी आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ पाल्मो नामक एक शहर है, जो एक बन्दरगाह है तथा लोहे के कारखाना के लिये प्रसिद्ध है। इसके निकट एक विद्यालय आसामुखी है, जो स्टोम्बासी नाम से प्रसिद्ध है। इसे भूमध्यसागर का "प्रकाशगृह" भी कहते हैं।

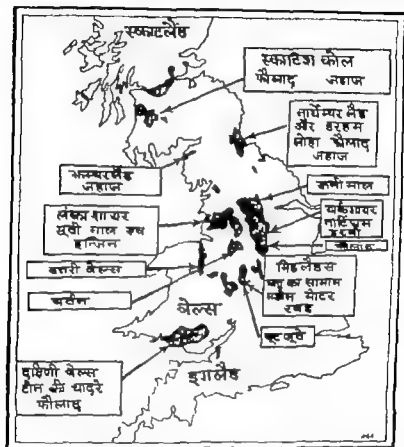
बालकन प्रायद्वीप—यूगोस्लेविया, अल्बेनिया बल्गेरिया ग्रीस इन्हीं

आदि देश मिलकर बासकन प्रामद्वीप कहलाते हैं। यह भाग अधिकांश पहाड़ी है। जिसमें आस्पस पिन्डस बासकन आदि की पहाड़ी श्रृंखला फैली हुई है। यहाँ के कुछ भागों में घास होती है। वहाँ भेड़-बकरियाँ चराई जाती हैं। बालों पर सिन्दूर के आंगुल हैं। ठमरी भाग में मोट बेल आदि फल होते हैं। नीचे के भाग में अमूर, बिलून, तम्बाकू कुसाव आदि फल-फूल होते हैं। यूरोस्सेविया से मक्का गेहूँ, सन, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। यहाँ के अधिक लोग पेड़ काटने भेड़ बकरी सुअर आदि पालने बगीचे लगाने और खेती करने आदि काम करते हैं। बैलघर यहाँ की राजधानी है। बस्तेरिया में गेहूँ, मक्का आदि पैदा होते हैं। भेड़ तथा अन्य पशु पाले जाते हैं। यहाँ खराब बकरी मोट आदि के कारखाने हैं। तुजवा नाम की घाटी में कुसाव का इन पिकास जाता है। कुनाम एक पहाड़ी देश है। यहाँ पर अमूर, बिलून अजीर नारंगी गेहूँ, तम्बाकू कपास आदि पैदा होते हैं। एवेन्स मुजान की राजधानी है। टर्की एक छोटा सा राज्य है। यहाँ के कासीन कम्बल अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ कुस्तुनुनियाँ एक अच्छा शहर तथा बन्दरगाह है। एशिया गोपिन भी एक उपजाऊ देश है, इसमें फ़ैबी अवनियाँ हैं।

ब्रिटिश द्वीप-समूह—पहले यह भाग यूरोप से जुड़ा हुआ था, बाद में बीच की भूमि बँट गई और यह समुद्र बन गया। पहले जो यूरोप का लकड़ा बिया हुआ है, उसमें यह भाग ब्रिटिश द्वीप-समूह कहलाता है। इसमें इंग्लैंड आयरलैंड, स्कॉटलैंड आदि बड़े द्वीप हैं। बाकी छोटे-छोटे हैं। यहाँ का समुद्री किमारा कटाफटा है तथा बमता नहीं है और बलबानु भी अच्छा है। साल भर तक पानी बरसता रहता है। यहाँ जोड़ा कोमसा अधिक निकलता है। इंग्लैंड का औद्योगिक क्षेत्र बहुत बड़ा बड़ा है। यहाँ बयल कम है तथा कमबोर पास उपती है। इनमें सुअर आदि चराये जाते हैं। यहाँ घब खेती होने लगी है। देश में खेती का काम कम होता है। आयरलैंड में आधु सन घनसी गेहूँ आदि पैदा होता है तथा इंग्लैंड में गेहूँ, जो जई और स्कॉटलैंड में गेहूँ आदि पैदा होता है। यहाँ की गस्पस्ट्रीम की गर्म जारा से मछली अधिक पकड़ी जाती है। इ बलबड में जोहा, कोमसा आदि की खानें अधिक हैं। पशु पालन अधिक होता है।

इंग्लैंड के मध्य में कोयले की खानें अधिक होने के कारण यह कासा देश भी कहलाता है। यहाँ छोटी पिन से लेकर, बड़ी बड़ी मछीन टोप इमिन आदि तैयार करने के कारखाने हैं। बरमिचम मोटर, साइकिल

इस्खन, पटरियाँ पुल, ईपकियाँ, बन्दूकें, तोपें, रेडियो आदि चीहें के सामान बनाने के कारखाने अधिक हैं। स्कॉटिश नामक प्रदेश में चाकू, चरौटे, घुमियाँ



चित्र १९

उसबारें आदि धन्नी बनती हैं। आसगी जहाज बनाने के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। आसगी में सुपी रेसमी कपड़े टसर आदि के कारखाने हैं। जहाज बनाने का काम मन्दन बिबरपुल म्बुईसिस में भी होता है। इस प्रदेश में कपास भी होती है तथा बिबरपुल नामक बन्दरगाह के द्वार बाहर से भी मँवाई जाती है। गैन्सबर्टर सुपी कपड़े के लिये प्रसिद्ध है, वहाँ बड़े-बड़े जहाज भी आते जाते हैं। मोहा पीसाव का सामान मशीन

घास भी तैयार होते हैं। सीइस ऊनो कपड़े के सामान के लिये प्रसिद्ध है। मार्कशायर में घोर स्कॉटलैण्ड में बूट का सामान तैयार होता है। स्कॉटलैण्ड का ऐडिनबरा भी सन के काम के लिये प्रसिद्ध है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है तथा स्कॉटलैण्ड की राजधानी है। यहाँ कागज बनाने की भिमें तथा छापेखाने अधिक हैं। ग्लासगो के बीसफास्ट में टसर के कारखाने हैं। यहाँ जहाज बनाने का काम अधिक होता है। अर्बो में रेशमी सामान तैयार होता है। मार्कशायर कपड़े के कारखानों के लिये प्रसिद्ध है।

लन्दन यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यह शहर बहुत बड़ा है तथा एक अच्छा बन्दरगाह भी है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ८२ लाख है। बसिणी ईंगलैण्ड का सारा मान यहीं से निर्यात किया जाता है। यहाँ जहाज कपड़ा सोहा तथा अन्य वस्तुओं के कारखाने हैं। इसमें कैम्ब्रिज और प्रीन्सटोन नामक प्राचीन विशालय हैं। यह व्यापार की दृष्टि से अच्छा है। डबलिन काठिन्य यहाँ बड़े शहर है।

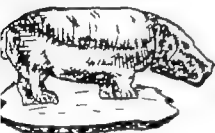
अफ्रीका—यह द्वीप अफ्रीका महाद्वीप भी कहलाता है। बास्कोडियामा नाम के एक पुर्तगाली ने भारत आते हुए इसका चक्कर लगाया था। इसका समुद्री किनारा सपाट होने के कारण जहाज नहीं रुकते हैं। बीच का भाग पठारी है। इसमें बहुत सी नदियाँ बहती हैं, किन्तु उनमें भरने बहते रहने के कारण नावें नहीं चल सकती हैं। यहाँ बड़े बड़े रेगिस्तान हैं तथा बहुत बड़े जंगल हैं, जिनमें घासभी नहीं रह सकती है। यहाँ के जंगली जानवर घेर, चींठे आदि बड़े खूबवार होते हैं। यहाँ के निवासी अधिकोश जंगली तथा बड़े ही भयानक हैं, जो पहंगीयों को लूट कर खा जाते हैं।

इसका क्षेत्रफल समस्त यूरोप से ठीकना है। यहाँ के पहाड़ ऊँचे नहीं हैं, केवल ऊपर की ओर एक बड़ा पहाड़ एम्सस है, जो कि यूरोप के मात्पस पर्वत के सदृश है। अफ्रीका का अधिकोश भाग पठारी है। बाकी के भाग में जंगल तथा रेगिस्तान हैं। एटसस के नीचे एक विशाल रेगिस्तान है। यहाँ का यह रेगिस्तान समयमय धावे क्षेत्र में पना हुआ है। सहारा से भी अफ्रीका उजाड़ और भयानक हो गया है।

अफ्रीका के ऊपरी भाग में सबसे बड़ी नदी बहती है। कहा जाता है कि 'नील नदी' का एक छोटा सा स्रोत है, जो किसी न किसी तरह मोत के मुह से बच निकलता है। इसी नदी के कारण यह क्षेत्र उपजाऊ भूखण्ड तथा आवास है। यदि यह नदी न होती तो मिस्र भी रेगिस्तान

होता। अफिरकाय समसंख्या इसी नदी के किनारे-किनारे बसी हुई है। यहाँ पैदावार भण्डी होती है, कपास, तम्बाकू चावल, ईस आदि अफिरका पैदा होती है। इसी नदी के किनारे किनारे यातायात के साधन हैं।

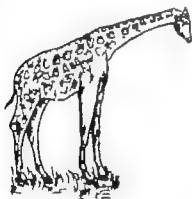
अफिरका में नील नदी के सिवा और भी बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। कांगो नदी गने घेरे और समानक अंगस में बहकर काटती है। इसके अंगसों में बहुत बड़े जलधर पाये जाते हैं, जो अग्य कही नहीं मिलते जैसे—हरियाई चोड़ा गैडा जलधर और जिराफ आदि।



चित्र १७—हरियाई चोड़ा



चित्र १८—गैडा



चित्र १९—जिराफ



चित्र २०—जेबरा

अफिरका की माइजर नदी सहारा रेगिस्तान की ओर अनुपाकार में बहती है। जेम्बेजी बहिली अफिरका की प्रसिद्ध नदी है। अंगसों में हरियाई चोड़ा जेबरा जिराफ आदि के अतिरिक्त संपूर जलमानुष जम्बर हाथी घेर, हिरन आदि बहुत पाये जाते हैं।

रेगिस्तान में दुतुमुनें जी मिचते हैं। यह महाद्वीप भारत से लगभग ६ गुना बड़ा है। यहाँ की जनसंख्या भारत से दुतुनी मानी जाती है। सहारा रेगिस्तान में बहुत कम आदमी रहते हैं। अब यहाँ कुछ यूरोप के योरे आदमी



चित्र ११

भी रहने लगे हैं। यहाँ भीछो बम्बू घासि आदिवासी अधिक पायी जाती हैं। लोग बाघर अधिक पचाते हैं तथा शिकार करते हैं। कांगो नदी के किनारे विगी के जंगलों में रबड़ हथुड़ी की जाती है। कांगो के किनारे जमीनें आदमी रहते हैं, जो शिकार खेल कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

सहारा विश्व का सबसे बड़ा रेगिस्तान है। यह अफ्रीका में दूर-दूर तक फैला हुआ है जो कि हिन्दुस्तान से बड़ा है। यहाँ अधिक गर्मी और अधिक धूप पड़ती है। यहाँ बांधू के बड़े-बड़े पहाड़ हैं। यहाँ माँझ बहुत बिकराना जाती है। यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। वर्षा कम होने के कारण कुछ नहीं उगाता है। रेगिस्तानी भाग में रामबाँस, बबूल, कटियार भड़ियाँ उगाती हैं। यहाँ बामू कम है वहाँ बघा बाबल सुभारा तरबूज बेहू नारंगी नींबू आदि होते हैं। यहाँ की भूमि की उपरुक्त सिंचाई से आये तो अनाज कुछ पैदा हो सकता है।

यहाँ के जानवरों का रंग सुरा होता है, घुलहरी जिनकसी कुमरी सुतुमुर्ग ऊँट घरमीने बन्दर अहरीने कीड़े आदि यहाँ अधिक पाये जाते हैं। सहारा के लोग चारों ओर घाग जमा कर बीच में बिन्दु रख देते हैं और फिर उसका नाप लेते हैं। जब गर्मी के कारण वह तड़पता है तब अपने घाग को काट-काट कर मर जाता है। यहाँ के लोग भेड़ बकरी ऊँट नचे पालते हैं।

वहाँ के लोग बहुत बड़काते हैं। ये लोग दूधते रहते हैं। ये लोग अपने जानवरों को लेकर चरवाहों की उमास में दूधते रहते हैं। इनके ठन्ड बकरी के बालों के बने होते हैं। ऊँट यहाँ का अहाज कहलाता है। अपने जानवरों की देखभाल करना जोड़े तथा मक्खन बेचना आटा कपड़ा, पीर कहुवा आदि मोल लेना काफिलों को रास्ता बताना बढ़ना और डाका बालना इनके मुख्य कार्य हैं। इनके ठन्डुओं में बटाइयाँ, बकरी, ऊँट व बालों की बनानी पई रस्सियाँ भेड़ की बालों के कपड़े मक्खन दूध पानी आदि रखने के लिये मिट्टी के बर्तन आदि रहते हैं।

मोसिस नामक स्थान में लोग गाँव तथा घर बना कर रहते हैं। यहाँ सुभारे, पत्त, बाबल आदि पैदा होते हैं। यहाँ के लोग खेती करते हैं तथा आमदर भी चराते हैं। बगड़े से जीन तथा बीस बनाना सुभारे की पत्तियों से बटाइयाँ बनाना टोकरियाँ बनाना आदि इनके कार्य हैं। वे इनके अदले कपड़ा मसाला टीन के बर्तन रेशम चाय आदि सेते हैं। यह व्यापार बहुत लोगों के हाथ में है। सहारा के रेगिस्तान में भी उत्तरोत्तर सभ्रति होने की सम्भावना की जा रही है। वहाँ पाठान ठोड़ कुम्हों से सिंचाई करके खेती की जायगी।

नील नदी के पास जाने देह की नील प्रदेश कहते हैं। यह माय धरतीका में सबसे उपजाऊ है। जब इसकी जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह पूरा भाग बीरस मैदान है। इसके ऊपर माय में कपास अधिक पैदा होती है तथा मक्का सम्बाहु, येहू, पन्ना जामुन आदि अधिक पैदा होते हैं। मिश्र माय में सब्जियाँ पैदा होती हैं। मिश्र हिन्दुस्तान के मिश्र देश में निम्न-उन्नता है। नील नदी की घाटी में पैदावार अधिक होती है। इसलिये इसको 'नील का हाथ' कहते हैं।

काश्मिर यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यह धरतीका का सबसे बड़ा शहर है। यह मिश्र की राजधानी भी है। यहाँ ही मिश्र के पुराने पिरमिड पाये जाते हैं।

मिश्र की सम्पत्ति बहुत प्राचीन है। यहाँ के लोग बहुत चतुर थे। वे कलाएँ जानते थे। उनमें से एक कला भुईँ को मसाले में रखने की है। जब कोई बड़ा घाबरी मर जाता था तब उसे एक मक्की के बरस में रख दते थे जिसे ताकत कहते हैं। उस मास पर वे ऐसा प्रयोग करते थे कि वह सादा कभी भी सड़ने नहीं पाती थी।

मिश्र में कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ की कपास बहुत धरती होती है। असीरजगिया यहाँ का मशहूर शहरपाह है, जिससे साठ मास बाहर मेला जाता है। पीट सई भी एक बड़ा शहरपाह है। यहाँ जहाज कीमता लेते हैं। मिश्र के नील के माय में एक ऐसा माय है जिस पर इबनेट का भी अधिकार है और मिश्र का भी। यहाँ कपास की पैदावारी बढ़ई जा रही है।

धरतीका में एक देश असीरीनिया है जिसमें असीरीनिया पठार तथा तुमासीनैड आदि देश सम्मिलित हैं। असीरीनिया तो पहाड़ी भाग है तथा तुमासीनैड बिस्नुस रेगिस्तान है। आबामुबी के नाम से बनी हुई होने के कारण धूमि बहुत उपजाऊ है। जब इसकी मिट्टी नदियों से मिश्र में पहुँचती है तो उसे भी अधिक उपजाऊ बना देती है। यहाँ येहू, अकरियाँ पायी जाती हैं। पैदावार में कपास नील केला आबामुस गया, कहुआ आदि होते हैं। ऊपर भाग में अंगूर, नारंगी, येहू मक्का अधिक होते हैं। यहाँ मर सीना सीहा कोदना गमक घोरा गमक मिट्टी का सेब, सीसा आदि की घातें अधिक हैं। यहाँ की राजधानी एबिसधमाका है।

असीरीनिया के निम्न छोटे-छोटे देश हैं। पहला एरीट्रिया, जो पश्चिम

इटली के राज्य में था। यह भाग उजाड़ और रेतीला है। यहाँ की राजधानी अस्मारा है, जहाँ बहुत बहुमुख्य मोती निकलते हैं। फ्रान्स सुमासीसीय नामक देश से हाथीदाँत काण गोंध बाहर भेजा जाता है। इसी के निकट ब्रिटिश सुमासीसीय है जहाँ से हाथीदाँत भण्डा बाहर भेजा जाता है। इसके पूर्व में एक रेगिस्तानी देश है, जिसे इटालियन सुमासीसीय कहते हैं। यहाँ सुन्मिष्ठ रूप कहना अधिक पैदा होता है।

अबीसीनिया के नीचे का भाग पठारी है। यहाँ दो बड़ी नदियाँ हैं। इस भाग में अफीका की सबसे बड़ी मीस है। जिनमें बिक्टोरिया बहुत प्रसिद्ध है। बिक्टोरिया के निकट पानी ठीक बरसता है। इनके किनारे-किनारे रबड़ गाँव कहा कपास तम्बाकू पत्रा क्वार अधिक पैदा होते हैं। बिक्टोरिया मीस के पास बेंगा अधिक पैदा होता है। इस भाग से हाथीदाँत रबड़ काननर, लोहा आदि बाहर भेजे जाते हैं। कीनिया नामक राज्य में उपागडा रेलवे के बन जाने से बहुत उत्पत्ति हो रही है। मोम्बासा कीनिया की राजधानी है और प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ से रबड़ भण्डा हाथीदाँत बाहर भेजे जाते हैं। युगन्डा नामक राज्य हाथीदाँत और चिकार के लिये प्रसिद्ध है। बंबीबार एक सुँगे का टापू है जो लीज और गरम मसासे के लिये बहुत प्रसिद्ध है, जिनका निर्यात किया जाता है। यहाँ एक घोर सूँगे का टापू है जो पैम्पा कहलाता है। इसमें लीज और नारियल अधिक पैदा होते हैं।

बसिखी अफीका में डैम्बिबी नामक नदी बहती है। इस नदी के पास पास के क्षेत्र को डैम्बिबी प्रवेश कहते हैं। इसमें बिक्टोरिया नामक झरना बहता है। यहाँ एक संकरा सा बर्रा है जो अबसता कुमा वर्तन कहलाता है। इसमें बहुत ऊँचे से नदी का पानी गिरता है। इसके दोनों घोर छोने की खाँ हैं। यहाँ अगिष पदार्थ अधिक निकलते हैं। यहाँ की माताबोसी नामक छोने की खान बहुत प्रसिद्ध है। रॉलिसबरी नामक स्थान भी छोने की खानों के लिये प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कोयसा तम्बा सीसा अस्ता मीसा भी निकलता है। बसिखी रोडेधिया से छोना तम्बाकू लकड़, मक्का आदि बाहर जाती हैं। रॉलिसबरी यहाँ की राजधानी है। जो छोने की खानों के लिये प्रसिद्ध है। उन्ताभी में भी सोना निकलता है। उत्तरी रोडेधिया का ऊपरी भाग जंगलों से घाण्णक्षित है तथा नीचे का भाग रेगिस्तान है। लिबिक्वुस्टन यहाँ की राजधानी है इसके निकट ही सोना निकलता है।

म्बासा मीस के पास म्बासासीय राज्य है। यहाँ अना कपास तम्बाकू

बहुत पैदा होता है। जोम्बा नामक शहर जहाँ की राजधानी है। जहाँ पुरुगोत्र पूर्वी अफ्रीका नामक राज्य है, यहाँ से कहवा तम्बाकू रबड़ मेंम रॉर ठिसह्न बाहर भेजे जाते हैं।

अफ्रीका से अलग मैडागास्कर नामक एक द्वीप है। यह पूरा द्वीप पहाड़ी है। यहाँ वर्षा बहुत होती है। यहाँ से रबड़ बाहर भेजा जाता है। यहाँ पर जने जयस हैं। एस्ताननारिजो नामक शहर यहाँ की राजधानी है और टामाटेव वहाँ का बन्दरगाह है।

माइजर नदी के पास के राज्यों को दिखाकर माइजर बनता है। इसमें मिनीकोसट नुबान का कुछ भाग सेनीयाम, मेम्बिया आदि जाते हैं। किनो टट पठारी भाग है। इसके किनारे एक पतला सा मैदान है। इसमें वर्षा अधिक होती है। इसलिये यहाँ जने जंगल हैं। मोठरी नाम में कुछ कपास तथा बाजरा पैदा होता है। यहाँ पर रबड़ आबनूस लकड़ी हाथीदाँत, नारियल कपास नील आदि पैदा होते हैं। सोला टोन लोहा ताँबा यहाँ के खनिज पदार्थ हैं। मोस्कोस्ट में सोला सबसे अधिक निकलता है। गोम्बिया नामक राज्य मुनफली गरी लौह रबड़, धीर खास के लिये प्रसिद्ध है। सीयसोन नामक राज्य में काको मिर्च नारियल तथा रबड़ अधिक पैदा होती है। मोस्कोस्ट से हाथीदाँत जंगली पैदावार तथा सोला बाहर भेजा जाता है। नाईजीरिया में मरम मसाले कहवा ठिसह्न अधिक होते हैं। नोचे के नाम में रबड़ कहवा हाथीदाँत और लकड़ी होती है। सीनीयास में मुनफली पैदा होती है। सादबोरिया नामक राज्य में हब्बी सोम जाते हैं। यहाँ कहवा नारियल का तेल तथा यन्त्र अधिक होता है। एमगन में बहुत तथा सेट होनेवा में धान अधिक पैदा होता है। नैर-मिन्ग नहीं मरत जा। यह जहाजों के कोयला लेने का मुख्य स्थान है।

आयेजम नदी के अतिरिक्त काँयों नगा का अग्नि सबसे बड़ा है। आमेजम नगा बसिराओ अमेरिका की दक्षिण बड़ी नदी है। काँयो के पैरिन की तीव्र भावों में बाँटा जा सकता है। पहला निचले देश जिनमें वर्षा अधिक होती है जिसके कारण जने जंगल हैं। जहाँ जंगल कम है वहाँ कपास पाकना पापल रगानु, कने आदि पैदा होते हैं। जलमों में माहीगरी आबनूस ताँब, आदि की लकड़ी रबड़ जाते आदि पैदा होते हैं। त्रिपला त्रिपल (क्या जाता है। इमरत नाम ऊँचा पठार है। यहाँ वर्षा कम होती है। परागाह अधिक है।

जैसे होते, धरियाई बोई अधिक पाये जाते हैं। तीसरा भाग उत्तरी प्रदेश है। जिसमें केमा कहला रजई आनि होते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका अफ्रीका का सबसे अधिक उपजाऊ जमी देण है। इसकी जमरुंझा बहुत जमी है। यहाँ सोना अधिक निकसता है। बिटवाटर्सरेड नामक पहाड़ी से सबसे अधिक सोना निकसता है। यहाँ की खान विश्व में सबसे बड़ी है। समयमग आधा सोना यहाँ निकसता है।

हीरा निकालने के लिये भी यह राज्य अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर हीरे की बड़ी बड़ी खानें हैं। सन् १८७१ में किम्बर्न नामक जगह से हीरा निकलना प्रारम्भ हुआ था जो विश्व में सबसे बड़ी है। किन्तु आज़कल एक इससे भी बड़ी हीरे की खान प्रीटोरिया नामक शहर के निकट निकली है। अब तक इस खान ११ समयमग ६२ अरब रुपये के हीरे निकल चुके हैं।

कोयला भी यहाँ का प्रसिद्ध खनिज है। अब तक लगभग २ अरब रुपये का कोयला निकल चुका है।

बेड़क कू सुसुईय नैटल ओरेंज प्री स्टेट ट्रांसवाल में कोयले की बड़ी बड़ी खानें हैं। दक्षिणी अफ्रीका में कोयला अधिक मात्रा में निकलता है। यहाँ तांबा नामान्बान्सैड और ओकीप में मिलता है। सोडा और टीन ट्रांसवाल में मिलता है। इनके अतिरिक्त सीसा अन्नक मैंगनीज एस्बेस्टोस जस्ता निकल सोडा भी पाया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका में पठार अधिक मात्रा में फैला हुआ है। यहाँ जमीन कम पड़ती है। जाड़े में सूखी हवामें चलती है। यहाँ की जलवायु गर्मी है। तम्बाकू गन्ना मक्का आदि पैदा होते हैं तथा घुतुमुर्ग बैड़ बकरियाँ आदि पाली जाती हैं। इसके नीचे के भाग में एक रेगिस्तान है। जिसे कालाहारी का रेगिस्तान कहते हैं। यहाँ वर्षा कम होती है। इधर उधर बोई छो बाघ पैदा हो जागी है तथा यहाँ भेड़ बकरियाँ पालने का काम करते हैं।

सन् १९१० में कई राज्यों को मिलाकर अफ्रीका तथा प्रीटोरिया नामक शहर यहाँ की राजधानी है। इसमें केप नाम का एक प्रांत है जिसके पूर्वी भाग में मक्का तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। इस प्रांत का ऊपरी भाग बिलकुल सूखा है। इस भाग में भेड़ें तथा घुतुमुर्ग पाले जाते हैं, तथा बहुत साफ ऊन बाहर मेला जाता है। केपटाउन यहाँ का मुख्य शहर है। जो कि दक्षिणी अफ्रीका का सबसे बड़ा शहर है। यहीं से होकर नासोबियामा हिन्दुस्तान आया था। इसीलिये इस जगह का नाम केप ऑफ ड्रड होप रखा गया था।

यह शहर बन्दरगाह भी है तथा राजधानी भी। बहाम यहाँ आकर कोयमा सेते हैं। यहाँ से फल भेजें, सुसुमुय के पर, सोना ताँबा हीरे, ऊन बाहर भेजे जाते हैं। किम्बर्से नामक शहर के निकट सोने की खानें हैं। यह एक मण्ड्य बन्दरगाह है। यहाँ से हीरे ऊन सुसुमुय के पर और चमड़ा बाहर भेजा जाता है।

यहाँ के एक प्रान्त का नाम मंटोक है। यहाँ यसा आबल केसा धनदास अधिक पैदा होता है तथा कोयमा सोना ताँबा आदि भी निकलते हैं।

यहाँ का मुख्य शहर डरबन है, जो एक मण्ड्य बन्दरगाह भी है। मोरेब की स्टेट में भेजे और सुसुमुय के पास जाते हैं। यहाँ की लीडोन नामक चाटी बहुत उपजाऊ है। यहाँ बिना सिंचाई के बहुत पैदा होता है।

दास नामक नदी के किनारे पर ट्रान्सवाल नाम का प्रान्त है, यहाँ बोदे तथा भेजें पासी जाती हैं। यहाँ नीचे के भाग में टिसिटसी नाम की बहुत सी मक्खी पाई जाती है। इस मक्खी के कारण यहा आगबर नहीं पाये जाते हैं। इस प्रान्त में सोना बहुत निकलता है। ५० करोड़ रुपये का सोना प्रतिवर्ष इसी प्रान्त से निकाला जाता है। यहाँ सोने की खानों की एक पहाड़ी है जो बिटवा र्चरेण्ड कहलाती है। यह पहाड़ी ५ मील लम्बा है। प्रीटोरिया नामक शहर पूरे दक्षिणी अफ्रीका की राजधानी है। यह शहर खेतों की दृष्टि से बहुत मण्ड्य है। सोने की खानों का पर्वत इसी के निकट है। इसका दूसरा शहर बोइन्सबर्ग है, जो १ रेलों का केन्द्र है, जो दक्षिणी अफ्रीका की स्वयं पूरी कहलाता है।

इसके नीचे बेन्जामानलैण्ड नामक राज्य है, जिसका मध्यभाग रेगिस्तानी है, यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। यहाँ कोई बड़ा शहर नहीं है तथा यहाँ कम पशु पाये जाते हैं।

दुबेर ही दक्षिणी अफ्रीका नामक राज्य है। इसके बीच में कई पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। यहाँ क लोगों का प्रमुख काम पशु चराना है। यह राज्य तथा की खानों के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है। वास्तविकता यहाँ का बहुत बड़ा बन्दरगाह है।

अफ्रीका के कुछ भाग में रेगिस्तान तथा कुछ भाग में बंगाली की क्यारें हैं। यहाँ के बंगालों में नागा प्रकार के जीव-जन्तु पाये जाते हैं। यहाँ सोना तथा हीरा अधिक निकलता है।

सोना हीरे कोयला चमड़ा ऊन आदि वस्तुएँ, इयर्सेब जर्मनी प्रभृत्, हिन्दुस्तान को भेजी जाती हैं। समयम १३३ घरब रुपये का सामान प्रतिवर्ष निर्यात होता है।

यहाँ के लोग इयर्सेब हिन्दुस्तान जर्मनी कनाडा, समुक्त राज्य अमेरिका आदि बड़े-बड़े देशों से मसीनरी मोटरकार, सूती कपड़ा कापज वनाइयाँ तथा अन्य सामान का आयात करते हैं। सबमग १ करोड़ रुपये का सामान प्रतिवर्ष विदेशों से भेजाते हैं।

उत्तरी अमेरिका—आज से ४० वर्ष पहिले अमेरिका को कोई नब्बो जानता था। हमारे हिन्दू धर्म की पुरानी पुस्तकों में उल्लेख प्राता है कि पृथ्वी ३ भाग पाताल लोक है यह पाताल लोक अमेरिका ही था।

अमेरिका की खोज कोलम्बस नामक एक आरबी ने की थी। यह जिनोआ का रहने वाला था। यह हिन्दुस्तान को खोजना चाहता था क्योंकि उन दिनों यूरोपवासियों ने यह सुन रखा था कि हिन्दुस्तान एक सोने की चिड़िया है। इसीलिये कोलम्बस भी हिन्दुस्तान भ्रमा चाहता था। इसके बाद अमेरिका को एक 'अमेरियो' नामक आरबी ने खोजा था इसलिये इसका नाम अमेरिका पड़ा।

अमेरिका के दो भाग हैं, एक उत्तरी अमेरिका तथा दूसरा दक्षिणी अमेरिका। इन दोनों को मिलाकर नई दुनियाँ भी कहते हैं।

उत्तरी अमेरिका में हरे भरे पहाड़ों की श्रृंखलाएँ हैं। ये राकी पर्वत कहलाते हैं। यहाँ इमारती लकड़ी के घने जंगल हैं। जंगल इस देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। राकी पर्वत के मध्य में कोलोरेडो नामक पठार है। इसमें इसी नाम की एक नदी बहती है। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी घाम में आस्पशियन नामक पहाड़ियाँ हैं। जो अटलांटिक क सहारे-सहारे दो हजार मील तक फैली हुई हैं। राकी और आस्पशियन के मध्य उत्तरी अमेरिका का विस्तृत मैदान है। इसका ऊपरी भाग साइबेरिया को मालि बिन्दुकुल ठण्ठा है तथा ऊबड़ भी है। बाकी भाग बहुत उपजाऊ है। यहाँ भैंस, मकई, कपास बहुत होती है। इस मैदान को बड़ी-बड़ी नदियाँ सींचती हैं। इसकी सबसे बड़ी नदी मिसिसिपी है। जो कि नई मिट्टी लाकर मैदान में बिछा देती है। व्यापार की दृष्टि से सेंट

ऊपर के ठंढे भाग में सूख हरिण मुझकी वैसे घाबि जानवर मिलते हैं। यहाँ का कैरीको नामक हरिण रेम्बियर के सङ्घ होठा है। यहाँ के मुझकी वैसे के बालों के ऊँची अंगरखे बनाये जाते हैं। कनाडा के बंगलों में बन बिनाच पूमा नाम और नूरे रीछ भेड़िया नेबला बिम्बू, बीबर स्नैक घाबि अधिक पाये जाते हैं। जिनसे नयबा ऊन और नाम मिलती है। प्रेरी के नाम के मीनारों में जिसन भँसा अधिक पाया जाता है, जो भुम्ब बनाकर रहता है।

मर्म बंगलों में बन्दर, तोता चाँप घेर जोते घाबि अधिक पाये जाते हैं। ग्लुफाउन्डलैण्ड के चारो तरफ सेन्टसारैम्स के मुहाने में फण्ड की झाड़ी मैक्सिको की झाड़ी कैसीफोविया की झाड़ी है। यहाँ बैन्बुवर के निकट मछलियाँ बहुत मिलती हैं। पुर्ल की घोर काँड और लोवस्टर नामक मछलियाँ पाई जाती हैं। पश्चिम में सामन मछली श्रॉटलेक्स में नीली तथा लकैब मछली मिलती है। अमेरिका के अधिकोद्योग लोग मछली मारते हैं।

अमेरिका में ब्रुटोपियन रैड इण्डियन नीचो मैसिचो बोमी आपली घाबि जातिवाँ रहती हैं। रैड इण्डियन अधिकोद्योग मैसिचो तथा इन्डियन संयुक्त राज्य में पाये जाते हैं। वे लोग मछली का शिकार करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ कुछ नीचो लोग भी बसे हुए हैं। यह जाति अफ्रीका में अधिक पाई जाती है। अमेरिका के लोगों ने इन्डी लोगों को हुसाय बना दिया है। मैसिचो नामक जाति के लोग मध्य अमेरिका तथा मैसिचो में अधिक पाये जाते हैं। कनाडा संयुक्त राज्य मिचीगिपी नदी के किनारे घाबि में बनसँख्या अधिक बसी हुई है। यहाँ यातायात के साधन अच्छे हैं।

अमेरिका के ऊपरी भाग में ग्रीनलैण्ड नामक एक बड़ा टापू है, जो निकटवर्ती टापुओं में सबसे बड़ा है। यह सारा टापू बर्फ से आच्छादित है। केवल किनारों पर एस्कीमो तथा कुछ केम्पार्क के निवासी रहते हैं। इन्हीं का यहाँ पर राज्य है। ये शिकार करते हैं तथा कायक नामक नाव में बैठ कर मछली का शिकार करते हैं। अपर नेबिस यहाँ का बड़ा बन्दरगाह है। जो विश्व का सबसे बड़ा जहाजी नगर है।

ग्लुफाउन्डलैण्ड—सन् १९०० वर्ष पहिले इसकी खोज हुई थी। यह स्वान मछली के शिकार के लिए निषण्णिक्याय है। मेक्सिको की नर्म चारा यहाँ आकर सैंड्वेचर नामक ठन्डी चारा से मिलती है। इस कारण यहाँ मछलियाँ अधिक मिलती हैं। इस टापू में पहाड़ियाँ नदियाँ, झीलें तथा ताजान

मच्छि है तथा स्प्रूस, डेक्लर, बर्च, सार्च वीपर धारि के जंगल हैं। यहाँ की बाटियों में भी जर्द, धानु, धधिक पैदा होते हैं। इसके घटिरिक्त कोयला सोहा, लोहा धारि की जालें हैं।

यहाँ कौड मछली धधिक पायी जाती है। यहाँ के जोषों का मुख्य काम मछली मारना है। यहाँ से कौड मछलियाँ बाजील एन पुर्न्याल इटली हॉपलैंड धारि येलों को भेजी जाती हैं। कौड मछली जाल के घटिरिक्त, तल निकालने के काम में जाती है। सेंटबीम्स यहाँ को राबपानी है। यहाँ से मछली कौड निबर बाइन सोहा कोयला धारि बाहर भेजे जाते हैं।

कनाडा—यह अमरीका का उत्तरी भाग है। इसका पूर्वी भाग तो पुरानी बट्टानों से बना हुआ है बीच का भाग बोरस है तथा मुनायम बट्टाना का बना हुआ है तथा पश्चिमी भाग पहाड़ी धीर पठारी है। जमिन पर्वतों में तो कनाडा विश्व में सबसे भनी है। जममय २१ करोड़ वर्ष के अनिज पदार्थ प्रतिवर्ष निकाले जाते हैं। कोयला कोबास्ट निकल ऐसबीस्टोस सोना तो यहाँ बहुत मात्रा में पाया जाता है। प्रतिवर्ष अगमय १३ करोड़ रुपय का कोयला मोबास्कोधिया एलबार्ट की जालों से निकाला जाता है। यहाँ विश्व में सबसे धधिक निकल निकाली जाती है।

यहाँ के जंगलों में डेक्लर, मैपिल, एम्स बाहुबलुठ बर्च बीच सार्च धारि के पेड़ धधिक पाये जाते हैं। लकड़ी काटने का काम धधिक होता है। मुनायम लकड़ी के तूब से कायम बनाया जाता है। यहाँ के मैपिल नामक पेड़ से छक्कर बनाई जाती है। यहाँ अगमय ४०० लकड़ी के काम के कारखाने हैं।

कनाडा के जंगलों में मनुष्य जालबरो को जमका धीर अन्न इकट्ठी किया करते हैं। कुलाई के मछिले में हजमन लकड़ी में जहाज धाये हैं तथा अपने भाप बन्धूक कुम्हाड़, बाहु कम्बल धारि सामान बेच कर घर घर कर ले जाते हैं। कर वाले जालबरो में गीज धानु, लोमड़ा बीबर सेबिल सीस अरमिन भड़िया धारि हैं, भी छवियों में मारे जाते हैं।

यहाँ मछली धारने का कार्य धधिक होता है। व्युकाउम्बर्नग्ड के निकट तम स्थान इजसन की खाड़ी बीकुबर के पास तथा सैन्टजारेन्स भरी धीर भील धारि जयहूँ मछली पकड़ने के लिये धधिक प्रसिद्ध हैं। सैन्टजारेन्स को बायो ग्रेटीज ब्रिटिश कोसम्बिया धारि में भेहूँ भी जर्द पई धानु, उम्बाहु,

कुम्हार घाटि अधिक पैदा होते हैं। कनाडा में फल अधिक पैदा होते हैं। ब्रिटिश कोलम्बिया लोक पेनिनसुला नोवास्कोशिया में ऐब नासपाती, प्रचुर अधिक पैदा होते हैं। ओटेरियो और क्यूबेक में बाय भंस अधिक पाते जाते हैं। जिनका दूध मक्खन पनीर वूसरे बेसो को भेजा जाता है। जोड़े वाम तथा मेड़ें प्रेरिक के मैदानों में अधिक पाते जाते हैं। कनाडा में लगभग ४० लाख भेड़ें पाली जाती हैं जिनसे ऊन मास कमड़ा अधिक प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त सोहे के सामान मोटरकार साईकिल ऊनी सूती कपड़ों के बहुत से कारखाने हैं।

कनाडा में कुछ प्रान्त प्रतमान्तिक सागर के निकट हैं, जो समुद्र के निकटतम प्रान्त कहलाते हैं। उनमें से एक नोवास्कोशिया है। यह प्रान्त न्यूफाउण्डलैण्ड से प्राया है। यहाँ फलों के बगीचे हैं। कनाडा का माया कोयला वहीं से निकसता है। वहीं के सोहे के कारखाना में सोहे की पटरियाँ अधिक बनती हैं। यहाँ की राजधानी हैलीफैक्स है जो यहाँ का बन्दरगाह भी है। यही से सामान बिदेशों के लिये भेजा जाता है।

दूसरा प्रान्त न्यूब्रिम्सविक कहलाता है यहाँ के लोग मछली मारने का काम करने सक्ती काटने कागज का गूदा बनाने का काम अधिक करते हैं। फेडरिक्टन यहाँ की राजधानी है जिसमें विश्व का सबसे बड़ा बन्दरगाह पाता है। सेंटजॉन यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

तीसरा प्रान्त प्रिन्सएडवार्ड टापू है। यह एक नीचा द्वीप है। यहाँ का क्लारा कटा फटा है, इसीलिये यहाँ मछली अधिक मारी जाती है। फल उगाया मक्खन पनीर बमान का काम अधिक होता है। चारलाट यहाँ की राजधानी है।

सेन्टमारेन्स नदी की बाटी में बने बेसा को नवी प्रान्त कहते हैं। यह बहुत उपजाऊ तथा चौरस मैदान है। इस में मेहूँ मक्का फल खाने मक्खन पनीर का काम अधिक होता है। यहाँ का पहला प्रान्त क्यूबेक है, जो ऊपर की ओर बीरान तथा पठारी है। नीचे की ओर देवदार के जंगल हैं। क्यूबेक ही यहाँ की राजधानी है। यह 'नई दुनिया का बिनास्टर' कहलाता है, क्योंकि कनाडा में कुत्ते का यही द्वार है। कनाडा का सबसे बड़ा शहर माण्ट्रियल है। यदि यहाँ नदी न बगती तो उत्तरी अमेरिका का यह सबसे बड़ा

राहर होता। यहाँ की नदों में बड़े-बड़े जहाज धाकर सकते हैं। मातासात के सावन धमके हैं। केन्टसारैन्स बोटावा रिचसो नदी के बीच में एक टापू सा बसा हुआ है। यहाँ पैदावार धब्डी होती है। नदी प्रान्त में दूसरा प्रान्त ओटेरियो है। यहाँ बैकप्रायरीय फलों की उपज के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ बहुत भातपाटी धाऊँ, खरबूजे अधिक पैदा होते हैं। यहाँ जलविद्युत अधिक पैदा की जाती है। पठारी भाग में बोरो लोहा लौहा मिट्टी का ठेका बहुत मिलता है। सबकेट में निकल कोकास्ट घास की जार्ने हैं। टीरन्टी यहाँ की राजधानी है। यह कनाडा दूसरा प्रसिद्ध शहर माना जाता है। लोहा डालने मशीन बनाने धाराव निकालने बमका रंगने सामान आदि बनाने के कारखाने अधिक हैं। सुन्दर ज़ाकी पर बसा होने के कारण रेल और स्टोमर अधिक आते हैं। यहाँ लोहे का काम बहुत अधिक होता है।

प्रेरी प्रान्त बिस्व के बहुत उपजान वाले क्षेत्रों में से एक है। गेहूँ के प्रतिरिक्त जो आई राई सन घानू भी अधिक पैदा होते हैं। यहाँ का पैदान बौरस है। इसका ऊपरी भाग पहिले कमी किसी भीष का भाग था उसमें बहुत अधिक पैदा होता है। इसका नीचे का भाग कुछ ऊँचा-नीचा है। इसमें कहीं-कहीं गेहूँ धब्बा पैदा होता है। इस भाग में बोड़े गाय बँध सुधर तथा भेड़ें पाली जाती हैं। विनीवेस यहाँ का बड़ा शहर है। यह कनाडा का तीसरा बड़ा शहर है। जनाब बीर जमने की बड़ी मक्की है।

ब्रिटिश कोलम्बिया भी कनाडा का एक प्रान्त है। यह पूरा भाग पहाड़ी है। यहाँ की जलवायु इक्वैड के समान है। समुद्री किनारा कटा-कटा है। पहाड़ी ढाल पर इपसठ पर लाल सिंवार सफेद देवदार के जंगल हैं। इनकी लकड़ी काटकर बिदेसों को भेजी जाती है। प्रतिवर्ष लगभग १२ करोड़ रुपये का सोना कोपला लौहा आदि सामान जार्नों से निकाला जाता है। फेवर नदी तथा ब्रैन्डर नामक बन्दरगाह के निकट करोड़ों रुपये की तैमन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, जिनका बिदेसों को निर्यात किया जाता है। तट पर लेती तथा घाटियों में फल उगाने का काम अधिक होता है। यहाँ से करोड़ों रुपये के फल प्रतिवर्ष बिदेसों को भेजे जाते हैं। तीन भातपाटी जैरी बेर, पीच धंङ्गर आदि कम अधिक भजे जाते हैं। ब्रैन्डर यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। इससे गेहूँ, मछलियों के बिछे पहाड़ों की लकड़ी और जनिव तथा घाटियों के फल बिदेसों को भेजे जात हैं। विक्टोरिया ब्रिटिश कोलम्बिया की राजधानी है तथा धब्बा बन्दरगाह भी है।

उत्तर के प्रदेश में दुग्धा, पूर्वीय की चाटी सम्मिलित हैं। यहाँ कपोन्डाइक सोने की खान है, जिसके कारण ही औसत नामक सहर बसा हुआ था। इसके एक तरफ अनास्का नामक प्रान्त है जो संयुक्त राज्य द्वारा कस से बहुत सस्ते दायों में खरीदा गया था। यहाँ सोना कोयला आदि की खानें हैं। यहाँ का मुख्य काम मछली मारना है।

कनाडा एक बड़ा बनी तथा अधिक पेड़ों पैदा करने वाला क्षेत्र है।

संयुक्त राज्य अमेरिका—यह राज्य विश्व में सबसे अधिक घनत्वपूर्ण समुद्रसमीपी अर्थव्यवस्था तथा विकसित है। यहाँ पेड़ों सबसे अधिक पैदा होता है। सोना चाँदी कोयला पेट्रोल अधिक निकलता है। यहाँ बड़ी-बड़ी मशीन, धातु, कपड़ों आदि बनाने के विद्यालय कारखाने हैं। यहाँ की आबादी कनाडा से छठ गुनी है। जिनमें लगभग एक करोड़ इन्डियन तथा रैड इन्डियन आदि जातियाँ रहती हैं।

इसके ऊपरी भाग में वाशिंगटन और ओरीगन नामक दो रियासतें हैं। यहाँ साल भर बर्फ होती रहती है। लगभग ८० पानी की बर्फ प्रतिवर्ष हो जाती है। यहाँ चाटी में फस बहुत अधिक पैदा होते हैं। बगलस फर, बेबबार आदि के खनिज हैं। यहाँ का मुख्य वन्यपशु सीएटल है। यहाँ से लकड़ी पल्प (हवा) कोयला गैस बाहर बेचा जाता है। यहाँ कोलम्बिया नामक नदी में मछली मारने का कार्य होता है। मछली भी विदेशों को बेची जाती है।

डिलोम राज्य कैलीफोर्निया है। यहाँ एक विद्यालय चाटी है जिसमें पेड़ों की मीठू तासपाटी अकरोट, किसमिस चरी मारपी अकूर आदि बहुत अधिक पैदा होते हैं। जिनका निर्यात किया जाता है। यहाँ सोना भी निकलता है। सैनफ्रान्सिस्को यहाँ का प्रमुख शहर है। जो एक प्राकृतिक वन्यपशु है। यहाँ का पानी इतना गहरा है कि लकड़ों बहाव खड़े रह सकते हैं। सोला फस पेड़ों मिट्टी का तेल आदि यहाँ से विदेशों को निर्यात होता है। सौस एक्विस्स यहाँ का एक बड़ा शहर है। विश्व का सबसे प्रसिद्ध घिनेमा की फिल्म बनाने वाला हालीवुड सहर यहाँ पर बसा हुआ है। विश्व के मिट्टी के तेल का २५ भाग यहाँ निकलता है। यहाँ से घिनेमा की फिल्मों तथा पल्प बंदरगाह सामान का निर्यात किया जाता है।

कैलीफोर्निया के पूर्व में पटारी भाग है जो अधिकतर रेगिस्तानी है। जिनमें से पानी अधिक पड़ती है। बर्फ बहुत कम होती है। जो भी न के बराबर।

हलेक नदी के पास कुछ कांसो मिट्टी है जिसमें कुछ गेहूँ हो जाता है। यहाँ प्र टास्ट नामक बिधान भीन है। यह इतनी कम पधरी है कि इसके ऊपर से एक रेल मार्ग जाता है। यह भीन समुद्र से १ गुनी चारी है। इससे प्रतिकर्ष हजारा मन नमक तैयार किया जाता है। यहाँ यकोस्टोन नामक एक बाग है, जिसमें जगमग १ हजार गर्म पानी के सोते हैं तथा २० प्राकृतिक बहुत गर्म पानी के फव्वारे हैं। इनमें शान्द बेवार सबसे बड़ा है। इसका पानी लगभग ३ फुट ऊँचा उछलता है। इस पानी से सिपाई का काम किया जाता है। यहाँ ३० मील सन्धी एक बरार है, जिस में कमोरेकी नदी बहती है। इन पठारों में खान खोदने का कार्य अधिक होता है। संयुक्त राज्य में मिलने वाली चोटी ताँबा लोहा का सबसे बड़ा भान यहीं मिलता है तथा सोने का ३ भाग यही मिलता है। कोपला तथा मिट्टी का तैल भी अधिक मिलता है।

राकी पर्वत के मध्य पास के बड़े-बड़े मैदान हैं, यहाँ चोके भेड़ें सुधर तथा अन्य पशु पाये जाते हैं। इसमेंसे नामक रिबासत चोके पालने के लिए अधिक प्रसिद्ध है।

मिसीसिपी नदी अपनी सहायक नदी मिसोरी को मिलाकर बिस्व की सबसे बड़ी नदी है। इसके बाय-पास बड़े-बड़े सहर बसे हुए हैं। यह नदी इटास्का नामक भीन से निकलती है, जो देवदार के जंगलों से घाब्यावित है। यह नदी देवदार के जंगलों को पार करके छोटी-छोटी भीन तथा इसदन को पार करती हुई प्रसिद्ध गेहूँ पैदा करने वाली बयह में जाती है। यहाँ सेन्टपाम तथा मिमियापानिस जो बड़े सहर हैं, जिनमें घाटा पीचने और मांस के कई कारखाने हैं। इनमें ३३ मजिन के व्यापारिक जहाज बसते हैं। इसके ऊपरी भाग में गेहूँ, कपास तम्बाकू आदि पैदा होते हैं तथा नदी के किनारे किनारे बहुत दूर तक मक्का ही मक्का पैदा होती है। इससे आगे इसमें बने पानी की मिसोरी नदी बहती है। इसके निचट ही सेन्त लुई नामक प्रसिद्ध सहर बसा हुआ है। यह एक बन्दरगाह है। यहाँ धूले तम्बाकू मोड़े आदि के सामान बनाने के कारखाने हैं। आगे चलकर यह नदी उपजाऊ मैदान में बहती है। यहाँ इस नदी के पानी को बाँधों में रोका गया है। इससे आगे पिट्सबर्ग और सिनसिनाटी नामक प्रसिद्ध सहर हैं जिनके कारखानों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनसे आगे मैम्फिस नामक सहर है। यहाँ नदी टेक्सी-मेक्सी होकर बहती है। इस भाग में कपास, जूता, तम्बाकू आदि की खेती अधिक

होती है। मैम्फिस में कपास सबसे अधिक पैदा होती है। उत्पन्न हुए म्यूथामिमास नामक शहर पकटा है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से कपास बिकर, जाबस मक्का तम्बाकू बाहर भेजी जाती है। बूसरा बन्दरगाह गासबेस्टन है। यहाँ से मिट्टी का तेल तथा कपास बाहर भेजी जाती है। इस भाग का सबसे बड़ा शहर सिकागो है। जो विश्व का चीना शहर है। अमरीका में न्यूयार्क के बाव इसी में सबसे अधिक मनुष्य रहते हैं। इनके निकट मिन्नीमन नामक बिस्वास भीम है जो इसके व्यापारिक सत्र को और भी बड़ा देती है। इस भीम में बड़े-बड़े बहाने होते हैं। यह एक बड़ा बन्दरगाह भी है। यहाँ मांस की सबसे बड़ी मण्डी है। मांस के प्रतिरिक्त चर्बी से साबुन बनाते हैं। बमका कुटो से कर्बी हड्डी से बटन तथा मोड़ से स्पाही बनती है। बहाँ बनाव की भी बड़ी मण्डी है। आटा लकड़ी कपड़े के भी कारखाने अधिक हैं तथा निम्न ही कोयला और लोहा भी निकलता है।

मीने और पूर्ण की तरफ एक बौद्ध मेशान है। जो विश्व में सबसे अधिक कपास पैदा करता है। यहाँ की कपास सन्ने रेपे वाली मुसामम होती है। कपास के प्रतिरिक्त मक्का जाबस फल की भी अच्छी होती होती है। विश्व के प्रतिवर्ष छोमा निकलने के मुख्य के बराबर कपास यहाँ से यूरोप भेजी जाती है। फ्लोरिडा में कपास पैदा नहीं होती वह स्थान फल और फूल के लिये प्रसिद्ध है। मियामी यहाँ की राजधानी तथा प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

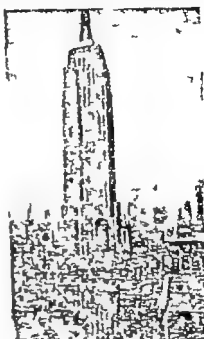
संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ऐनेलेसियन नामक एक प्रदेश है, जिसमें ऐनेलेसियन नामक एक पठार है, तथा एक पहाड़ी श्रृंखला है। यहाँ की सटीम भूमि अधिक उपजाऊ है। जिसमें जेठी तथा मोरस का कार्य अधिक होता है। यहाँ कारखाने अधिक हैं क्योंकि यहाँ कोयला लोहा लैस मिट्टी का तेल प्रस-विद्युत अधिक है। कागज बनाने के लिये पहाड़ी लकड़ी है तथा ऊन के कारखानों के लिये भेड़ें पाली जाती हैं। हड्डन की लाड़ी से व्यापार होता है। इसके मुहाने पर न्यूयार्क नामक बड़ा शहर है, जो अमरीका में सबसे बड़ा शहर है। यह एक शक्तिशाली बन्दरगाह है। यहाँ का समुद्री तट बड़ा हुआ तथा महत्त्व है, जिससे यहाँ जहाज सरलता से एक सबसे हैं। यहाँ गस्पेस्टोन नामक गर्म धारा बहती है, जिससे समुद्र जमता नहीं है। इसलिये वह संयुक्त राज्य की व्यापारिक राजधानी है। इस राज्य का प्राचा व्यापार यहाँ से होता है। मांस, पशु चर्बी आटा, मिट्टी का तेल, मशीनरी, मोटर गाड़ियाँ यहाँ से भेजी जाती

है। यहाँ की इमारतें मयनपुष्पी होती हैं। यहाँ सूती और ऊनी कपड़ा बनकर कामज पेट्रोसियम भावि के घनेक कारखाने हैं। मगमग रहे हजार जहाज यहाँ सामान का भायात तथा निर्यात करने आते हैं।

कैसाबेर नामक नदी पर फर्नैंसिस्का नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह शहर बहुत बड़ा है। यहाँ रेश के इन्जिन बनाने जहाज ऊनी कपड़े काबीन बनकर के बड़े बड़े कारखाने हैं। कमड़े का काम तथा रेश साफ करने का काम भी किया जाता है।

संयुक्त अमरीका में बाथियटन नामक शहर पोटो-मैट नामक नदी पर बसा हुआ है। यह शहर यहाँ की राजधानी है। यहाँ का बिटसवर्स नामक शहर सोहे के काम के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

संयुक्त राज्य के ऊपर पूर्वी भाग में म्यूहर्गलैण्ड नाम की रियासत है। यहाँ सबसे पहले यूरोप के निवासी आकर बसे थे। यहाँ की जनबाहु कपास के लिए बहुत अच्छी है, इसलिए यहाँ कपास अधिक पैदा होती है। कपास की अधिक पैदावार होने के कारण इसे 'अमरीका का बंकाशायर' भी कहते हैं। कपास के अतिरिक्त सोहे का सामान ऊनी कपड़े जैसे रेश तथा कागज बनाने के कारखाने हैं। संयुक्त राज्य का ये सूती भाष यही पैदा होता है। मैन्चेस्टर तथा फ्रान्सिस्कर यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। अमेरिका में कोस्टन नगर ऊनी भास के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ से ऊनी सामान सूती कपड़ा चामू छुदे तथा अन्य सोहे का सामान कमड़े का सामान मछली भागज भावि बिंदियों को भेजा जाता है। संयुक्त राज्य का भाषा कागज यहाँ तैयार किया जाता है। यहाँ पहाड़ सीसें, भरने अधिक हैं।



चित्र २ — म्यूपाई की इमारतें

संयुक्त राज्य अमेरिका के शीघ्र निम्नलिखित कार्य अधिक करते हैं—

यहाँ के अधिकांश शीघ्र खास कोबने का कार्य अधिक करते हैं जिससे लगभग २० अरब रुपये की आमदानी होती है। यहाँ कोयला मिट्टी का तेज अधिक होता है। पिट्सबर्ग के निकट तो कोयला बहुत मिलता है। मिट्टी का तेज ओहियो मैसीफोनिया में अधिक निकसता है। इसके अतिरिक्त मोहो गैस ताँबा सोना चाँदी सीसा जस्ता धातुमिश्रण, पन्थक आदि अधिक निकलते हैं।

लकड़ो काटने का कार्य संयुक्त अमेरिका में बहुत होता है। यहाँ कमलस, फर पीसा देवदार आदि के वृक्ष बहुत होते हैं। गुआ और कायज बनाने का काम रफुस नामक लकड़ी के कुरारे से किया जाता है। जो म्यूयार्क के निकट पायी जाती है। लकड़ो की बार्निश तारकोल आदि बनाने के लिये जॉर्जियर बहुत प्रसिद्ध है। विश्व की सबसे बड़ी मशीन यही है।

मिडीसिपी नदी की बाटी पैदावार के लिये अधिक प्रसिद्ध है। अनेक म्यूयार्क में लगभग २ लाख जानवर प्रतिवर्ष काटे जाते हैं।

संयुक्तराज्य में जयड़ा तो बहुत ही होता है। यहाँ के डीट्रोइट नामक शहर में मोटरकार बनाने का बड़ा कारखाना है। जिसमें लगभग १ लाख आदमी कार्य करते हैं, तथा प्रतिवर्ष ४० लाख मोटरें तैयार होती हैं। यहाँ की फोर्ड कम्पनी विश्वविख्यात है। म्यूयार्क तथा वास्तीमोर में पछाब बनते हैं। वहाँ हालीवुड में सिनेमा फ़िल्म सबसे अधिक तैयार होती हैं। इन सबके अतिरिक्त, मछली मारने का काम सूती कपड़े का काम रेसमी कपड़े का काम, रबड़ का काम तथा लोहे का काम अमेरिका में अधिक होता है।

मनिसको—यहाँ पर बहुत कम शीघ्र रहते हैं। यह एक पहाड़ी भाग है यह अधिक उपजाऊ नहीं है। वहाँ का ज़िम्बारा भी बड़ा फ़ला नहीं है तथा एक प्रमुख बन्दरगाह भी नहीं है। यहाँ मातायात के साधन ठीक नहीं हैं तथा यहाँ के शीघ्र सुस्त हैं। यह स्वान चाँदी के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है। लक्ष्य १२ करोड़ रुपये की चाँदी प्रतिवर्ष निकलती जाती है। इसके अतिरिक्त सोना सोहर गन्धक ताँबा पाच सीसा टीन, प्लैटीनम, जस्ता पुष्कराज तथा मिट्टी का तेज आदि खनिज पदार्थ भी निकलते हैं। यहाँ की राजधानी मॉन्सिको है।

मध्य अमेरिका—मैक्सिको के नीचे के भाग में मध्य अमेरिका है। यह पनामा नहर तक गया है। यहाँ बर्बा अण्डी होती है। यहाँ पर बने जंगल हैं। यहाँ रबर, कैसे मक्का, कोको पेड़ आदि पैदा होते हैं। इसके नीचे पनामा नहर है। यह नहर ५० मील लम्बी ४० फीट गहरी तथा ५०० फीट चौड़ी है। इस नहर के बन जाने से व्यापार में बहुत सुविधा हुई है।

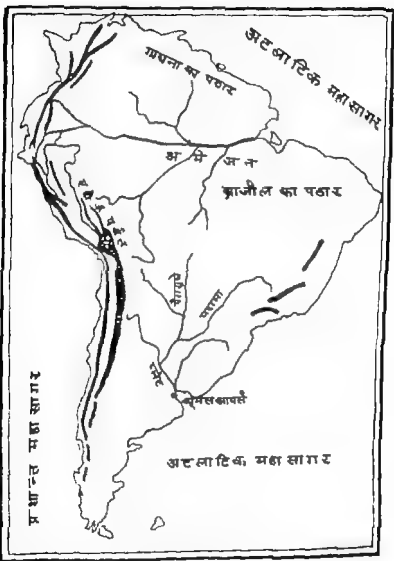
इसके पश्चिम की ओर बहुत से द्वीप हैं। ये सब छोटे बड़े मिलकर १ हजार के लगभग हैं। यहाँ बर्बा अधिक होती है। यहाँ मयानक धानियाँ पाली हैं। मूलास भी पाते हैं। यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ है। यहाँ चाय, कुछ माहोगनी लीगवुड अन्धक आदि के जंगल हैं। क्यूबा नामक टापू में बेटी अण्डी होती है। यहाँ गन्ना तथा तम्बाकू अधिक पैदा होते हैं। इसके किनारे की ओर गारियल केला आदि पैदा होते हैं। हैरी नामक टापू की लकड़ा अण्डी है। यहाँ कहुवा कपास तम्बाकू काको और सफ़ी आदि होती हैं। यहाँ एक बड़ा टापू अमायका कहलाता है, जिसमें कासी नदी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ की लकड़ा अण्डी है। यहाँ गारियल केला नारंगी नींबू, मसालास धरारोट भिजर, मन्ना कोको तम्बाकू कहुवा लकड़ी आदि अधिक पैदा होते हैं। और भी बहुत से टापू हैं।

अमेरिका विश्व का बहुत बड़ी देश है। यह देश खनिज पदार्थ तथा पैदावार के लिये बहुत बड़ा-बड़ा है।

दक्षिणी अमेरिका—इसकी खजाना भी उत्तरी अमेरिका जैसी है। यहाँ की भूमि, पहाड़ नदी सभी उत्तरी अमेरिका से मिले हैं। यहाँ का समुद्री तट भी अधिक बड़ा-बड़ा नहीं है। इसीलिये अण्डी बन्दरगाह कम हैं। यहाँ सूखे नामक एक बड़े जलजमा है, जो बहुत ऊँची है। केवल आसपास नामक बर्रा ऐसा है, यहाँ रैन बनाई जा सकती है। इस पहाड़ की अधिकतर कोठियाँ क्वालामुली के मुँह के समान हैं। यहाँ पूर्व की ओर बहुत से पठार हैं। इनमें गायना और ब्राजील का पठार अधिक प्रसिद्ध है। यह पठार पुराने तैलीय पत्थर तथा बसकदार चट्टानों का बना है। यह पठार पहिले बहुत ऊँचा था किन्तु पानी हवा से बिस-बिस कर बहुत नीचा हो पाया है। अब यह इतना नीचा हो गया है कि नदियों ने पाटिया बना ली हैं। इस पठार के नीचे पराना नामक नदी बहती है।

दक्षिणी अमेरिका के मध्य में पास के बड़े-बड़े मैदान हैं। जो उपजाऊ हैं। इस मैदान में ऊपर की तरफ़ घोरिनीको नामक नदी बहती है। यहाँ कुछ कम

है। यहाँ मनुष्य नहीं रहते है इसलिये व्यापार के काम भी नहीं है। जैसे इससे दूर-दूर तक नौवें बम चढ़ाये है। इसके नीचे मिट्टी का बहुत बड़ा भंडार है।



चित्र १४

इस भंडार में बमबेन नदी बहती है जो कि १२०० मील लम्बी है। यह चित्र

की सबसे बड़ी नदी है। यह कहीं गहरी तथा वहीं अल्पिक चौड़ी है। अम्यमन नदी ऐसे स्थान में बहती है जहाँ पूरा मन समीप पड़ती है तथा पानी भी अल्पिक बरसता है। इसी कारण से पूरा अम्यमन मन समीप में आच्छादित है। इसमें इमारती लकड़ी तथा रबड़ पैदा होती है। यह अम्यमन नदी पानी के बहने के कारण लकड़ों के बहने के काम आती है। नारें या १०० मीन नदी को मन सकती है। परन्तु यह व्यापारिक दृष्टि से विनीमित्री नहीं है अल्पिक नहीं है। इसके चारों ओर मनो जलसम्पत्ता भी नहीं है। बहुत अल्पिक मनो अल्पिक मनो मनो अल्पिक मनो रबड़ की उपज होने से इन मनो की लकड़ा अल्पिक मनो मनो से भी आ सकती है। इन मैदान के बीच की घाट पानी के बहने के कारण है। इन मैदानों में वैरीना परिवर्तन आयाता नहीं बहता है। यही यह अल्पिक पैदा होता है। इसके नीचे एक गहरी तथा उपजाऊ मैदान है।

एण्डीज में कई गहरी नदियाँ हैं तथा नदियों की पानियाँ भी हैं। इन नदियों में सेती होती है, तथा गहरी पर अल्पिक है। यहाँ लगभग ८०' बर्षा होती है। एण्डीज के बीच के भाग में अल्पिक तथा मन के बरसात है। ये नदियाँ के निचे अल्पिक अल्पिक हैं। एण्डीज के नीचे के भाग में केला कोको रबड़ अल्पिक के पेड़ हैं। उसके ऊपर कई छोटे बड़े भाग हैं।

बीच के भाग में मन के मैदान हैं, जिनमें कहीं कहीं पेड़ भी पाये जाते हैं। यहाँ पानी तथा कोको पैदा होते हैं। यहाँ का मुख्य कार्य पानी करना तथा पशु पालना है। अम्यमन के मैदान में बहुत अल्पिक मनो तथा बर्षा होती है। इसीलिए यहाँ मनो अल्पिक है, जिनमें नाना प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। बाजींग लट माने वृक्ष बहुत अल्पिक होते हैं। जिनमें १०० फीट तक तो नदियाँ ही नहीं निकलती। यहाँ रबड़ इकट्ठा करने का काम किया जाता है। बीच आधुनिक तथा इमारती अल्पिक के पेड़ भी मिलते हैं। बीच-बीच में पैदलों के चलने से अल्पिक इतना बहा हो गया है कि सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर नहीं पड़ पाती है। अम्यमन मनो के नीचे पन्ना मन का प्रवेश है। जिनमें मन के मैदान बहुत अल्पिक है। यहाँ के राता की जीवन मनो मन पर ही आधारित है। पुरानी मन के मन जाने से यह पूरा भाग काजा हो जाता है। अब अल्पिक निकलते हैं सब चारों ओर हरियाली दिखाई देती है। अब पूरे की ओर पैदलों की राती की मनो है। यहाँ चारों ओर मन के ऊपर मन तथा मन मन मन दिशाई पड़ते हैं। यहाँ एक आधुनिक पर अल्पिक २ पशु तथा १ पैदल होती है। पशु मनो मनो मनो को यहाँ आको कहते हैं। यहाँ के मनो का अल्पिक मन अल्पिक

प्याको लोग पशु चराने के बचने मोंस ही भेते हैं। इस मोंस को य मोंस या दो बर्फ को ठहों में रखते हैं अपना सुखाकर बिज्जों में भरकर बिदेसों को भेजते हैं। मोंस का सत निकालकर भी बाहर बेजा जाता है। किसी किसी कारखाने में तो प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख पशु काटे जाते हैं। इन लोगों क घर बड़े बड़े सेतों में होते हैं, उनके चारों ओर कुआं और नाला होते हैं। यहाँ कोई प्रबिक होते हैं। प्रत्येक कार्य जोई पर बहकर किया जाता है।

पम्पा प्रदेश के नीचे की ओर पैटेगोनिया नामक रेगिस्तान है। इसमें कंज पत्थर तथा रेत अधिक है। इसके ऊपरी भाग में सेतों को चराने के सिधे कुछ घास उग जाती है। ऊन और मोंस यहाँ से बाहर बेजा जाता है। चाबीस के पठार में घास के मैदान हैं।

महाँ के जंगलों में प्युमा तापिर जम्बार ऐम्बईबर तथा कम्बर आदि प्रबिक मिलते हैं। ऐम्बईबर भीटी खाता है। स्लास नामक जानवर हमेशा पेड़ पर ही सटका रहता है। यहाँ बोबा नामक एक मयामक तथा बड़ा घोंप पाया जाता है। तापिर नामक जानवर हाथी की भाँति का होता है। एम्बोज़ पर्वत पर सामा नामक जानवर मिलता है। जो ऊनी बाघों जैसा रंग के समान होता है। बोम्ब डोने के अतिरिक्त लामा से ऊन डूम तथा चरबी भी निबटी है। विहूना और आज़ू भी यहाँ अधिक पाये जाते हैं जो ऊँट की तरह का होता है। महाँ के ऊँचे चारों में चिचिसा नामक खिरल पया जाता है। पैटयो-मियों में टीस नामक जानवर पाया जाता है, जो कुनू-गुर्र की भाँति का होता है। इनके अतिरिक्त यहाँ पालगू जानवर भी पाए जाते हैं, जिनमें बड़े पाय रंग भेड़ बकरी अधिक पाये जाते हैं।

महाँ इन्का नामक जाति के लोग रहते हैं। यहाँ कुछ स्लेम तथा पुर्वनाम के लोग भी पाए गए हैं। अमेजन नदी के निकट कुछ जंगली बाघभी भी रहते हैं। अब यहाँ अंग्रेज फ्रान्सीसी इटली निवासी तथा अब भी पाए गए हैं। गामना नामक रियासत में तो हिन्दुस्तानी भी पहुँच गए हैं। किसी क बीच, लाप्लाटा के निकट तथा चाबीस के पूर्व में अधिक जनसंख्या बसी हुई है। इसी प्रकार अमेजन नदी के पास भाटाकामा नामक रेगिस्तान में तथा पोटे गोनिया में बहुत कम लोग रहते हैं? जिनका बीचछ मील को आदमी भी नहीं पकता है।

ब्रेजीलिया—यह एक छोटा सा राज्य है। इसे छोटा बेनिज भी कहते हैं। इसके पश्चिम में ऊँचाई पर पये जंगल हैं जिनमें शिफोना, सर्तापारिज, रजड़

कहवा धारि के कुछ अधिक मिलते हैं। बीच का भाग मैदानी है, जिसमें गन्ना मक्का उम्माऊ कहवा, कोको धारि पैदा होते हैं। कैकायो की पैदावार विरध में सबसे अधिक धर्ती होती है। इसके पूर्वी भाग में पठार है, जिसमें केसा धनन्नास तारियम धारि के फल किनारे की धोर होते हैं। यहाँ सोना, कोयला संयमरमर तथा मोती भी निकलते हैं।

कोलम्बिया—यह भी एक छोटा-सा राज्य है। इसके नीचे के भागों में धर्मी पड़ती है तथा जलवायु ठीक नहीं है। इसके पठारी भाग की जलवायु धन्नी है। यहाँ कहवा उम्माऊ गेहूँ धारि पैदा होते हैं। सोना चाँदी ताँबा कोयला, फासफास्ट मोलम धादि यहाँ के मुख्य वनिज हैं।

ईक्वेडर—ईक्वेडर एक छोटा-सा राज्य है। यहाँ पर ज्वालामुखी पर्वत अधिक हैं। कोटापैम्बी यहाँ का बहुत बड़ा ज्वालामुखी है। यहाँ रबड़ सिनकोना, कैकायो अधिक पैदा होते हैं। कैकायो यहाँ से फाम्स स्पेन भेजा जाता है। यहाँ पाकनेट अधिक बनते हैं। सिनकोना की छाल सारसापरीसा रबड़ कहवा, कास शक्कर धारि बाहर भेजे जाते हैं। कीटो यहाँ की राजधानी है। यहाँ विश्व में सबसे अधिक पाकनेट तथा कोको रबदार होता है।

पीक—यह यहाँ का एक छोटा-सा राज्य है। इसके पूर्व की धोर धने जंगल हैं। बीच में पहाड़ी भाग है, जो प्युना नामक पठार कहलाते हैं। इनमें एक टीटीकाका ज्वाल है। पठारों में चाँदी ताँबा सोना कोयला धारि पाया जाता है। टीटीकाका के किनारे पूनो की चाँदी की खानें तो विरध में विस्मात हैं। चाटियों में ईस कपास मक्का धन्नाका गँदूर, बीतून बहुत होता है। यहाँ सामा तथा विकुना नामक जलधर पाये जाते हैं। जिनकी ऊन तथा मांस बहुमुख्य होता है। यहाँ मिट्टी का तेल तथा धोरा भी पाया जाता है। पूर्व की धोर कहवा कैकायो कोका अधिक पैदा होता है। कोका की पत्तियों से कोकीन बनाई जाती है।

बीलीविया—यह एक छोटा-सा राज्य है। इस राज्य की सीमा का समुद्र से कहीं स्पर्श नहीं होता। यहाँ के पठारी भाग की जलवायु ठन्नी तथा स्वास्थ्यप्रद है। चाटियों में मक्का गेहूँ, जौ की खेती होती है। यहाँ सिनकोना की छाल तथा रबड़ मिलती है। बिचिसा नामक हिरण से गमवा मिलता है। पूर्वी भागों की धोर सोना तथा बूसरी धोर चाँदी ताँबा धारि निकलता है। यहाँ विश्व की टिन की पैदावार का ३ भाग पैदा होता है। पोतोसी की चाँदी की खानें तो विश्व-विस्मात हैं। मुशाय, एस्टीमती, विस्मय

जारी सोना टिन ताँबा खड़ कोका सिनकोमा की खान बिचिमा की ऊन का निर्यात होता है।

चिली—दक्षिणी अमेरिका के बनी और अण्डे देशों में चिली का नाम प्रथम है। उचित जलवायु उपज तथा बनी होने की दृष्टि से इसे दक्षिणी अमेरिका का 'हयसीन्ध' भी कह सकते हैं। चिली का ऊपरी भाग रेगिस्तानी है, जिसमें पानी घटी हवायें खासी निकल जाती है। यहाँ शोरे की खानें हैं जो खाद के काम आता है। शोरा का निर्यात विदेशों को किया जाता है। शोरे के अतिरिक्त ताँबा सुहागा जारी भी मिलती है।

चिली का मध्य भाग बहुत उपजाऊ तथा बनी है। यहाँ की जलवायु अण्डे है। यहाँ मृण्मयवागीय जलवायु है। गेहूँ, जी अँधूर अँतून धान, नासपाती की पैदावार अधिक होती है। यहाँ अँधूरों से अचक बनाई जाता है। अँतों पर अँडे अचक जाती हैं, जिसकी ऊन जमा हुआ मांस तथा जमड़ा यूरोप भेजा जाता है। यहाँ जारी, ताँबा कोबास्ट कोयला अधिक मिलता है। सेंटियागो यहाँ का प्रसिद्ध शहर तथा राजधानी है। इसके चारों ओर गेहूँ तथा अँधूर अधिक पैदा होते हैं।

चिली का नीचे का भाग अधिक उपजाऊ नहीं है। इसका समुद्री किनारा भी कटा-फटा नहीं है। यहाँ वर्षा बहुत होती है, जिसके कारण घने जंगल हैं। यहाँ के लोगों का काम लकड़ी काटना मछली पालि मारना है। इसके नीचे पन्टाप्रीनाम नामक शहर है। यह विश्व का सबसे नीचा शहर है। यहाँ से ऊन जमड़ा अभी कोम्पू की खास जमड़ा अथि विदेशों को निर्यात किया जाता है। यहाँ सोन और लून नामक विद्यासकाय मछली पानी आती हैं, जिसका सिकार किया जाता है।

अर्जेन्टाइना—यह दूसरे नम्बर का बड़ा राज्य है। इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है। पहला हिस्सा यह भाग पर्वतों से ढका है तथा सिकार खेलने के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पशुधर्म को अराने के लिये अण्डे पास के मैदान हैं। इधर अंधर लेटी भी की आने लगी है। दूसरा हिस्सा एन्डीज पर्वत के नीचे का भाग जो कि पुरा देश सूखा है। जोड़ी बहुत वर्षा होने से खेती होती है। यहाँ जामकर अराने तथा खास जोरन का काम अधिक होता है। यहाँ मेम्बोबा नामक शहर में गेहूँ मक्का अचकर तथा अँधूर अधिक उपजते हैं। टुकुमान नामक शहर में अँडे और उम्बाऊ की खेती अधिक होती है। इसका तीसरा भाग पम्पा प्रदेश है। यह बहुत नीचा, औरत तथा उपजाऊ है।

यहाँ कम गर्मी तथा कम सर्दी पड़ती है। यहाँ येँ अधिक पैदा होता है। यहाँ तक कि यह यूरोप के लिये "भनाज का समिहान" कहलाता है। उत्तरी अमेरिका के प्रीरिय म जितनी पैदावार होती है उसकी ही इस प्रदेश में होती है। यह विस्तार भूमि की बनावट तथा वर्षा में प्रीरिय के समान है। येँ के प्रतिरिक्त यहाँ मक्का जई जी तिलहन तम्बाकू अधिक पैदा होते हैं। इसी क्षेत्र का प्रसिद्ध शहर म्युनिस्घायर्स है जो दक्षिणी अमेरिका में सबसे बड़ा है। यही अर्जेंटाइना की राजधानी है। यह लाप्लाटा नदी के तट पर स्थित है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ पायायात के वाहन पन्ध्रे हैं। यहाँ से येँ, ऊप मक्का अलसी आल मीस चरबी आदि बाहर बेजी जाती है। अर्जेंटाइना का चौथा भाग पटैगोनिया का पठार है। यह बिस्कुस सूका पठार है। यहाँ से सबसे अधिक पानी जाती है। यहाँ के एक प्रायमी पर औसतन ४० सेँ है। यहाँ बिकूना तथा ग्वाको नामक जानवर पाये जाते हैं।

परेग्वा—यह ऊपर की ओर छोटा-सा राज्य है। सारा राज्य जंगलों से घाच्छादित है। इसमें कहीं-कहीं चाय के मैदान हैं, जिनमें सेती भी होती है। रबड़ लकड़ी ईक कड़वा मक्का यहाँ पैदा होती है। यहाँ चाय अधिक पैदा होती है। पूरे अमेरिका की चाय यही पैदा होती है। चाय के प्रतिरिक्त नारंगी आल सूका मीस, मीस का सत तम्बाकू आदि का निर्यात होता है। एर्सेन नामक शहर यहाँ की राजधानी है। बिलारिका नामक शहर तम्बाकू के लिये प्रसिद्ध है।

बुरुये—यम्मा प्रदेश और मयुड के बीच म बुरुय नामक राज्य है। जो बहुत ऊँच-आँकड़ की ओर जंगलों में घाच्छादित है। यहाँ की जनजातें बहुत घच्छी हैं। शहर मक्का यहाँ तम्बाकू यहाँ का मुख्य पैदावार है। यहाँ के चाय के बेशाय बहुत प्रसिद्ध हैं। इन मैदानों में अर्जेंटाइना से अधिक पशु पाये जाते हैं। यहाँ का मीस और चमड़ा अच्छा होता है। पामबरा की पालना उन्हें मारना मीस का सत निकालना तथा उन्हें बाहर भेजना आदि यहाँ के मुख्य काम हैं। मयमग १५ करोड़ रुपये का मीस मीस का सत चमड़ा आल आदि निर्यातों को भेजा जाता है। मांटीबिडियो यहाँ का मुख्य शहर तथा राजधानी है। यहाँ खैरुओं कसार्खाने तथा मीस के कारखाने हैं। वेमगू और डैबैन्टीम यहाँ के मुख्य शहर हैं। ये मीस का सत निर्यात के लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँ से मीस डिब्बों में बन्द कर बाहर भेजा जाता है।

ब्राजील—यह दक्षिणी अमेरिका का सबसे बड़ा राज्य है। जो प्राये दक्षिणी अमेरिका को घेरे हुए है। उत्तर की ओर वहाँ बास के मैदान तथा पेड़ हैं। नीचे के पठार में जंगल हैं। यहाँ कच्चा अभ्रक होता है। धातु पर बास के मैदान हैं तथा जंगल हैं। यह अपनी पैदावार के लिये विश्व विख्यात है। यहाँ मक्का, चावल, ईन्ड, तम्बाकू, कपास, कच्चा आदि पैदा होते हैं। यहाँ के जंगलों में रबर के कुछ अधिक हैं। इसके अतिरिक्त साबुना, सिनकोना फल तथा जड़ी बूटियों के पेड़ पाये जाते हैं। खानों से हीरा सोना पारा तथा मोहा आदि मिलता है। यहाँ लगभग ८० लाख रुपये का सोना प्रतिवर्ष निकाला जाता है। मैंगनीज तथा मीनेराइट आदि भी निकलता है, जो कि बिजुत के कारखानों में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त जल शक्ति से भी बहुत काम आता है। यहाँ का प्रसिद्ध सहर है। यह बहुत बड़ा प्राकृतिक बन्दरगाह है। यहाँ का बन्दरगाह १२ मील चौड़ा है। यहाँ से कच्चा काको सोना हीरे कपास आदि बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ कपास बूट और रेशम तम्बाकू आदि के कारखाने हैं। इसके उत्तर में बाहिया नामक बहुत बड़ा बन्दरगाह है। यह ब्राजील का दूसरे नम्बर का सहर है। यहाँ कपास और तम्बाकू के कारखाने हैं। हीरे, जल तम्बाकू कपास सोना आदि का निर्यात किया जाता है।

आस्ट्रेलिया—यह विश्व का सबसे छोटा महाद्वीप है। यह चारों ओर पानी से घिरा हुआ है। पानी से घिरे हुए द्वीपों में यह सबसे बड़ा है। टैरस नामक स्पेस के यात्री ने इसकी खोज की थी। आस्ट्रेलिया को अब भी उसके नाम पर 'टैरिस स्टेट' कहते हैं। आस्ट्रेलिया की खोज का श्रेय कुछ नामक यात्री को मिला। इसका समुद्री किनारा कटाकटा नहीं है। यहाँ की भूमि खीरस है। यहाँ की नदियाँ में पानी नहीं रहता है। पूरा महाद्वीप जंगल से घिरा हुआ है। जंगलों के किनारे में तो जिनकुन ही मूल जाता है। यहाँ पर और जलियाँ तो बड़ी नदियाँ हैं। यहाँ के अधिकतर लोग नीचे के भाग में पूर्वी किनारे पर रहते हैं। पश्चिमी भाग तो पठारी और रेगिस्तानी है। यहाँ आबादी भी कम है।

ऊपर की ओर बहुत वर्षा होती है, इसीलिये यहाँ बहुत बने जंगल हैं। जिनमें सबैब हरे-भरे रहने वाले वृक्ष जैसे युकेलिप्टस आदि पाये जाते हैं। पश्चिमी भाग में जहाँ जंगल नहीं होते हैं। यह लकड़ी बहुत कीमती होती है। यह लकड़ी, चाट, पुतला नाम तथा रेलगाड़ी आदि बनाने के काम आती है। यह लकड़ी बहुत सस्ता तथा निकाल होती है। इस लकड़ी का

कोमला भी अच्छा बनता है। यहाँ गोंद तथा पिगरमेन्ट आदि के पेड़ पाये जाते हैं। जिनकी लकड़ी बहुत सस्त तथा टिकाऊ होती है। इनमें से सग घीर लेस मिकामा जाता है। यहाँ एक करी नामक पेड़ बड़ा डीम डीम वाला, बिजना सघेर तथा मजबूत घीर बिना टहनियों का होता है। इसकी लकड़ी बड़ काम की होती है। ऊपरी किनारे तथा रेगिस्तान के बीच पाग के मीदान पाये जाते हैं। रेगिस्तान में कटिहार झाड़ियाँ मममा वाली राम बोन, रिपनी पेनस घीर छोटी छोटी झाड़ियाँ जो बनीची तथा ममन होती है पायी जाती है।

नीचे के भाग में घोव चहलूठ पंगूर जैतून के पेड़ हैं। घाय चमनो के लिए भी यह भाग बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ मेंढू जो मक्का तम्बाकू आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ के बिन्गेरिया में मेंढू तथा धतूर सबसे अधिक पैदा होते हैं। टस्मानिया में न अधिक गर्म पड़ती है न अधिक सर्द। यहाँ खानपाई नामक बेबहार की लकड़ी मिताओ है। इन लकड़ों से जहाज बनाये जाते हैं। यहाँ के पेड़ों की बड़ें गहरी तथा उनकी पत्तियाँ चमड़े की भाँति मोटी होती हैं, जिन पर रूप तथा पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिये यूकेलिटस नामक पेड़ की लकड़ी जहाज बनाने तथा जहाजा के पतिरिक्त रेलों के सिनोपर बनाने के काम आती है। यहाँ के पेड़ों में घाय पेड़ों की छोसा लेस की माना अधिक होती है। इस लकड़ी को शीमक नहीं समझी। यहाँ जरा तथा करी नामक पेड़ अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ बलभी घीर कंवाल नामक जानवर पाये जाते हैं। इनके पैर में बनी होती है। जिसमें प्रायः समय ये घाय बच्चों को बिठा सते हैं। कबाक के घाय के पैर छोटे तथा पीछे के पैर बड़ घीर मजबूत होते हैं जिससे यह छमाय मार सकता है। यहाँ नामा प्रकार के पशु-पक्षी पाये जाते हैं, जैसे कोटीपस नामक जानवर के जालीदार पंख होते हैं। इनके पागों में बँसी होती है। कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो घण्टे बने हैं और बच्चों को घूस पिसाने आदि। इनकी घास बहुत कीमती होती है। यहाँ दिवो नामक सूँडवार जानवर पाया जाता है, जो मेड़िया तथा नुसे जैसा होता है। यहाँ की कुछ बिड़ियाएँ पंख रखती हैं पक्षु टङ्ग नहीं सकते जिनसे जैसा होता है। यहाँ की कुछ लकड़ों के पंख छोटे होते हैं जिन्हु बड़े कीमती होते हैं यहाँ ऐसी भी बिड़ियाएँ पाई जाती हैं। जिनके पंख छोटे हुए भी उड़ नहीं सकती तथा ऐसी भी

होती है जो बिना पंखों के उड़ सकती है जैसे धोपोगम या उड़ने वाली सोमड़ी। कुछ पक्षियों की पूंछ सितार की तरह होती है जिसमें लम्बे-लम्बे और कीमती पंख होते हैं जैसे सायर चिड़िया। यहाँ दो-बो मज सम्बी छिप कमियाँ तथा बड़े-बड़े साँप पाये जाते हैं। यहाँ घनेका प्रकार की मछलियाँ पायी जाती हैं, जिनमें किसी के मसफड़ा नहीं होता और फेफड़े होने हैं। कुछ तीरंती नहीं कुछ मूखी हैं। कुछ पानी में रहती हैं परन्तु घास खाती हैं।

यहाँ के पासतू जानवर बहुत प्रसिद्ध हैं। सबसे पहले जब अंग्रेज लोग यहाँ बसने को आये थे तो २६ मेहें और १३ घाय-बीस तथा ११ घोड़े अपने साथ लाये थे। इसके चार साल बाद १०५ मेहें हो गये। अब यहाँ समय १५ करोड़ से भी अधिक मेहें हो गई हैं। यहाँ की भेड़ों की लम्ब बहुत अच्छी है। ये हूट-गूट होती हैं।

भेड़ों की ऊल के लिए यह देश बहुत प्रसिद्ध है। भेड़ों के अतिरिक्त यहाँ घाँव भी पाली जाती हैं। जिनकी लम्ब बहुत अच्छी होती है। यहाँ की घाँवों को पालने में खर्च कम होता है, तथा वे दूध अधिक देती हैं। यहाँ की एक गाय दो आबमियों का पालन कर सकती है। ये इतना दूध देती हैं कि उनका दूध मछीनों द्वारा निकाला जाता है। दूध से मक्खन तथा पनीर भी तैयार किया जाता है।

यहाँ अंग्रेज लोग अधिक रहते हैं। यहाँ के वास्तविक रहने वाले बहुत कम हैं। ये लोग लम्बे और मठील होते हैं। उसका बाल घुंघराते तथा काले रंग के होते हैं। इनके दाँत सुन्दर नाक चौड़ी आँखें बमबोली तथा पालों की हड्डियाँ लठी हुई होती हैं। ये लोग सिकार से ही अपना पेट भरते हैं। साँप छिपकली कुबरीजे जूड़े और भी बूंदरे जानवरों को वे हाँतों से खाते हैं। ये अपने बूँदवार हाते हैं कि घाबसी को भार कर खा जाते हैं। ये लोग कपड़े कम पहिनते हैं तथा शरीर में बबबुवार मछली का तेल मल मीते हैं। ये लोग सिकार खान तथा मछली मारने में बड़े चतुर होते हैं। इनका पास एक ऐसा हथियार होता है जो सिकार में मारने के बाद फिर वापिस आ जाता है। इसे बुगिरेंग कहते हैं। वे लोग अंग्रेजों को देखा मानकर, इनका बड़ा आदर करते हैं। अब इनके बंध बहुत कम पाए जाते हैं।

स्ट्रेमिया की जनगणना कम है। पूर्वोक्त तथा मिटोरिया की घाबसी

तो घनी है क्योंकि यहाँ की जलवायु घाने-जाने के मायन तथा मूमि प्रचली है। यहाँ मनित्र पदार्थ अधिक निबन्धन है। यहाँ सबसे पहिले सोने का पता बाबरस्ट के निबट हागीव मायन व्यक्ति को मया। हमने बाब बटन भी माना का पता बस गया। इन खाना में समय १२ घरब रुपये का मोता निबन्धन पुरा है। बाँदी घोर भीमा पाम-पास पाये जाते हैं। म्युमाउबनेस्म में जोवन हिम तो बिद्व की बड़ी गाना में से है। यही जम्मा भी निबन्धन है। उनके प्रतिरिक्त टीना टीन मोहा कोयला भी बहन पाया जाता है।

जेती की पहावार में गर्ह मुख्य है। म्युमाउबनेस्म का पूर्वो बिनाग तथा बिन्गोरिया में इसकी अच्छी पैदा होती है। यहाँ बर्षा यहाँ के तिन टीक हाती है। यहाँ की धावाही बहुत कम होने के कारण यहाँ का गर्ह भाग्य तथा अन्य देशों को भेज दिया जाता है। यहाँ के प्रतिरिक्त जी कई भी बिन्गोरिया में पैदा होता है।

घास्ट्रेलिया में फल भी अधिक हुआ है। बिन्गोरिया तथा तस्मानिया में तो फल बहुत अधिक होते हैं। लगभग १५ करोड़ रुपये के सेव प्रतिबर्ष बिदेसों को भेजे जाते हैं। सेव के प्रतिरिक्त नासपाता पीच घणूर नारंगी चिसमिघ आदि अधिक पैदा होते हैं। कबोम्पसीड में से से अधिक होते हैं।

जानवर पालन का काम यहाँ अधिक होता है। बिद्व की ऊन का २ नाम होता है। यहाँ की भेड़ों की ऊन मुसापम कमकीमी, तथा रेघम बीसी होती है। घास्ट्रेलिया में भेड़ों को चराने वाले लोग घोर लोगों में अधिक घनी होते हैं। ये सोप स्क्वेटर बहलाने हैं। इनका जीवन बड़ा निरामता हुता है। पनवान स्क्वेटर तो कई कई हजार भेड़ों के स्वामी होत हैं। इनके बाव के मैदान बहुत सन्ने चौड तथा भीसों तक फैले हुए होते हैं। इनके बाडे लगभग ४० १ मीस की दूरी पर होते हैं। बीच में एक लकड़ी का एक मंजिस का मकान होता है। सब बिन्गोरिया आदि में बड़-बडे मकान बनत सवे हैं। मरानों में बिद्युत तथा टेलीफोन आदि भी प्रयोग होते हैं। इन मकानों के पास नाम सीखन वाले जवान धारमियों की खल की जगह होती है। इनका जीवन बहुत कठिनायों से भर होता है। य माय महलनी हात है। भूग वहीं तेस तारफोन के बीच में ये धरता जीवन व्यतीत करने हैं। इनका कार्य भेड़ा को पकड़ना उनका दमाज करना ऊन काटना दिन मय उनकी निगरानी रखना कमजोर भेड़ों को मका का कार्य तथा उन्हें एक दृष्टि में गिनना आदि इनके कार्य होते हैं। इन कामों में ये थक थकुर होते हैं। ये

सोम बोड़ पर चढ़ कर घेड़ों की देखरेख करते हैं। घेड़ों को ऊन बालने तथा उसे हफ्ता करने के लिए कुछ आरमी एंव बास के मैदान से घुसरे में घूमते रहते हैं। जो हर स्थान से बाहर के देशों के लिये ऊन एकत्रित करते हैं। इस पेघे में सबसे बड़ा मय बाड़ तथा पकास का होता है। कभी कभी तो बिना पानी के हवाचों भेड़ें मर जाती हैं। इस समस्या को हल करने के लिये बहुत स कुए खुदवाये गये हैं तथा बाँधों में पानी एकत्रित कर सिया जाता है जो साम मर तक काम लेता रहता है। ऊन के प्रतिरिक्त घेड़ों से चर्बी, माँस खास और उनके तूख से मक्खन पनीर बनाने का काम होता है।

घेड़ों के प्रतिरिक्त घम्व पशु भी पाले जाते हैं जिनमे माँस चमड़ा खास दूध मक्खन आदि मिलता है। पशुधर्म की दृष्टि से बिक्टोरिया और म्मुसाउचर्वैस्त बहुत प्रसिद्ध हैं। म्मुसाउचर्वैस्त से बोहे भी पाल जाते हैं जिनका बिबेधों को निर्यात किया जाता है। यहाँ सूअर भी पाले जाते हैं जिनका माँस बाहर भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया के चारों तरफ समुद्र होने के कारण मोटी निकासी जाते हैं। जैसे ऊमरी भाग में चार्क अन्तरीप के निचट चर्क खाड़ी में आदि। मछली मारने का काम टस्मानिया और आस्ट्रेलिया के बीच में केवस बाउस्ट्रेट में होता है। नदियों में भी यन्-यन् कुछ मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

आस्ट्रेलिया की रियासतें इन प्रकार बंटी हुई हैं—

आस्ट्रेलिया का पश्चिमी भाग बहुत बड़ा है किन्तु यहाँ बहुत कम मनुष्य रहते हैं, क्योंकि यहाँ का कुछ भाग रेगिस्तानी है तथा कुछ पठारी। ऊमरी भाग में बास पैदा होती है जिसमें भेड़ चराई जाती हैं। यहाँ से भेड़ का माँस तथा मछली का निर्यात होता है। यहाँ कोई प्रसिद्ध शहर नहीं है। इसके मध्य में रेगिस्तान फैला हुआ है। साल की दानों के प्रतिरिक्त यहाँ और कोई अच्छी वस्तु पैदा नहीं होती। यहाँ— और कालगुर्ली नामक दो प्रसिद्ध सोने की खानें हैं। इस सोने निकलने के कारण यहाँ शहर बन गये थे किन्तु अब कम काम निकलने के कारण बूसरी जगह जा रहे हैं। नीच के भाग में जर्ल और करी नामक पेड़ पाये जाते हैं। यहाँ कुछ फल भी होते हैं। तथा कामबर पालने के लिये अच्छी जगह है। नीच की धोर असबनी नामक बन्दरगाह है। यहाँ से फल मछली सोना गेहूँ आदि बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ का प्रसिद्ध शहर पर्थ है, जो यहाँ की राजधानी है। इसके निकट

गेहूँ पैदा करने वाले देश हैं। इस भाग में खेती अधिक होती है। यहाँ नामक शहर के चारों ओर इतना गेहूँ पैदा होता है कि उसका बिदेसों को निर्यात किया जाता है। यहाँ के क्षेत्र के ऊपर की आर चास के मंदान ह। यहाँ चास भर में समय १ वर्षा होती है। यहाँ कुछ मड़ बरार्ई जाती है जिसकी ऊन का बिदेसों को निर्यात होता है।

बसिली आस्ट्रेलिया में मरे नामक नया बहती है। इस नदी पर ६ बाँध बनाये गये हैं जो बाढ़ से बचाते हैं, तथा सिंचाई के प्रयोग में आते हैं। इस नदी के आस-पास मंगूर, मारपी आदि फल होते हैं। यहाँ महुँ की खेती अधिक होती है। इसके नीचे का भाग पठार है जिसमें बेमवार तथा लाल गोम के पेड़ मिलते हैं। मंगूर अधिक पैदा होने के कारण यहाँ मंगूरी घरान बनाई जाती है। बसिली आस्ट्रेलिया में रिफ्ट बाथ गेहूँ के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ की पैदावार के प्रतिरिक्त यहाँ मड़ भा बरार्ई जाती है। यहाँ का प्रसिद्ध शहर ऐडोलाइड है जो यहाँ की राजधानी है। इस शहर के आस पास ठानि को बानें है। यहाँ से ताँबा चाँदी गेहूँ फल मंगूरी घरान बाहर भेजी जाती है। पोर्टपारी यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है जिससे चाँदी सोना अस्ता गेहूँ ऊन बाहर मजे जाते है। बसिली आस्ट्रेलिया में भायर नामक भील है। जिसकी जमीन बहुत मोची है। इस भूमि का पानी बह कर भील में हो जाता है। यहाँ पर पातास ठोक कुए है। यहाँ मड़ अधिक बरार्ई जाती है। इसके पश्चिम में एक पठार है जो बिस्कुन सूखा रेगिस्तान है। यहाँ नदीसी आदिया के प्रतिरिक्त कुछ भी पैदा नहो होता। यहाँ पर प्रसिद्ध साह को मान है। बसिली आस्ट्रेलिया क ऊपरा भाग में वर्षा नही हुंती है। बिस्कुन सूखा रेगिस्तान है। जहाँ वहाँ कुछ चास हाती है, यहाँ पशु चराये जाते है। यहाँ का प्रसिद्ध शहर डरविन है, जो यहाँ का प्रख्या बन्दरगाह है।

बसिली—इसके पूर में ग्रेट वरियर रीफ नामक एक बहुत बड़ी भूख की दीवार है। किनारे की ओर ईस आबस केसा धरीफा कहना मक्का आदि पैदा की जाती है। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। यहाँ नाम करने के लिये चीन से मजदूर आते है। जाती करना यहाँ का मुख्य कार्य है। यहाँ का प्रसिद्ध शहर ब्रिसेन है। यह यहाँ की राजधानी है तथा एक प्रख्या बन्दरगाह है। यहाँ धीर भी बन्दरगाह है, जिनमें सोना ताँबा चक्कर, मीठ ऊन चर्बी आदि बाहर भेजा जाता है। इसके पश्चिम में पठार है, जहाँ चीक बंधार के

जंगल हैं। इन्हीं में सोना चाँदा टीन कोयला आदि खनिज मिलते हैं। इसी धोर जाल के मंडान हैं जिनमें पाताल छोड़ फुरें हैं। यहाँ मेड़ें बराई जाती हैं, जिनका जमड़ा तथा मांस बाहर भेजा जाता है।

न्यू साउथ वेल्स—आस्ट्रेलिया का सबसे प्राचीन सरसम्पन्न स्थान यही था और अब भी यहाँ की जनसंख्या सबसे अधिक है। यहाँ सबसे अधिक मेड़ें पानी जाती हैं तथा यही कोयले की आर्से सबसे अधिक है, इसी कारण यहाँ सबसे अधिक व्यापार होता है। इसके पूर्वी किनारे पर, खेती करने कोमले की खान खोलने तथा पशु पालने का कार्य होता है। यहाँ ईश कैला मकड़ी लम्बाई नारंगी तथा गेहूँ अधिक पैदा होता है। इसके मध्य भाग में सिडनी नामक शहर बसा हुआ है, जो यहाँ की राजधानी है। यह आस्ट्रेलिया का सबसे बड़ा शहर है। यह श्रमिक सुन्दर है कि दक्षिण की 'रानी' कहलाता है। यहाँ से कोयला फल, सोना, चाँदी मकड़ी पोख गेहूँ ऊन जमड़ा आदि बाहर भेजे जाते हैं। सिडनी के ऊपर न्यूकैसल नामक शहर बसा हुआ है। यहाँ कोयला अधिक मिलता है तथा सोहे के भी कारखाने हैं। पठारी भाग में लकड़ी काटन कोमला तथा खाना खोदने का काम होता है। यही पर हुट्टर नामक जाती है जो कोयले की खानों के सिध अधिक प्रसिद्ध है। इसके पश्चिमी भाग डालू है जिसमें मेड़ अधिक पानी जाती हैं। यहाँ से ऊन मांस बाहर भेजा जाता है। यहाँ मेड़ों की पैदावार बढ़ाई जा रही है। यहाँ चाँदा चाँदी छोटा आदि खनिज निकलते हैं। ये सभी पदार्थ पीरी नामक बन्दरगाह द्वारा बाहर भेजे जाते हैं।

क्विटोरिया—यह एक छोटी सी रियासत है। किन्तु यहाँ की जनसंख्या बहुत घनी है। यह रियासत पैदावार की दृष्टि से बहुत घनी है। इसके ऊपरी भाग में मरे नदी बहती है। इस भाग में गेहूँ की पैदावार अधिक होती है। मिसहुरा में फल बहुत अधिक पैदा होते हैं। यहाँ मेड़ों की पानी जाती हैं। मरे नदी पर बाँध बन जाने से मेड़ों को पानी पिसान की समस्या दूर हो गई है। इसके बिमरा नामक भाग में कपिहार माली नाम की पशुधर्म बहुत पायी जाती है। क्विटोरिया के मध्य भाग में पठार है। यह बहुत दूर तक फैला हुआ है। इसे आस्ट्रेलियन ग्रासलैंड कहते हैं। इसके बीच में किसमोर नामक दर्रा है। यहाँ मकड़ खदान का काम किया जाता है। बिस्म की सबसे अच्छी मरीनो ऊन यहाँ पर होती है। बम्बिंगो और बालाराट में प्रसिद्ध खान की खानें हैं। डालों के ऊपर बंगूर अधिक होते हैं। पहाड़ी श्रृंखला के बीच

विक्टोरिया बाटी फैली हुई है। इसके मध्य में फिलिप की खाड़ी है जो इसे दो भागों में विभाजित कर देती है। पूर्व की ओर मेड़े तथा घन्घ पशु-पासन होता है और पश्चिमी भाग में भीमती सफ़ी के बने जंगल हैं। इस बाटी की भूमि बहुत उपजाऊ है। यहाँ का सबसे प्रमुख सहर मेलबोर्न है। यह विक्टोरिया की राजधानी है। इस सहर को गोरे मस्साहों (अदिबो) ने दो कम्बल और एक बोटल गाराब देकर खरीदा था तथा पाठ गरी की ना खाली थी। इसके सौ साल पश्चात् एक खीझार बनाया गया जिसमें विश्व विख्यात 'सन्धन मेसबोर्न हवाई बीड़' प्रारम्भ हुई थी। फिलिप खाड़ी के निकट बसा होने के कारण यह एक गहरा तथा प्राकृतिक बन्दरगाह है। विक्टोरिया बाटी के बीच में होने से यहाँ सेना और की पैदावार एकत्रित कर बाहर भेजी जाती है। यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी है। यहाँ चारों ओर से रेतें आकर मिलती हैं। विक्टोरिया में ख़ास अच्छी होती है, जाने बोली जाती है तथा अच्छे चारगाह भी हैं और यहाँ फल भी अधिक पैदा होते हैं। यहाँ से ऊन जानवर, जमड़ा मांस मक्खन कम कपड़ा विदेशों को निर्यात होता है। जीमोग भी विक्टोरिया का एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ जून के कई कारखाने हैं। विक्टोरिया के निचले भाग में पहाड़ियाँ हैं, जिन पर जंगल बढ़ हुए हैं। कहीं कहीं मक्खन बनाने के कारखाने हैं। यहाँ मेड़े तथा घन्घ पशु पाल जाते हैं।

टस्मानिया—यह राज्य आस्ट्रेलिया से १३० मील दूर बसा हुआ है। यह एक पहाड़ी प्रदेश है, जिसमें सोना चाँदी टंग, लौहा सीसा कोयला आदि खनिज पदार्थ मिले पड़े हैं। इसीलिए यह 'आस्ट्रेलिया का ज़माना' कहा जाता है। यहाँ मेड़ नासपाती बहुत आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ की पाटियाँ म प्रायः मेड़ों की पैदावार अधिक होती है। यहाँ मेड़ भी खराई जाती है। यहाँ का प्रसिद्ध सहर हॉबार्ट है, जो इस द्वीप की राजधानी है। यह एक खाड़ी के किनारे पर बसा हुआ है, इसलिये एक प्राकृतिक बन्दरगाह भी है। इस सहर के निकटतम शहर में फला की पैदावार बढ़ाई जा रही है इसीलिए यहाँ लोहा खाने आटा पीसने मक्खन बनाने तथा मुरम्बा आदि बनाने के कारखाने खुल गये हैं। यहाँ कारखानों में जल-विद्युत प्रयोग की जाती है।

आस्ट्रेलिया से सबसे अधिक धरत गन्ध का सामान आता है—ऊन यहाँ, सोना मक्खन मांस जमड़ा आटा आदि प्रतिवर्ष विदेशों को भेजा जाता है। यहाँ

लगभग ८० करोड़ रुपय का सामान जैसे—ऊनी लकड़ा, सूखी कपड़े, मछीमरी, मोटरकार काबज, पचाइयाँ खरब मिट्टी का लेस, चाय तम्बाकू आदि बिलखों से प्रतिवर्ष भेजाया जाता है। आस्ट्रेलिया में उपरोक्त वस्तुधा के कारखाने बहुत कम हैं।

आस्ट्रेलिया से दुगुना एक अस्टार्कटिका नामक महाद्वीप है। यह महाद्वीप मैक्स बर्क से बना रहता है। यह भाग विस्तृत उबड़ है। यहाँ एक चिड़िया के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता। इस चिड़िया को पैनगुइन चिड़िया कहते हैं। ये चिड़ियाएँ घुब बनाकर रहती हैं। इनके पैर बहुत छोटे होते हैं। आकार बड़ा होता है।^१ डेढ़ाई ४ फुट तक होती है।



न्यूजीलैण्ड—यह एक टापुओं का समूह है, जिसमें दो बड़-बड़ टापू हैं तथा अन्य सब छोटे हैं। टस्मान नामक डच-निवासी ने इसका पता लगाया था उत्पत्त्यात कुक भी यहाँ आया था। अब इन पर अंग्रेजों का राज्य है। इसमें यहाँ के वास्तविक निवासी बहुत कम रहते हैं। ये लोग बड़े बहादुर तथा बलुर होते हैं। यह टापू घेरे जिन के सामान है। यहाँ घेरे ब्रिटेन के समान पैदावार, जलवायु तथा खनिज आदि मिलते हैं। इसलिये इसे ब्रिटेन का ब्रिट ब्रिटेन कहा जाता है।

इसका अधिकांश भाग पहाड़ों से घिरा हुआ है। इसके पूर्वी भाग में कंटरबरी का मैदान है, बाकि बहुत औरत औरतग्राऊ है। यहाँ क अधिकांश

१ पैनगुइन चिड़िया का सभी विशेष अध्ययन किया गया था। इसमें घुब बनाकर रहने की ही आदत नहीं है और भी धीमे विवेकताएँ होती हैं। इनमें जोरी करना लगभगजनक माना जाता है। यह अपने बच्चों को पालना धन्या समझती हैं परन्तु उसे समूह में भी बच्चों का पालन करती हैं। यह पक्षी बहुत आति-प्रिय होता है और अनुप्यों की भाँति समान भी करता है। ब्रिटेनी प्रुब अवेश में इस पक्षी में इतनी औनुहन-प्रियता पायी गयी कि यह बल बनाकर एक आहार देवने प्राये और संवर पुनकर वैक-वाक कर लीड गये। यह सामाजिक प्राणी है।

पहाड़ ज्वालामुखी हैं। हमके २ भाग में जगल हैं, जिनमें सफ़ेदी लकड़ी मिलती है। जोर बर्ष कोरी रोम बहुतिया आदि के कुछ जमनों में अधिक पाये जाते हैं। कोरी नामक वृक्ष तो ८१० फुट के बरे का तथा २० फीट तक ऊँचा होता है। इसकी मजबूत लकड़ी पर तथा बहाव बनाने के काम आती है। कोरी का गोंद बहुत कीमती होता है जो कि बालिश बनाने के काम आता है। यहाँ पेड़ों, जो बड़े दाल धानू, मन आदि भी पैदा होता है। पन्ना में सेब कापानी समकद आदि अधिक पैदा होते हैं। मधुर की पैदावासी भी अधिक होती है। इस देश में बाघ के बड़े-बड़े पैदाव हैं, जिनमें भेड़ें वाली जाती हैं। जिनको ऊन धीरे धीरे बाहर भेजा जाता है। गाय बैल भी पाल जाते हैं। जिनमें मजबूत पनोर बनता है। जोड़ सूधर तथा मुनियाँ भी पाली जाती हैं। बाघ की मस्जिदाँ भी पाली जाती हैं। जिनका मना बाहर बिदेस भेजा जाता है।

समय १२ घरत रूप का मोना यहाँ का सामा से निकल चुका है। यहाँ बाँरी भी मिलती है। कायसा लोहा गाल आदि बाहर भेजा जाता है। व्यापार के क्षेत्र में यह देश बहुत ऊँचा है। यहाँ का एक व्यापारी समय एक हजार रूपया का व्यापार करता है, जबकि ईरान का एक व्यापारी बीस हजार रूपया का तथा भारत का ३० रूपया प्रतिवर्ष व्यापार करता है। यहाँ में ऊन मजबूत बाँस पनीर जाल बर्षों सेना लकड़ी गाल आदि बस्तुएँ बाहर भेजी जाती हैं तथा मोटरकार मशीनरी लालू का सामान इबादतों का नूने लम्बा आदि बस्तुएँ बिदेस में भेजाई जाती हैं। ईरान का बीसपदन बाइस्ट बर्ष यहाँ के प्रमुख शहर हैं। इनके सामान बिदेसों को भेजा जाता है।

मुनियाँ—यह आस्ट्रेलिया के ऊपर छोटा सा द्वीप है। यहाँ ममी तथा बर्षों अधिक होती है। बाँस धान गारियल भाबुधाना केला, रबड़ ईल आदि यहाँ अधिक उपजते हैं। यहाँ मावा तथा सेब भी मिलता है। यहाँ के निवासी जपानी हैं जो कि कुछ लकड़ी करते हैं तथा मूषा पालते हैं तथा कुछ मधुर में कोनी धीरे दाल निबाने हैं।

प्रमाण महामायर के पास बहुत से द्वीप हैं जिनमें बहुत से ज्वालामुखी हैं। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। समय मधुर अथवा मधुर बने हुए हैं। ईल, केला पपीता कपास लहसुन गर्म मसाला गारियल आदि अधिक पैदा होते हैं। दुधरे मूँगे के द्वीप हैं, जिनमें मूँगे के कोनों में बर्षों कीकाने हैं। यहाँ के निवासी लाल, सफ़ेद धीरे मावा हैं। यह अधिक नहीं हुए हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि मनुष्य का जीवन प्राकृतिक परिस्थितियों से काफी प्रभावित होता है।

फ़ोर्ड ने कहा है कि भौतिक वातावरण और मानव-कर्म के बीच संस्कृति वहाँ तक मध्यवर्ती बनकर अपना प्रवेश करती है, वहाँ प्राकृतिक वातावरण और मानव की संस्कृति के बीच होने वाली अन्तः प्रतिक्रियाओं का ही मूल्यांकन एक समस्या बन जाता है। मानव-भागियों ने अपने-आपको भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल बनाया है और इसी श्रेष्ठा में उन्होंने अपना विविध विकास भी किया है।

हर्शकोवित्स ने मनुष्य के प्राकृतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों के भेद को इस प्रकार प्रकट किया है—

(१) आवास (Habitat)

(२) संस्कृति (Culture)

(१) आवास—यह मानव-जीवन की प्राकृतिक परिस्थिति है। किसी भी जन-समूह द्वारा आवास स्थान के कुछ भौतिक सधरण होते हैं। उस प्रदेश में रहने वालों को वहाँ कुछ प्राकृतिक उपलब्ध होते हैं या होने को होते हैं। वहाँ की जलवायु तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियाँ उस पर प्रभाव डालती हैं। वह अपने को उनके अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है।

(२) संस्कृति—यह समग्र पृष्ठभूमि जिसमें मानव अपने द्वारा निर्मित सभी भौतिक वस्तु, विधियाँ सामाजिक प्रणालियाँ इष्टिकोण और सभी ऐसे स्वीकृत उद्देश्य का सम्मिश्रण पाता है। वह उसके व्यवहार को वास्तविक रूप में प्रभावित करते हैं। इन सबको संस्कृति कहा जाता है।

मानव-भूगोल (Anthropogeography) इस प्रकार मानव-शास्त्र के लिए एक आवश्यक विषय है। फ़िजिकल गैट्रोग्राफी में इस प्रकार के अध्ययन का प्रारम्भ किया था। मनुष्य के जीवन-यापन के साधन उनकी आवश्यकताओं से जन्म है। उसने सर्वत्र ही प्रकृति के अनुकूल बन कर, अपने को जीवित रखकर, उसे एक प्रकार से पराजित कर दिया है, मनुष्य के जीवन का यह संघर्ष ही उसकी प्रौद्योगिक विकास के लिए उत्तरदायी कहा जा सकता है।

सांस्कृतिक उपसंस्थितियों के स्रोत

संस्कृति का प्रारंभ तो मानव के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गया था।
परंतु संस्कृति की उत्पत्ति संस्कृति के विकास के आधार पर घांसी जाती है
कि किस संस्कृति में मनुष्य को क्या सांस्कृतिक देन दी।

प्रागैतिहासिक वैज्ञानिक जिन प्रकार समय का विभाजन करते हैं वह हम
 प्रत्यक्ष लिख चुके हैं। यहाँ हम भारतीय क्रम में जो युगों का हिसाब है उनका
 उल्लेख करते हैं।

हिंदुओं के हिसाब से एक बार सृष्टि जितने वर्ष रहती है, उतने ही वर्ष
 एक प्रलय रहता है।

सृष्टि में १४ मन्वन्तर होते हैं। हर एक मन्वन्तर में ७१ यजुषु गो होता
 है। यजुषु गो का अर्थ है—चार युग अर्थात् कलियुग, त्रापयुग, तृता युग
 और सत्ययुग। कलियुग चार लाख बत्तीस हजार साल का होता है। त्रापयुग
 इनमें युगमा यामी = सात १४ हजार वर्ष का होता है। तृता युग इसमें
 निष्ठुमा यामी चारह लाख स्यान्वे हजार वर्ष का तथा सत्ययुग चौदुना यामी
 १७ लाख २५ हजार वर्ष का होता है। कुल जोड़ होता है एक यजुषु गो
 बराबर होती है सत्तासीस लाख बीस हजार वर्ष। ७१ यजुषु गो एक मन्व
 न्तर के बराबर होती है अतः एक मन्वन्तर तीस करोड़ सरसठ लाख और
 बीस हजार वर्ष का होता है। एक सृष्टि में १४ मन्वन्तर होते हैं। अर्थात्
 ४ परब उन्नीस करोड़, ४ लाख और ८० हजार वर्ष के १४ मन्वन्तर
 होते हैं। परन्तु हर मन्वन्तर के पहले चार बाह में एक संवत्सर भी होता

है। इस प्रकार १४ सम्मेलनों के १२ सभिकाम ठहरते हैं। एक संभिकाम १७ लाख २८ हजार वर्ष का होता है। इस प्रकार संभिकामों का कुल समय होता है—बो करोड़ सन्मथ लाख बीस हजार वर्ष। १४ सम्मेलन और १२ संभिकाम मिलान पर सृष्टि की आयु निकलती है—४ अरब ३२ करोड़ वर्ष। इतने दिन बाप फिर इतने ही दिन का प्रलय भी होता है।

हिन्दू एक चक्र (cycle) में विश्वास करते हैं। उनके हिसाब से सबकुछ पहले से निर्णय (determine) हो चुका है।

वास्तव में, हम बता चुके हैं भारत का मण्डित ज्ञान व्यापकता की सोच जीवन कर्म में धनस्र की प्रशुद्धता धनरता की साक्ष्य इत्यादि ने इस प्रकार के मण्डित को विकसित किया है। इससे हम अपने को धर्मिण्डर मानते हैं, परन्तु हम में इससे कमी भी पाई है कि हमने इतिहास का ज्ञान रचना छोड़ दिया। हो सकता है कि बटनार्य इतनी प्राचीन हो गई या विदेशियों के आक्रमणों ने बार-बार पुराने रिकार्ड नष्ट कर दिये। फिर भी हमारे पुराणों में हिसाब साफ नहीं मिलता।

इसलिए हम प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करने के लिए मनुष्या की विभिन्न जातियों के प्राचीन इतिहासों से सहायता लेनी आवश्यक है ताकि हम एकान्वी अध्ययन में पड़ न रह जायें।

संसार में अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। उनका सबका अपनी अपना इतिहास है परन्तु वर्तमान काल में पुरातत्व की खोजों पुराने रिकार्डों इत्यादि के आधार पर ही इतिहास लिखा जाता है। इसी आधार पर हम भी बेवचन करेंगे।

संसार में बार देखा का इतिहास सबसे प्राचीन माना जाता है—

- (१) मिस्र या मिस्र।
- (२) सुमेर-सम्बन्ध या मिस्रपोटामिया प्रदेश।
- (३) चीन।
- (४) भारत।

भारत के विषय में अभी अनेक प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं।

यहाँ हम ज्ञान से एक-एक करे लें—

मिस्र—पाश्चात्य विचारकों के अनुमान भूमण्डल पर जिस प्रदेश में सर्वप्रथम मानवीय पुरुषों ने मनुष्यता एवं संस्कृति का रूप धारण किया वहाँ मानव पहली बार जिज्ञासु भाव से स्वयं अपने का एवं अपने जारों और के बच्चा

वस्तु को जानने का कौतुहल व्यक्त किया तथा जहाँ उसने तिमिराच्छादित जीवन में सर्वप्रथम ज्ञान रश्मियाँ प्रस्फुटित हुई वही प्रवेश घाट नियम के नाम



चित्र २६—एशिया



चित्र २७—अमेरिका



चित्र २८—गङ्गा (गोघो)



चित्र २९—यूरोप

से जाना जाता है। बुभुक्षार्द्र प्राग ऐतिहासिक भारतीय मानव ने पशु-महस्य पशुचर जीवन को तिलाञ्जलि देकर अपनी बुद्धि-बानुष्य एवं परिश्रम के बल पर जीवन-यापन का पाठ यहीं ग्रहण किया था। धर धाम और मयूर का कल्प मित्र की ही गौरवपूर्ण भूमि पर हुआ था। मित्र की संस्कृति मनुष्य जन्म-मरण चक्र का एक ऐसा चक्रवर्ती चक्राक्षर है जो कि सुमां-सुमां तक भावी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करता रहेगा।

परन्तु कितने आश्चर्य का विषय है कि विश्व की हम प्राचीन संस्कृति के विषय में हम सन् १७६० से पूर्व कुछ नहीं जानते थे। मित्र के घण्टाघर तक भी हम ही जाने थे जैसे कि के आज है, पर मातां उनका सूत्र-निमग्नण प्राकृतिक

है। इस प्रकार १४ मन्वतरों के १५ संविकाल ठहरते हैं। एक संविकाल १७ लाख २८ हजार वर्ष का होता है। इस प्रकार संविकालों का कुल समय होता है—बो करोड़ सन्तुष्ट लाख बीस हजार वर्ष। १४ मन्वन्तर और १५ संविकाल मिलाने पर सृष्टि की प्राप्ति निकलती है—४ अरब ३२ करोड़ वर्ष। इतने दिन बाद फिर इतने ही दिन का प्रलय भी होता है।

हिन्दू एक चक्र (cycle) में विश्वास करते हैं। उनके हिसाब से सबकुछ पहले से निर्णय (determine) हो चुका है।

वास्तव में, हम बता चुके हैं भारत का गणित ज्ञान ध्यानशक्ति की खास जीवन क्रम में प्रकृत की प्रगुप्तता समरता की साससा इत्यादि ने इस प्रकार के गणित को विकसित किया है। इससे हम अपने को अविनश्वर मानते हैं, परंतु हम में इसका कमी भी घाई है कि हमने इतिहास का कम रक्खना छोड़ दिया। हो सकता है कि बटनाएँ इतनी प्राचीन हो गईं या विदेशियों के आक्रमण ने बार-बार पुराने रिकार्ड नष्ट कर दिए। फिर भी हमारे पुराणों में हिसाब साफ नहीं मिलते।

इसलिए हम प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करने के लिए मनुष्या की विभिन्न जातियों के प्राचीन इतिहासों से सहायता लेनी आवश्यक है, ताकि हम एकांगी अध्ययन में पक न रह जायें।

संसार में अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। उनका सबका अपना अपना इतिहास है परन्तु वर्तमान काल में पुरातत्व की जाया पुराने रिकार्डों इत्यादि के आधार पर ही इतिहास लिखा जाता है। इसी आधार पर हम भी विवेचन करेंगे।

संसार में बार बेरा का इतिहास सबसे प्राचीन माना जाता है—

(१) मिस्र या मिस्र।

(२) सुमेर-सभ्यता या मैसोपोटामिया प्रदेश।

(३) चीन।

(४) भारत।

भारत के विषय में अभी अनेक प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं।

यहाँ हम क्रम से एक-एक को लेते हैं—

मिस्र—पाश्चात्य विचारकों के अनुसार सुमेर-सभ्यता पर मिस्र प्रदेश में सर्व प्रथम मानवीय पुराणों में सभ्यता एवं संस्कृति का रूप प्रकट किया जाही मानव ने पहली बार जिज्ञासु भाव से स्वयं अपने का एवं अपने आरों और के बाता

कष्ट हो जाने का शीतृह्ण व्यक्त किया तथा यही उमर निमिराभ्दानी
 शब्द में सर्वप्रथम ज्ञान-रहिमयी प्रकृति हुई वही प्रदेश था जिस के नाम



चित्र २९—एप्रिया



पिच २७—समेरिका



चित्र २८—हृदयी (नीचो)



चित्र २६—यूरोप

के शासक राजा है। सुमनकह प्राय ऐतिहासिक काल में मानव न पशु मनुष्य के बीच के अन्तर को मिटाकर मनुष्य के धर्म की बुद्धि का विकास एवं परिपक्वता के लक्ष्य पर ध्यान देने का पाठ पढ़ी प्रहरी किया था। पर धर्म और नगर का सम्बन्ध ही धर्मका मूल मूल्य पर प्रकाश था। धर्म की महत्ता मनुष्य के लक्ष्य के लक्ष्य का एक ऐसा अन्तिम उद्देश्य है जो कि दुर्गम दुर्गम तक भी पहुँचने का मार्ग-दर्शन करना रहेगा।

पशु चित्त आकर्षण का विषय है कि बिना ही हम आधीन मंत्रुषि व
विषय में हम कन् १७६८ में पूर्ण कुछ नदी जानने थे। विषय व सम्पूर्ण नदी में
कि हों वही के रमि चित्त आकर्षण हैं, पर आर्षों जनका मूक निम्नस्तर आधुनिक

मानव ने धर्मार्थम की स्पर्श न कर पाया हो इसीलिए उनके निर्माणकर्ताओं की कहानी मक़ाद में न आ पाई। मन् १७६८ तक मिथ का महत्त्व केवल एक भौगोलिक एवं राजनीतिक इकाई के रूप तक ही सीमित रहा। पान के प्रसार से जैने दुष्यन्त घणमी ही पत्नी को न पहचान पाया वैसे ही मिथवासी भी अपने ही महान पूर्वजों की अवसुन मध्यमताओं को बिस्मृत कर बैठे—मटीन ने वसी जिन्होंने बिहब को धालोक प्रान्त किया था वे स्वयं ही पत्नीसूत व्यवहार में अपना मार्ग खोज रहे थे। गोरब घणमी पाषाण आड़ु बागा है पर वे पाषाण भी उन्हें मात्र न रही। परन्तु एक दिन यथायक एक ऐसा महान रक्तसोद्घाटन हुआ जिसने सभार को आश्चर्य चकित कर दिया। मन् १७६८ में इमर्सेन्स को परस्तर करने के हेतु नीपोलियन बोनापार्ट ने अंग्रेजों के प्राचीन तत्कालीन भारत-स्थित बस्तियां पर अधिकार करने की योजना बनाई मद्यपि वह योजना सफल न हो सकी। परन्तु इसी उद्देश्य से वह तैयारी के हेतु पूर्वी अफ्रीका की ओर आया। उसी समय उसकी सेना के एक सैनिक का समयोबस एक विचित्र पापासु-आव्य दिखाई दिया जो कि रोसेटा (Rosetta) नदी के पास के मैदान में गड़ा हुआ था। इस पत्थर पर विचित्र चित्र अंकित थे। इस चित्रा पर तीन भाषाओं के लेख थे—चित्र लिपि। (Hieroglyphic) सरल मिथी लिपि (Demotic) एवं ग्रीक-लिपि। आश्चर्य यह चित्रासम्बन्ध चिट्ठी म्यूजियम में है। मन् १८०२ में चैम्पोसियन (Champollion) नामक फ्रांसीसी प्राक्खर में इन लिपियों का अर्थ ज्ञात करने का प्रयत्न किया। इन्कीस बर्ष के कठोर परिश्रम के पश्चात् मन् १८२३ में उसने चित्रा पर अंकित १४ चित्रों का अर्थ ज्ञात करने की कोशिश की। तभी से इतिहास-वस्तुओं एवं पुरातत्व शास्त्रियों का ध्यान मिथी मन्स्वरण की उपेक्षित भूमि में छिपे प्राचीन सभ्यताओं के अवशेषों की ओर आकर्षित हुआ एवं पिरैमिडा (मिथी भाषा में 'अंबाई' का बोध कराने के लिए 'पिर-मि-एस' शब्द का प्रयोग किया जाता था) और ममी' (फ़ारसी भाषा के 'अमिघाई' शब्द से प्राप्त) की खोज के लिए एक ठेके आन्वेषण का व्यवसाय हुआ जिसका अन्त प्रायः तक नहीं हुआ।

मिथ की संस्कृति समय की बिधटनकारी प्रवृत्ति का अध्ययन है। बाल्फ़र स्कॉट की उक्ति है कि मृत-व्यक्ति कोई कहानी नहीं कह सकता (Dead man tells no tales) परन्तु मिथ का इतिहास उनके मुखों की कहानी पर ही आधारित है। ग़ोरे और राम के बोस में बिहनिडा में तीन मिथवास्तुओं के दो पूर्वज आधुनिक वैज्ञानिकों की विज्ञाना के विषय हैं। मिथ के प्रथम मद्य से पूर्व या ईसा से ३४०० वर्ष पहले का इतिहास वही की कर्तों के आधार पर

जल में पाने के लिए घनाब पीवा किया जा सकता था। पशुओं के लिए खाद प्राप्त किया जा सकता था और निकटवर्ती प्रदेशों में ही मकान बनाने के सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती थीं। इन्हीं आसानीयों से प्रेरित होकर मध्य अफ्रीका शरब के रेगिस्तान और पश्चिमी एशिया में अनेकों कबीलों ने मित्र की भूमि पर पैर रखा। जन-संख्या घटती थी और कृषि के लिए जमीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। विदेश इतिहास के उस प्रारम्भिककाल में 'सम्पत्ति' नाम की कोई वस्तु नहीं। इसलिये मित्र मित्र स्वानों में धाव दौड़ कबीलों में कोई विशेष सजाई-पगड़ा या सम्पत्ति के लिए कोई दुश्मन नहीं हुआ। इसके विपरीत जैसे अफ्रीका के लोगों में मित्रों का घर बनाने के लिए एक विशेष एकता स्थापित हो जाती है, कुछ-कुछ वैसा ही यैभी भाव इन कबीलों में उत्पन्न हुआ। सामुहिक रूप से ये सब धन का 'रेमी' (Remuneration) के नाम से पुकारने लगे जिसका अर्थ है 'ईश्वर का दिये'। इस लोभ का धन को 'रेमी' जाति के नाम से पुकारना भी संभव उपयुक्त ही था क्योंकि इन्हें कल्प कुछ तरह में न नदी का बरतान प्राप्त था। वह नदी अफ्रीका से निकल कर (विक्टोरिया झील से) मित्र की पार करती हुई मूनप्यसागर में गिरती है। नील नदी की घाटी मित्र-मित्र स्वानों पर मित्र-मित्र है। फिर भी घाटी की न्यूनतम चौड़ाई १० मील और अधिकतम चौड़ाई १० मील है।

इस घाटी में रहने वाले लोगों के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने समय के विभिन्न देखा में रहने वाले लोगों से पूर्व ही सम्पत्ति के वर्णन करते। सामुदायिक जीवन (Communism) स्वीकृत करने के कारण इन घाटी के लोगों में भेदभाव और जाति का उद्भव नहीं हुआ। जाने के लिए पशु आसानी से उपलब्ध हो जाने थे। उन्हें हाक कर जानी में बँध दिया जा सकता था। उन्हें मारना सरल था। परन्तु उनका मान को अनेक दिना तक भोजन के लिए सुरक्षित रूप से रखने की समस्या ने उन्हें पशु पालने के लिए प्रेरित किया होगा। इस प्रकार पशुपालन का मार्ग हुआ। कुछ पशु तो मांस एवं दूध दोनों ही दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुए।

नील नदी की घाटी का जनबाहु मनुष्यों के निवास के लिए एवं कृषि के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त थी। वहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ थी (जैनी कि प्रब भी है) और केहूँ, कपास एवं अन्य छोटे पौधों की पैदावार बड़ी सुबल थी। पशु पक्षी की शक्ति नील नदी की घाटी पर निर्भर थी। इस प्रदेश में वर्षा

बहुत कम होती थी। परन्तु प्रकृति ने इसी कमी को पूरा करने के लिए एक विशेष उपाय किया। नील नदी में प्रत्येक वर्ष बाढ़ आती थी। बाढ़ के दिनों में जब दूर दूर तक फैल जाता था और अपने छान साईं हुई तबरा मिट्टी को भूमि पर फैला देता था। इस कारण से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती थी। मिथवासी कम के लिए भारतवासियों की प्रति माकास की धोर नहीं देखते थे। उनके लिए नील नदी ही सर्ववासी थी। इसी उद्देश्य को (ई० पू० पाँचवी सताब्दी में) प्रसिद्ध जोक इतिहासकार ने यह कह कर अभिव्यक्त किया था कि मिथ नील नदी का शान है। अन्य लेखकों ने भी नील नदी के महत्त्व को 'ईम्पेरियल बरदान' कहकर स्वीकार किया है। मिथवासियों के हृदय में सर्वत्र ही नील नदी के प्रति वसों ही बढ़ा रह्यो है जैसी कि भारतवासियों को यथा क प्रति है। प्राचीन कासीम मिथवासी तो नील नदी को एक देवता मानते और उसे वह हापी (Hapi) के नाम से सम्बोधित करते थे एवं उसकी पूजा-अर्चना के हेतु विशेष भजन करते थे। 'पेपिरस' कागज पर लिखित ये भजन 'ए माइड टू दि ईजिप्टियन कर्नलस' (A Guide to the Egyptian Collections) नामक पुस्तक के रूप में प्राग्वी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रूप से रखे हुए हैं। उदाहरण के लिए एक भजन नीचे दिया जाता है—

'ह हापी ! (नील नदी की देवता) तुझे नमस्कार है। तू इसी भूमि पर अवतरित होता है। तू शक्ति के समय मिथ को जीवन प्रदान करने के हेतु आता है। तू जन श्रेता को जब प्रदान करता है जिन्हें रा' ('Ra—सूर्य देवता) न उत्पन्न किया है तू ही सब पशुपक्षियों को जन करता है, तू जन स्वर्ग क मार्ग में नीले आता है तो निरन्तर रूप से पुष्पों को जब निमाता रहता है। तू रोटी और जल का मिश्र है तू ही धनाज की वृद्धि करता रहता है और उनकी शक्ति प्रदान करता है। आदि आदि।

पूर्व-राजवंश कास अवका ईसा पूर्व ३४०० का युग (Pre-dynastic Period)—यद्यपि यह माल्य है कि नील नदी मिथवासियों के लिए एक महान बरदान थी परन्तु उनके साथ ही यह भी माल्य है कि यथा क्या यह नदी लोगों के विनाश का साधन भी थी। बाढ़ से भूमि उपजाऊ बनती थी और बाढ़ के कारण ही सर्वत्र लोगों को धन जन की हानि भी उठानी पड़ती थी। प्राग्ध म स्रोत बाढ़ का मान नदी का प्रकाश गमकने से और उनकी स्तुति एवं पूजा करके उनको दान करने की चेष्टा करने थे। परन्तु बार बार धान बापी बाढ़ों ने लोगों

को विवश कर दिया कि वे अपनी सुरक्षा के उपाय सोचें। पहले लोगों ने नदी में से घनेक छोटी-छोटी नहरें बना कर अपने अपने छोटे-छोटे एक-एक पट्टेचान का उपक्रम किया। इस प्रबन्ध के द्वारा कहीं पुरे वर्ष के लिए अपने-अपने छोटे-छोटे पट्टेचान की सुविधा हो गई। परन्तु कुपित नीस के सम्मुख यह उपाय ऐसा सुलभ एवं निरर्थक सिद्ध हुआ जैसा कि माफो भोंपूरी से हिमाचल पिरने की चेष्टा हो। एक समान विपत्ति का बारम्बार सामना करने से लोगों में सामूहिक रूप से रोष उत्पन्न हुआ। परन्तु व्यक्तिगत रूप से या छोटे-छोटे समूहों द्वारा बाढ़ की स्थिति को बंध में करना असम्भव था। बहुत स्तर पर कार्य करने के लिए उपयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता थी। परिणामतः नदी के किनारे किनारे पूरक पूरक स्थानों पर निम्न निम्न स्थानीय नेताओं ने बाढ़ को नियन्त्रण में करने के लिए एवं सिंचाई के लिए उपयुक्त साधन जुटाने के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया। धर्म, धर्म, वे ही नेता लोग बाढ़ नियन्त्रण एवं सिंचाई योजनाओं के वास्तविक प्रबन्धक हो गए। प्रत्येक नेता अपने-अपने स्थानों के निवासियों का मार्ग-दर्शन करने लगा। इस प्रकार उनके हाथ में एक विशेष सत्ता आ गई। अपने पारिवारिक के रूप में इन नेताओं ने जनता से प्रभाव एवं अन्य पैदावार का कुछ भाग वसूल करना आरम्भ कर दिया। इन नेताओं के नेतृत्व में ही नहरों का निर्माण एवं छोटे-छोटे बांधों का निर्माण हुआ।

सम्भवतः इसी रूप में कर प्रणाली का जन्म हुआ। धीरे-धीरे इन नेताओं में भी स्पर्धा उत्पन्न हुई। अपने प्रशासनिक अनुभव अनुसार एवं सामाजिक स्थिति के इस पर वे अपनी सत्ता का वृद्धि करते रहे। वे अपने कमजोर पड़ोसियों की भूमि पर और उसके साथ ही उस प्रदेश के निवासियों पर अधिकार करते गए। अन्त में नेताओं का यह विशाल वर्ग दो संघटित इकाइयों के रूप में विभाजित हो गया। आवश्यकता भाविष्कार की बगल है—इस प्रकार शासन या सरकार (Government) का जन्म हुआ। इन दोनों इकाइयों में ही, जैसा कि बेबीलोन धर्मनिरपेक्ष शासनवर्ष का मत है, बाद में दो शासनात्मक रूप धारण किया और निम्न दो राज्यों में विभाजित हो गया। निम्न प्रदेश और नदी का तटवर्ती उत्तरी भाग निम्न मिथ (Lower Egypt) कहलाया और नदी का तटवर्ती ऊँचा भाग ऊपरी मिथ (Upper Egypt) के नाम से पुकारा जाने लगा। प्रथम राजवंश के अस्तित्व में प्रायः संपूर्ण मिथ इन्हीं दो प्रशासनिक एवं राजनीतिक इकाइयों में विभाजित था। शायद जब दोनों प्रदेशों को ऐसी ही स्थिति दी गई हो जैसी कि संयुक्त अरब गणराज्य (United Arab Rep-

public) की स्थापना से पूर्व कुछ वर्षों पहले तक मिस्र और सीरिया की स्थिति थी।

मिस्र में बस जाने के उपरान्त धार्मिक-शास्त्रियों को एक अभिन्न सम्मता का विकास होने लगा। उनके रहनु-सहनु आम-मान धार्मिक में एकरूपता माने लगी। विचार-कारण में एक विशेष समानता माने लगी। उत्पत्तिक समस्याओं के लिये ब्रह्मा कि पहले ही बताया जा चुका है सामुहिक प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। मिस्र की सम्मति उसकी फसलों थी। अच्छी फसलों के लिये उपयुक्त समय पर बीज बोना और जल प्राप्त करना आवश्यक था क्योंकि नील नदी की घाटी के पूर्व प्रवेश की कृषि नील की वार्षिक बाढ़ पर आधारित थी। इस बाढ़ के विषय में जो एक धार्मिक बात की जो कि प्रायः अन्य नदियों में माने वाली बातों के विषय में नहीं कहो जा सकती। बाढ़ प्रतिवर्ष सदैव निश्चित समय पर ही घाटी की लम्बाई हो बाढ़ों के नम्य सदैव ३६२ दिन का अन्तर रहता था। १० वर्षों के उत्तम निरीक्षण के उपरान्त इस बात की पुष्टि हो गई। इस प्रकार उन लोगों के लिए कृषि का कार्य सुगम हो जाता था जो यह जान लने के कि बाढ़ बाढ़ माने वाली है। इस प्रकार मिस्री कर्तव्य का जन्म हुआ। ३६२ के दिनों के वर्ष को ३० ३० दिनों के १२ मासों में बाँट दिया गया और एवं किर पाठान्तर से (Intercalary) २ दिन जोड़ दिए गए। मिस्रवासियों के म... (अनुप्रा) के नाम की 'बाढ़' बाबाई एवं 'कर्म' धारि है। इस कर्मकाण्ड का नाम ई पू ४२४१ वर्ष पूर्व हुआ। इसी कर्मकाण्ड को बुनियाद सीधर है। माया और इसमें कुछ संशोधन करके इसे नया रूप दिया। उसके पश्चात् प्रगरी ने इस कर्मकाण्ड में कुछ सुधार किया। इस प्रकार सामुहिक कर्मकाण्ड जन्म निम्नी कर्मकाण्ड से ही हुआ है।

परन्तु नील नदी की बाढ़ के १ वर्षों के निरीक्षणों को एक एक मुरति नहीं रखा जा सकता था जब तक कि सामाजिक संतुलन-कला का विकास हुआ जाय। साथ ही मायो लोगो के सामाजिक संतुलन-कला का विकास हुआ। मुरति रचना परम आवश्यक था धार्मिक धर्मपत्नी कृषि का उनके अनुसार ही प्रारम्भ करें। इस समस्या ने लोगों को किसी प्रकार की सिधि का धारिधार करने के लिए विवश कर दिया। इस प्रकार मिस्री चित्र सिधि (Hieroglyphic) का धारिधार हुआ। परन्तु सिधन के लिए सामाजी की धारिधरता थी—कामकाण्ड क्याही एवं कर्मकाण्ड। पापाय-कर्मों या सिमाना पर चित्र सिधि द्वारा महत्वपूर्ण सूचनाएँ संकेत करने से इस काम का प्रारम्भ हुआ। बाद में धार्मिक सुविधाजनक सामाजी की सीध प्रारम्भ हुई। इसका

फलस्वरूप ही पेपिरस (Papyrus) कागज का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार में भी नील का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा। नील नदी के समदल या कीपड़ में पेपिरस नामक पौधा पैदा होता था (मरकट या सरकंडे बीजा)। इसी से पेपिरस कागज बनाया गया। लिखने के लिए इन्हीं सरकंडों की कलमें बनाई जाती थी। पानी में योंहि बास घससा कुछ विशेष प्रकार के पत्थरों के कूर्ण का मिश्रकर स्याही बनाई जाती थी। थोड़ी मिट्टी की बरतें बनाई जाती थी। इस प्रकार मिथ के आदिवासियों अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु सबब सबब एवं जागरूक रहते थे। उनका महान प्रयत्नों के फलस्वरूप ही मिस्र में पूर्व राजवंश कास में ही एक विशेष संस्कृति का जन्म हुआ। इन पूर्वजा की सभ्यताओं में आगामी पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त किया और उनमें आत्म-विकास की वह भावना बाहुल्य की जा एक महान संस्कृति एवं सज्जबस भविष्य के निर्माण करने वाले राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

उस समय जब कि मिथ के आदिवासी एक नई सभ्यता एक नवीन संस्कृति की नींव डाल रहे थे। प्राच्यमिक महान राष्ट्रों का जन्म भी नहीं हुआ था। निर्माण एवं रचना का यह महान कार्य विश्व इतिहास की एक धनूतपूर्व घटना है। उत्थान-पतन एवं उन्नति-अवनति के चक्करों आघातों के मध्य भी मिथवासी अपने पूर्वजों के महान कार्यों को बराबर धाने बहाते रहे। ई. पू. ३४०० में मीनेस (Menes) ने जो कि ऊपरी मिथ (Upper Egypt) का शासक था निचले या उत्तरी मिथ (Lower Egypt) को जीतकर बाला भाग को एक राज्य का रूप प्रदान किया। डाक्टर फ्लिन्दर्स पीट्री एवं डा० वासिस बज (Dr. Flinders Petrie and Dr. Wallis Budge) के मतानुसार ऊपरी एवं निचले मिथों भागों का एकीकरण ई. पू. ४३०० में हुआ। परन्तु स्पष्ट एवं ठोस प्रमाणों के अभाव में कुछ मत स्वीकार नहीं किया जा सका। मीनेस से ही मिथ का प्रथम राजवंश उत्पन्न हुआ। वह प्रथम राजवंश का प्रथम शासक था। उस समय के विश्वागत के अनुसार मिथ-वासियों ने मीनेस का उसकी मृत्यु के बाद देवताओं की श्रेणी में प्रतिष्ठापित किया। अपने जीवन-वास में मीनेस बाज रूपी देवता की पूजा करता था अतः उसे बाज-देवता (Horus Namer वा The Falcon Horus) के तुल्य सम्मान प्राप्त हुआ। ग्रीकन जारकड के मतानुसार उस समय ऊपरी एवं निचले मिथ के पृथक्-पृथक् राजकीय विभाग थे (कमस्र भास एवं रायैर मुद्र) जिन्हें मीनेस ने मिलाकर एक कर दिया था। प्रथम राजवंश के उत्तराधिकारी राजा

ने इसी एकीकृत राज-विश्व को बरखण करने की परम्परा धारण की थी। इटैली में एक प्लिमा-स्टोन (Palermo Stone) के आधार पर (जिनकी लाज स्वयं उम्हाने ली थी) यह मत प्रगट किया है कि प्रथम राजवंश (ई पू २४० वर्ष) ने पहले ही मित्र संयुक्त हा कुका या धीर उसके कई राजा भी हो चुके थे जिनकी राजधानी सम्भवत हैलियोपोलिस (Heliopolis) थी। परन्तु इटैली के उक्त मन्त्र का पुरातत्त्ववेत्ताधा ने कोई अनुमोदन या समर्थन नहीं किया है। अनपक्ष संयुक्त मित्र की स्थापना मोनेस के राज्यकाल से ही मानी जाती है।

प्राचीन साम्राज्य अथवा प्रथम संघ (The Old Kingdom or The First Union)—१ इतिहासकारों ने इस बात को पिरैमिड युग के नाम से भी पुकारा है, क्योंकि पिरैमिड के निर्माण की दृष्टि से यह समय मिथी इतिहास का स्वर्णकाल था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है मित्र के राजा मार्गों का एकीकरण करने का येव मित्र के प्रथम फराओह मीनेस (Menes) को है। मैम्फिस नगर उसका ही बसाया हुआ था। यह नगर नैज नदी के डेल्टा के प्रारम्भ में है। इस नगर को मित्र की प्रथम राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस युग का स्वर्णकाल चौथे राजवंश ने प्रारम्भ हुआ। इन राजा ने राजाओं ने मिथी राज्य का धीरे विस्तार किया। उनकी राज्य-सीमा पश्चिम में नोबिया और दक्षिण में न्युबिया (Nubia) तक थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इसी समय मनुष्य ने बाहु का उपयोग करना प्रारम्भ किया। मित्रवासिना ने सिनाई (Sinai) प्रायद्वीप में तबि की खोज की। इन राजाओं के बहाव लाल सागर में व्यापार के हेतु बिचरत थे। इस वंश के राजाओं ने निबार्ह का प्रबन्ध स्थायी रूप से किया जिसका अनुसरण पश्चात बर्तों शासकों ने भी किया। धार्मिक स्थिति की नियन्त्रण में रखने के हेतु एक देग में व्यापार को सुयम बनाने के लिये एक सुनियोजित मुद्रा प्रणाली प्रारम्भ की गई। इन राजाओं के काल में एक विश्वास एवं पूर्ण संगठित देना थी।

राजाओं का बिर्ह फराओह (Pharaoh मिथी भाषा में इस शब्द का अर्थ था बियाम-गृह) कहा जाता था जलता में देवताधा के मुख्य सम्मान था। राज्य में वह प्रत्येक दृष्टि में सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न होता था। जनता उसे धरती पर ईश्वरार्थ प्रतिनिधि मानकर उसका आदेश मानती थी। राजा स्वयं अपने का ईश्वरीय-मन्त्राण समझता था। इस प्रकार हम देखने हैं कि मित्र में भी इस ज्ञान में राजा की स्थिति बिसी ही उच्च और पवित्र थी बिसी कि मध्यता के प्रारम्भ में अल्प देगों में अल्प राजाओं की थी। संक्षेप में हम यह सचन

है कि मिमी इतिहास का यह वह युग था जिसमें राजाओं के दैवी-विश्वान्त (Divine Rights of Kings) का बोझ-बाना था। राजनीतिक सामाजिक एवं सैनिक जीवन में यह निरंकुश सत्ता का उपयोग करता था।

इस युग की पिरैमिडों का युग इनीसिंग कहा जाता है कि इस काम के राजाओं ने ध्वज-निर्माण एवं स्थापत्य कला में विषय अभिरुचि प्रदर्शित की। विषय के किसी भी अन्य देश में इतनी प्राचीन विद्यालय हमारे नहीं हैं जितनी कि मिस्र में बनीं। यद्यपि सर्वप्रथम काम ने ध्वज प्राचीन हमारे लोगों को बराबादी कर दिया है, परन्तु जो धाप रहे हैं वे ही अपने धीरे-धीरे की कहानी आप ही कहती प्रतीत होती है। विद्यालय सिमा कच्छो एवं पापाए कच्छों को प्राचीन मिथवासियों ने जिस कुशलता के साथ पिरैमिड निर्माण के कार्य हेतु प्रयुक्त किया है वह इस स्तुतिक युग के इन्जिनियरों को भी आश्चर्य प्रकट कर देती है। लगभग ३ ई पू जोसर द्वारा निर्मित 'सोपान चट्ट (Step Pyramid) पिरैमिड सम्भवतः प्रथम भवन का जिसका निर्माण किया गया। इम्होतेप (Imhotep) चिस्मकार द्वारा निर्मित यह पिरैमिड धातु की अपने अतीत को अतीत में छिपाए अज्ञात भविष्य की कल्पना में जोया हुआ था मिथ के विस्तृत मस्त्वल में सर्वोच्च मस्त्वक लिए बना हुआ है। २६० ई० पू० में फराओह खुफु या क्योपस (Pharaoh Khufu or Cheopos) ने जिजा (Gizeh) के विद्यालय पिरैमिड का निर्माण कराया। इसके विद्यालय आकार-आकार का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यह विद्यालय प्रस्तर-समुह १३ एकड़ भूमि में फैला हुआ है और इसमें बहुत पापाए खंडों का प्रयोग किया गया है जिनकी संख्या लगभग २३०० है और आधुनिक इन्जिनियरों का अनुमान है कि एक एक पापाए खंड का वजन लगभग २½ टन है। इसकी ऊँचाई ४८१ फीट के लगभग है और इसकी एक आकार-सुजा ७२५ फीट के लगभग है। विद्यालय के प्रथम प्राचीन मिथवासियों द्वारा निर्मित यह पिरैमिड आधुनिक युग के सर्व-साधन सम्पन्न इन्जिनियरों को भी आश्चर्य-प्रकट कर देता है। यह कहा जाता है कि लगभग १००००० मजदूरों ने वर्षों तक कार्य करके इसे बनाया था। २५०० ई पू तक पिरैमिडों का निर्माण चलता रहा और मैफ्टिम पिरैमिडों की तपरी हो गई। सम्राटों के पिरैमिडों के निकट ही अनेक मम्बस्थिता के पिरैमिड बनाये गये। ये पिरैमिड मिथवासियों के इस विद्यालय का प्रतीक है कि वे एक पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे।

मध्यकालीन साम्राज्य या द्वितीय संघ (The Middle Kingdom or The Second Union)—मिथ का यह योग्य अधिकांश समय तक स्थिर न रहा। उत्थान के पश्चात् पतन अवश्यम्भासी है। मिथ में भी यही हुआ। पिरेमिड नामीन सामकों के बरत शासन में अस्थिरता के लक्षण परिमिश्रित होने लगे। मुख्यतया तब बृहत्तम शासन के लिए अनेक हड़ सामकों की आवश्यकता होती है यदि सामक पिरेमिड-युग के साथ ही मिलीन हो गये। मिथ के मिथ प्रान्तों में सम्यक्स्था होने लगी जिसे कमजोर सामक बुर न कर पाये। यह वह समय था जबकि राजा राज-कार्य में बलिदान के बजाय ऐत-आराधन और स्वार्थपरता की ओर झुक सर हो रहे थे। अराजकता अपने पाँव फँसाने लगी। यहाँ तक कहा जाता है कि मिथ के तालबे राजवंश में ७० राजा हुए, जिन्होंने ७ दिन तक राज्य किया। मृत-मार न देय की सामाजिक दशा को और बिबाड़ दिया साम्राज्य के टुकड़ होने लगे प्रचान आह्वन-शक्ति राजा के हाथ में स्वामीय अविद्यासी नामन्ता क हाथों में आ गई। सोपरा और अराजकता के कारण घाम बनता बुली की। यद्यपि नगरों का विकास हुआ परन्तु ह्यक आर्थिक नार से परेशान था।

अनता में अमन्तोय की आबना फलने लगी। एक केन्द्रीय शक्ति के अभाव में देश में लड़ाई-झगड़े बढ़ने लगे। जीवन की सुरक्षा भी सम्भव न थी। मर्न-सर्न देश अराजकता की ओर बढ़ने लगा। जब मिथ में यह घृह-यन्त्र था उसी समय एक उच्चकुल के सरदार ने शासन शक्ति पर अधिकार करने आरम्भ राजवंश की स्थापना की। उसने थीबीज (Tibebes) नामक नगर को सप्तमग २१६० ई पू में अपनी राजधानी बनाया। उसने पूरे देश पर ही अधिकार नहीं किया अपितु राज्य-नीमा को सीरिया तक बढ़ाने के प्रयत्न भी किये। मुख्यतया के साथ ही देश में फिर समृद्धि आई। व्यापार बढ़ा। उद्योग बनने लगे। सिन्धुई का मुद्रबन्ध हुआ, कृषि की उन्नति हुई। कर प्रामि के हेतु अमपलना का भीगलोय हुआ। मोल नहीं से एक नहर निकामकर मृग्यभापर और मात मागर को जोड़ा गया।

इस दौर की सम्पत्ति के साथ ही देश की समृद्धि भी विनीत होने लगी। देश की दशा फिर गिरन लगी। आरम्भे राजवंश न घटारह्ये राजवंश की स्थापना तक देश में और सम्यक्स्था का मोमबाला रहा। इतिहासकार इस विषय में एकमत नहीं हैं कि यह अराजकता किसने क्यों तक रही। कुछ इतिहासकारों का मत है कि यह देश १२० वर्षों तक रही। इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह अवधि २०० वर्ष तक ही रही। इन

अध्यवस्था-काल में ही मीरियावासी सैमिटिक लोगों ने मिश्र पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिए। फूट के कारण मिश्रवासी मुकाबला न कर सके और इन लोगों ने मिश्र पर अधिकार कर लिया। राजा हिकसॉम ने अपने राजवंश की स्थापना की जाकि मिश्री इतिहास में १६वें राजवंश के नाम से प्रख्यात है। इस राजवंश ने देश में शांति स्थापित की एवं मिश्री रीति रिवाजों का अपनाकर मिश्रीवासियों के हृदय में स्थान बनाने की चेष्टा की और अपने इस प्रयत्न में वह कुछ सफल भी हुआ। परन्तु इस वंश के अन्तिम शासकों के समय राज्य प्रबन्ध में बिचिन्नता आने लगी और राजा की शक्ति क्षीण होने लगी। मिश्रवासी विदेशी शासन को बर्नी भी पसन्द नहीं करते थे। शासन प्रबन्ध बिचड़ता गया और राजाओं का व्यवहार भी बड़ने लगे। अन्त में १३८० ई पू के लगभग ऊपरी मिश्र (Upper Egypt) के एक शक्तिशाली सामन्त अमोसिस (Amosis) ने मिश्रवासियों को संवर्धित किया और हिकसॉम वंश का अन्त करके १८वें राजवंश की स्थापना की।

अमोसिस (Amosis) के राज्य काल से ही मिश्री इतिहास का वह युग प्रारंभ होता है जिसे इतिहासकारों ने साम्राज्यवासी युग के नाम से पुकारा है। १३८० ई पू अमोसिस एवं कमोसिस नामक दो सरदारों ने हिकसॉस शासकों को पराजित करके मिश्र को पराधीनता से मुक्त किया। अमोसिस ने १८वें राजवंश की स्थापना करके एक नवीन युग का सूत्रपात किया। यह मिश्र के इतिहास का स्वर्ण-युग था।

इस राजवंश के शासन-काल में मिश्र में अस्थिरता उत्पन्न की। राज्य विस्तार के हेतु अनेक युद्ध लड़े गये एवं पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण आरम्भित किये गये। अमोसिस के पश्चात् अमेनहोतेप प्रथम (Amenhotep I) सिंहासनावधि हुआ। उसने अपने अल्प शासन-काल में अस्त-व्यस्त सामाजिक जीवन में स्थिरता स्थापित करने की चेष्टा की। अमेनहोतेप प्रथम के बाद थुमोज प्रथम (Thutmose I) ने राज्य-सत्ता बृद्ध की। अपने पूर्वजों की भाँति उसने भी हिकसॉस आगा के बिन्दु संघर्ष जारी रखा। उसने अपनी राज्य-सीमा फरात नदी (Euphrates) तक बढ़ा ली। उसके बाद उसका पुत्र अटमोज द्वितीय गद्दी पर बैठे परन्तु उसकी बहिन हतशपसुन (Hatshupsut) ने उसे सत्ता हथुल करके शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथ में ले ली। विश्व-इतिहास में बड़ी प्रथम महिला शासक की जिनसे मर्त्यप्रथम राज्य किया। वह हठ-निश्चयी, साहसी एवं बुद्धिमान लारी थी। उसने अपने निरन्तर

वर्ती राज्यों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित विधे शासन में एकदमता उत्पन्न करने की चेष्टा की और अनेक मन्दिरों एवं मकानों का निर्माण किया। करनाक (Karnak) के विकास एवं मक्य मन्दिर का निर्माण उसी के राज्य काल में हुआ था। क्लियोपेट्रा की सुईयें (Cleopatra's Needles) नामक इमारतों का निर्माण भी उसी के समय में हुआ था। हेतवेपगुल का पति बौटमोज तृतीय का कि अपनी पत्नी से बाधु में छाटा था अपनी पत्नी के दस वर्ष के शासन-काल में राज-सत्ता का उपयोग न कर सका।

हेतवेपगुल की मृत्यु के बाद बौटमोज तृतीय मिथ का राजा हुआ। वह अपनी पत्नी से इतनी घृणा करता था कि उसने हेतवेपगुल द्वारा निर्मित सब इमारतों के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवारें बनवा दी ताकि लोगों की दृष्टि उन पर न जावे। अनेक इमारतों पर से उसने अपना नाम मिटवा दिया। १८ वें एवं १९ वें राजवंश में वह सर्वाधिक तेजस्वी एवं प्रभावी शासक हुआ। वह एक महान योद्धा था। उसने मिस्री साम्राज्य का विस्तार करने के हेतु पनक कुछ लड़े। उसके पास एक विद्यालय स्वयं-सेना और एक शक्तिशाली नौसेना बड़ा था। उसने मूबान सीरिया फिलिस्तीन एवं पश्चिमी एशिया के कई छोटे राज्यों को विजय करके अपने राज्य में मिला लिया। इसके ३० वर्ष के राज्य-काल में मिथ के साम्राज्य में समृद्धि हुई। बौटमोज ने एशिया द्वीप-समूह को भी जीत लिया था और अपने एक योग्य सेनापति का बहादुरी का राज्यपाल नियुक्त किया। बीरता और एव विजयों के कारण ही उसे मिथ का 'मैपोमियन' कहा जाता है। अपने पूर्वजों की मूर्ति बौटमोज तृतीय ने भी मिस्री राज्य एवं स्वायत्त-रत्ता की उत्पत्ति में समुल्लेख शोध-दान किया। बीबील हीमियोपोलिस एवं अन्य अनेक स्थानों पर अपने सुन्दर मन्दिरों एवं मन्दिरों का निर्माण कराया। कारनाक के बिबल-मन्दिर में उसने अनेक प्रकोष्ठों एवं स्तम्भों का निर्माण कराया।

बौटमोज तृतीय के पश्चात् इतिहास हमारा परिचय घामेनहोतेप तृतीय से कराता है। वह एक महान्वय एवं उदार शासक था। यद्यपि वह बौटमोज की मूर्ति महान योद्धा न था। बौटमोज तृतीय ने मिथ को एक महान साम्राज्य दिया घामेनहोतेप ने उसे एक स्थायी प्रशासन प्रदान किया। मन्मर के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण उसी के समय हुआ था। इनके अतिरिक्त उगने अनेक मक्य एवं सुन्दर विरेमिड एवं मूर्तियाँ बनवाई।

घामेनहोतेप के उपरान्त उगना पुत्र घामेनहोतेप चतुर्थ मिथ का पराजोड

हुआ। वह ई० पू० १३७५ के लगभग मिहाननाम्न हुआ। उसके १७ वर्ष के राज्यकाल में मिथी साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। इसका मूल कारण यह था कि घामेनहोतेप चतुर्थ एक दान्तिप्रिय राजा था और रक्तपात एवं युद्धों से घृणा करता था। घामेनहोतेप की महानता युद्धों एवं विजयों के कारण नहीं है न ही वह कुछसा शासन प्रबन्ध के कारण से है। इन दोनों बातों में वह अपने महान पूर्वजों की तुलना में अत्यन्त अयोग्य राजा हुआ। उसकी वास्तविक महानता उसके मौखिक विचारों एवं क्रान्तिकारी धार्मिक सुधारों में निहित है। वह एक आधुनिक विचारशील एवं दयालु राजा था। वह अपने समय से कहीं आगे था। वह एक महान धार्मिक या और अपने प्रतिस्पर्धी विचारों से प्रेरित होकर उसन मिथ के उत्कामीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अनेक क्रान्तिकारी सुधार किए। इस दृष्टि से उस हम मिथ का अघोर्ष कह सकते हैं। उस समय सम्पूर्ण मिथ का कोई सब प्रचलित धर्म न था। प्रत्येक प्रांत के प्रत्येक प्रदेस के—यहाँ तक कि प्रत्येक पाँच के पृथक्-पृथक् अपने-अपने अलग-अलग देवता थे। धार्मिक दृष्टि से मिथवासियों की ब्रह्मा उस समय वैसी ही थी वैसी कि धार्मिक विद्वानों के अनेक धार्मिक धर्मियों की है। कभीसे और परिवारों के अपने-अपने देवता और देवियाँ थी। धार्मिक एकता का अभाव था। धर्म के वास्तविक महत्त्व से लोग अपरिचित थे। सूर्य देव राँ (Ra) यमलोक का देवता ओसिरिस (Osiris) एवं उसकी पत्नी आइसिस (Isis) इन दोनों के पुत्र होरस (Horus) सब कुछइयों का प्रगुता सेट (Set) धार्मिक अनेक देवताओं की विभिन्न रूपों में पूजा की जाती थी। मानवीय संस्कृति और सभ्यता की प्रगति में धर्म ने अदृष्ट रूप से जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उसके इस रूप से प्राचीन मिथवासी अनभिज्ञ थे। पूजा के मूल में उस देवता-विशेष के प्रति भय एवं आर्तक की भावना होती थी। धर्म के रक्षणार्थक एवं लोक कल्याणकारी रूप का प्राचीन मिथवासियों को ज्ञान न था। बहु-देव पूजा प्रणाली के स्थापन पर घामेनहोतेप चतुर्थ ने कमल एक ही देवता की पूजा प्रारम्भ की। इस देवता का नाम एहन था और यह सूर्य का प्रतीक था। घामेनहोतेप एहन को निरन्तर सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिशाली मानता था। अद्भुत चर-अपर सब उसके ही प्रकट से प्राप्त होते थे। यही जन-पिता एवं सृष्टि कर्ता था। वह प्रतिकार एवं प्रतिहिंसा की भावना से परे था। वह सबके प्रति समान रूप से दयालु था। इस प्रकार घामेनहोतेप न धर्म को मूर्ति-पूजा से ऊपर उठा कर एक उच्च धार्मिक मार्ग प्रदान किया, जिसका

अनुमरत ईसाई और यहूदी धर्मों ने भी बिना। धर्म के बिना प्रकृति धर्म ने
 प्रायः के इन धनु-सुग में भी लोग अपवित्रित है उनका उपवेश धामेनहनेप
 ने प्रायः के मतमय २६०० वर्ष पूर्व दिया। धामेनहनेप ने हमी विचारधारा
 ने अनुप्राणित होकर अपना नाम भी धामेनहनेप से बदलकर अकनातन
 (Akhnaton) रखा जिसका अर्थ है एतन (Aton) को संतुष्ट करने वाला।
 अकनातन का देवता एतन प्रकृति धर्म धर्म में अनुप्राणित होने वाला था। इसीलिए
 अकनातन ने मन्दिरों में एतन की प्रतिमा की स्थापना नहीं की और न ही अपने
 राज्य की रक्षा के लिए सृष्टि का सहारा लिया। उसने अपनी प्रजा को प्रेम
 और सहिष्णुता का संदेश दिया और अपने वास्तविक ज्ञान में उसने इन
 धर्मों का व्यावहारिक रूप में अपनाया। यही कारण था कि उसने हिब्रू
 और हिती जाति के राजाओं के विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़ी, यद्यपि हमने
 परिलामस्वरूप उसे फिलिस्तीन और सीरिया से हार भोगा था। मिस्र की
 जनता इन अन्तिकारी सुधारों के लिए प्रभुत्व नहीं थी और न ही वह बौद्धिक
 रूप से इस योग्य थी कि अकनातन के मौलिक विचारों का स्वागत कर पाती।
 यह कारण था कि अकनातन की मृत्यु के साथ ही उसके सुधार भी समाप्त
 हो गए। वह १८वें वर्ष का अन्तिम महान राजा था। अठारह वर्ष के
 शासनकाल के पश्चात् ३० वर्ष की आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई। विरल
 इतिहास में आपस में प्रथम सम्राट का जिसने राजन के हेतु सृष्टि के स्थापन
 पर प्रेम की अपनाया। उसने पीबीए के स्थापन पर अमरता की राजधानी
 बनाया था।

अकनातन के बाद उसका बालक तुतनखातन (Tutankhaton)
 मिस्र का कप्तान हुआ। परन्तु अपनी अल्प आयु के कारण
 वह युवराज-पूर्वक शासन न कर सका और पीबीए ही बिना देकर उनकी हत्या
 कर दी गई। होर्नहब (Horemhab) नामक एक सेनापति ने राज्य पर
 अधिकार करके कप्तान का पद ग्रहण किया।

होर्नहब के बाद में १६वें राजवंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश के
 तिस्रो परमाह्वों का इतिहास में प्रमुख रूप में उल्लेख है यों में प्रथम
 (Seti I) एवं उसका पुत्र रामसेस द्वितीय (Ramesses II)। मती प्रथम
 एक सृष्टिवादी धर्मक था। अकनातन के समय में लगे हुए प्रयोगों का
 पुनः प्राप्त करना ही उनकी एकमात्र आकांक्षा थी। उनमें हिब्रू एवं हिती
 लोगों से संबंध जारी रखा और उनके धार्मिकों से देश की रक्षा की। उनके

ममय में देश में पुनः एक बार जीवन के प्रति एक उत्साह का भाव जाग्रत हुआ और लोग उत्साह-पूर्वक अपने कामों को पुनः प्राप्त करने में लग गए। मेरी प्रथम के इस कार्य को उसके योग्य पुनः रेमजेज द्वितीय ने पूर्ण किया। वह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। मिथी साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने अनेक युद्ध किए। सुडान एवं सीरिया पर आक्रमण किए। हिंदी मार्गों से वह लगातार १६ वर्ष तक लड़ता रहा। इस दीर्घकालीन युद्ध का अन्त रेमजेज द्वितीय एवं हिंदी सम्राट के मध्य एक मैत्री सन्धि हुआ। रेमजेज एक महान कला प्रेमी राजा था। उसने न्यूबिया (Nubia) में अबु सिम्बल (Abu Simbel) के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण कराया। कर्नाक (Karnak) एवं लक्सर (Luxor) के प्रसिद्ध मन्दिरों अनेक अन्य स्तम्भ एवं प्रकीर्ण वनबाए। उसे अपने यक्ष और नाम न इतना प्रम था कि उसने अपनी बनावट हुई इमारतों पर अपनी कीर्ति के लेख लिखाए, अपनी मूर्तियाँ स्थापित करवाई और यहाँ तक कि अन्य राजाओं द्वारा निर्मित मकान पर से उनके नाम मिटवा करके स्वयं अपना नाम खुदवाया।

सम्भवतः रेमजेज के पुत्र मर्नेप्तेह (Mernepteh) के शासन-काल में ही हिब्रूओं के नेता मोशेज (Moses मुसा) ने अपनी जाति को दासता से मुक्त किया था। लगभग ११५ ई. पू० तक मिस्र में खास्ति-पूर्वक शासन चलता रहा। परन्तु ११५ ई. पू० के लगभग एजिप्ट (Aegyptian) लोगों ने मिस्र पर आक्रमण किया यद्यपि रेमजेज तृतीय ने उन्हें पराजित करके मगा दिया। फिर भी आक्रमणों का अन्त न हुआ। मिस्र का पतन आरम्भ हो चुका था। मिस्र पर क्रीट (Crete) साइप्रस (Cyprus) एवं सुमरसामर के उत्तरी देशों के आक्रमण आरम्भ हो गए थे। फराओह की सत्ता क्षीण हो रही थी। देश में अस्थिरता थी। मिस्र का गौरव सभ्यताकालीन पूर्व की भाँति सदैव क्षीय हो रहा था। जनता में विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये पर्याप्त संगठन और शक्ति न थी। शासक न अपनी सैनिक शक्ति बनाए रखने के लिये देशवासियों का भरोसा छोड़कर के विदेशियों का रखना शुरू कर दिया था। ई. पू. ७२२ में न्यूबियावासियों (Nubians) ने मिस्र पर अधिकार कर लिया और मिस्र के इतिहास में प्रथम बार फराओह के स्थान पर एक नोब्रा नामक सिंहासन पर बैठे। पर यानो भाष्य मिस्र में बिलकुल कठ गया हो ई. पू. ६७० में असीरिया (Assyria) के सम्राट ईसाहूडन (Esarhaddon) ने मिस्र को जीत कर असीरियन साम्राज्य में मिला लिया। कालवक्र मिस्र के विरुद्ध चल रहा था—मिस्र-वासियों ने

पुनः समस्त शक्ति संचित करने बिरोह किया। स्वाधीनता प्राप्त की और जब वे इसका उपयोग करने ही वाले थे तभी मिस्र को फिर संकट का सामना करना पड़ा। फराखाइ सेमिटिकस प्रथम (Phammetuchus I ई० पू० ६१४-६१०) ने मिस्र को असीरियन प्रभुत्व से मुक्त किया। उसके उत्तराधिकारी नीका द्वितीय ने सीरिया पर पुनः अधिकार कर लिया। यहूदियों के राजा जोशिया को पराजित करके मार डाला। यह प्रसिद्ध युद्ध मेगिडो (Megiddo) नामक स्थान पर हुआ था। परन्तु जीम हो नीको द्वितीय का स्वास्थियन सम्राट नेबूचदनेज़ार (King Nebuchadnezzar the Chaldean) ने पराजित करके मिस्र साम्राज्य के पश्चिमी एशिया के प्रदेशों पर अधिकार कर दिया। मिस्र अभी इस पराजय की कटुता का मुला भी नहीं पामा था कि ई० पू० ६२१ में ईरान के सम्राट कम्बेसिस (Cambyses) ने मिस्र पर आक्रमण करके उसे ईरानी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। पाट समय बाद मिस्र-बासियों ने फिर बिरोह करके अपने को स्वाधीन घोषित कर दिया। ६० वर्षों (ई० पू० ४० - ३४०) तक वे इस स्वाधीनता को उपभोग करते रहे। बार-बार वे आक्रमणों से मिस्र सामरिक एवं सैनिक शक्ति की दृष्टि में बहुत कमजोर हो गया था इसलिये ई० पू० ३३२ में अलेक्जेंडर महान के आक्रमण के सम्मुख उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। ई० पू० ३३२ से बाद का इतिहास मिस्र का सम्बन्ध है क्योंकि इसके बाद पुनर्जीवित रामन-बासा घरक-बासों लुई एवं सीरिया ने मिस्र पर समय समय पर आक्रमण किये और रागव किया। जब पर पड़ी हुई निररहून वस्तु का प्रति निध का विभिन्न क्षणों में पराजित किया। १४ मार्च मन् १६० का सीरिया ने मिस्र को स्वतन्त्र करके यहूद पराजित का सर्वप्रमुख सम्पन्न सम्राट स्वीकार किया।

मिस्र की सम्पत्ता ने अपने जीवन में अनेक प्रकार के उत्थान पतन दन है। जमन पुरातन पर अनेक प्रभाव लगी जाना। इसका कारण यह था कि पुरातन की सम्पत्ता का विभाग पुनर्जीवों और रामना के बाद हुआ और यह आतिथी मिस्र की सम्पत्ता के बाद में ही अपना विभाग कर गया था। प्राचीन ग्रीक इत्यादि की सम्पत्ता पर मिस्र का सीधा प्रभाव पड़ा था। मिस्र का भारत में प्राचीनतम काल में आ सम्बन्ध था। मोहनजोदरो में प्राप्त पाषाणों में ऐसा प्रगट होता है। मिस्र में इनका विकास किस प्रकार हुआ इस पर भी दो मत हैं—

(१) मिस्र की सम्पत्ता ने अपने आप बड़ी रह कर विकास किया।

(२) मिथ में सम्मता माने जाने वाले धर्मग्रन्थ (संभवतः भारत) से बहुत आकर बसे थे। लेकिन इसके कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिले हैं। अधिक से अधिक यही सगवा है कि प्राचीन भारत और मिथ में सम्बन्ध था और एक दूसरे का प्रभाव ग्रहण करना कोई आश्चर्य की बात नहीं माना जा सकती है। मिथ ने जीवन के घनक क्षेत्रों में विकास किया था परन्तु उसमें भारतीय संस्कृति की ही भाव और विचार-समृद्धियाँ नहीं मिलती।

मिस्र की महान संस्कृति की नींव नील नदी की बल घाटि पर रखी गई थी। सुमेरियन बैबिलोनियन एवं भारतीय संस्कृति की भाँति मिथ की संस्कृति का जन्म एवं विकास नील नदी की सहरो के उत्तर-पश्चिम के साथ हुआ। बज्जा-उरात और सिन्ध घाटी की सम्मता की भाँति ही नील नदी की घाटी में भी आज से हजारों वर्ष पूर्व मानव ने घर और परिवार में रहना सीखा, कृषि और सिंचाई का प्रारम्भ किया व्यापार के लिये विदेश यात्राएँ करना शुरू किया प्रशासन के हेतु सत्ता रखना, अपने अन्तरात्मक सौन्दर्य का सुव्यक्तन रूप प्रदान करने के लिए मध्य भवना विद्यालय पिरैमिडों एवं सुन्दर मूर्तियों की रचना करना और अपनी सफलताओं एवं कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के हेतु चित्रलिपि एवं बर्तन-लिपि का प्रयोग करना सीखा। आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व मिथ में अनेक नगर राज्य थे। अनेक नगर राज्यों की शक्ति पारस्परिक दुजो के परित्यागस्वरूप धीरे-धीरे होती गई और ये राज्य अपने-अपने स्वार्थों के अनुसार अन्य राज्यों में मिलते गए। अन्त में सम्पूर्ण मिथ में केवल दो ही राज्य रह गए—ऊपरी मिथ एवं निचला मिथ। मिथ ने इन दोनों भागों का मिला कर एक राष्ट्र का रूप देने का ध्येय माना था। इसी प्रकार आदिम मिथवासी ने क्रमान्तर में पशु-पासन कृषि कारीगरी एवं व्यापार अपनाए। व्यक्ति ने समाज को जन्म दिया और उसी के साथ अनुपम नैतिक सम्बन्ध एवं पारिवारिक जीवन को अपनाया। इस प्रकार सम्मता के विकास के साथ जीवन अन्तिम होता गया। प्राचीन मिथ की सम्मता का अध्ययन करने के हेतु यह आवश्यक है, हम प्राचीन मिथ-वासियों के जीवन के प्रत्यक्ष अंग से परिचित हों।

बच्चा पैदा हुआ ही रोता है और साथ ही जैँ-जैँ वह बड़ा होता जाता है, उसके हृदय में भय की भावना विकसित होती जाती है। इसीलिए व्यक्ति अज्ञात एवं अदृष्ट से अलङ्कित रहता है और उससे अपनी रक्षा करने के लिए उस प्रसन्न एवं संतुष्ट रचना चाहता है। इस भावना से ही अंध-भडा क-

चंद्र पूजे पूजा का अन्त हुआ—देवी और देवताओं के प्रतिष्ठा की कल्पना की गई। मिथ का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। प्राचीन मिथ में धर्म का रूप धर्मियर एवं अस्पष्ट था। स्वर्ग-स्वर्ग पर धूमक-धूमक मठ या बिरवालों का बोधवाया या मिथ-मिथ स्वर्गों पर मिथ देवी देवताओं की पूजा-हीर्षी थी। प्राकृतिक रहस्या का अनुमान करना या रोग घाति के वास्तविक कारणों की खोज करना प्राचीन मिथ-वासियों के लिये सम्भव न था। धनान्ता न रूप को प्रथम विद्या और यह भय ही मिथवासियों का धर्म और पूजा का आधार था। उस समय एक राष्ट्रीय या सामुदायिक धर्म जैसी कोई शक्ति न थी। धर्म के उच्च धार्मिक या दार्शनिक महत्त्व से सोच परिचित न थे। बाबु-दोना में देवताओं की शक्ति का अनुमान लगाया जाता था। मिथवासियों पशुओं की भी पूजा करते थे। बाज को देवता का प्रतीक मानते थे। वृषभ और बकरे की पूजा करते थे क्योंकि उनके बिदावानुसार वे पशु देवताओं के ही रूप थे। मिथवासी धर्मों की शक्ति प्राकृतिक शक्तियों की भी पूजा करते थे। चाकण (मिथु) धूम्र (हामर) जन्मा (मिथ) और सूर्य (रा एवं होर) की उपासना होती थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राचीन मिथ में लगभग २२०० देवताओं की पूजा प्रचलित थी। मिथी ममी इस तथ्य की मसी-शक्ति स्पष्ट करती है कि प्राचीन मिथवासी एक पारंपरिक जीवन में विश्वास करते थे और मृतक की आत्मा के सुख के लिए ही उनके शरीर को सुरक्षित रखते थे एवं उसके साथ उसके जीवनकाल का प्रिय एवं बहुमुख्य वस्तुएँ रखना दन थे। विद्वानों में पाप धर्म इन मुद्दों का वास्तविक इतिहास ही मिथ की सच्ची संस्कृति का सही विवरण है। प्राचीन मिथवासी मृत आत्माओं का पत्र प्रार्थन एवं ममार्जन का सिंग पुस्तिकाएँ रन दन थे। 'मृत आत्माओं का पुस्तक (The Book of the Dead) न मृत आत्माओं की आत्मा कठिनाई का सामना करने का उपाय होते थे। 'मिथु का कहना (The Tale of Senuhe) नामक एक कहानी प्राप्त हुई है जिसमें प्राप्त होता है कि वह मृतक के साथ प्रमिता रन का जानी थी ताकि उनकी आत्माओं का ममार्जन प्राप्त होता रहे। रन का देवता के समान समझा जाता था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उनकी प्रति की स्थापना की जाती थी।

राज्य धार्मिकतत्त्व बहुत या धनान्ता एवमात्र ऐसा व्यक्ति का प्रिय धर्म का धार्मिक मुख को समझा और उन नाकारिक तत्वों की प्रति का सामन न मानकर आत्माओं के हनु प्रत्यक्ष-शक्ति के रूप में ग्रहण

किन्ना । उसने एहन (सूर्य) की पूजा प्रचलित की । वह मूर्ति-पूजा का विरोधी था और निराकार एवं सर्वव्यापक सर्वोच्च शक्ति में विश्वास करता था । एहन ही वह महानतम शक्ति थी । उसके धर्म की व्याख्या बड़ी सूक्ष्म की और उसका विश्वास था कि 'एहन' प्रत्येक प्राणी के प्रति—पशु पक्षी प्रभवा मानव आदि सबके लिए समान रूप से ब्याप्त है । वह इस ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता है और इसमें निवास करने वाला सब प्राणियों का पिता है । परन्तु जैसा कि प्रत्येक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या के साथ होता आया है अनेकतम का धर्म भी प्राचीन मिथवासियों में लोक-प्रिय न हो सका । उसकी विद्वत्तापूर्ण एवं शार्ङ्गिक व्याख्या जैसे क धम्मुक बीम बचाने के समान सिद्ध हुई । इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा की अमरता में ही प्राचीन मिथवासियों का वा विश्वास था वह केवल एकमात्र ऐसी महत्त्वपूर्ण बात थी जिसका प्रभाव अन्य धर्मों पर पड़ा ।

मिथ-वासियों का सामाजिक जीवन सर्वत्र विकासोन्मुख रहा । राष्ट्रीय गौरव और भौतिक समृद्धि के साथ-साथ उनका सामाजिक जीवन भी उन्नत होता रहा । प्रारम्भ में केवल दो ही वर्ग थे—सासक एवं शासित । परन्तु सम्मता की प्रगति के साथ उनके जीवन में भी अद्विष्टता आने लगी । कृषि व्यवसाय प्रमुख पेशा था । अच्छी प्रतिष्ठित जनता जीवन यापन के हेतु कृषि पर निर्भर करती थी क्योंकि नील नदी से उन्हें पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता था । नील नदी के जल ने एक नए वर्ग के लोगों को जन्म दिया जिनका मुख्य कार्य नील नदी से महरो और छोटे छोटे बाँध बनाकर इन्तुक्त व्यक्तियों को दूर दूर तक जल मुहम करना था । इन सेवा के बदले में वे 'कर' या पारिवसिक बसूम करत थे । कालान्तर में इसी वर्ग में कृषका पर प्रभुत्व अमातर अपना सम्पत्ति में वृद्धि की और मिथ में सामन्तवाद का जन्म हुआ । स्वाम-स्वान पर सामन्त थे वा अपन-अपन विधाय क्षेत्रों में निवास करने वाले किसानों से कर वसूल करत थे और अपन क्षेत्रों में विस्तार करने के हेतु पड़ोसी सामन्तों से युद्ध करत थे । राजा की शक्ति के साथ सामन्तों की शक्ति भी मा मान्यता प्राप्त हुमे लगी । सामन्तों के अतिरिक्त एक बुद्धिजीवी वर्ग था । यह पुरोहित वर्ग था । धार्मिक सत्ता एवं अपन उच्च ज्ञान के कारण जनता में उनका स्वाम सर्वोपनि था । प्रारम्भ में पुरोहित-पुजारी अपनी प्रकाश विद्वत्ता, असीम सहिष्णुता एवं महाम त्याग के कारण जनता द्वारा भाव्य होते थे । परन्तु धन, कर्न, व्यक्तिगत श्रेष्ठता का लोप होता गया और पुरोहित का कार्य पशुक हाता गया । य लोप जनता के पद प्रदर्शक समझे जाते थे

एवं जनता रैबी-शकोप शय्या रोग से बचने के हेतु इनकी ही सरस्य मली थी ।

कालान्तर में देश में दो धीरे बर्गों ने जन्म लिया । राजाघा के समय में देश में स्थापत्य एवं मूर्ति कला को प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप कापीगर लोग प्रतिष्ठित में प्राये । पुरोहित एवं सामन्तों की भाँति उनके हाथों में कोई सत्ता न थी । फिर भी मिथ में उन्हें समाज में अपनी कारीगरी के कारण पर्याप्त भावर प्राप्त था । मिथ में बाघ-ग्रहा प्रचलित थी । मिथी फराओह विदेशी आक्रमणकारियों को पराजित करने पर उनके सैनिकों को बन्दी बनाकर हाथ के रूप में प्रयुक्त करते थे । अपराधियों से भी बन्धपूर्वक सजा-बार्स कराया जाता था । मिथ के विद्यालय विरैमियों एवं मन्त्रियों के निर्माण में इन पुत्राभा से ही काम लिया जाता था ।

देश एवं समाज में फराओह का स्थान सर्वोपरि था । वह राजसत्ता पर पूर्ण अधिकार रखता था । उत्तरासीन ध्वंसित विरहासनुसार वह देवता होता था । अतः धार्मिक जीवन में भी सर्वोच्च होता था । वह अपनी प्रजा के जीवन का स्वामी होता था । वह निरंकुश सामक होता था । उसके अनेक राजियाँ शसियाँ एवं हाथ होने थे ।

प्राचीन मिथवासियों में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी । प्रारम्भ में जब मिथ में मातृसत्तात्मक (Matriarchal) समाज था पुरुष पत्नी से धार्मिक था । परन्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने जब मातृसत्तात्मक व्यवस्था पर अधिकार कर लिया तो बहु-विवाह का उद्भव हुआ । परन्तु गजकुल में सम्बन्धित उच्च व्यक्तियों एवं सामन्तवर्ग के प्रतिष्ठित सामान्य मिथवासी प्रायः एक ही विवाह करता था । बर्बाह्म सम्प्रदाय का पालन सम्भीष्टापूर्वक किया जाता था । समाज में स्त्री का भावर होता था और यद्यपि उसको कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे फिर भी वह पुण्या के समान ही स्वतन्त्रता का उपभाग करता थी । प्रारम्भ में मिथ में अग्नि विवाह भी प्रचलित था जैसा कि वह आज भी कई जगहों में आदिवासीयों में प्रचलित है । पवित्रतम रक्त एवं ध्येष्ठतम बर्ष को कर्मा का प्रमाणता भी जाती थी इसीलिए लाग अपनी अधिकारी में विवाह कर लेते थे । बाद में इस प्रथा का सीप ही गया ।

धार्मिकता में मिथवासी प्रायः नम्र रहते थे । परन्तु धार्मिक-ज्ञान में लज्जा के भाव का जन्म दिया और स्थियों ने अपने जन्म प्रवेश को मनुष्यों की शक्त से करना सीखा । पुरुषों ने उनका अनुकरण किया । धीरे-धीरे उन्होंने तन की

करने के लिए धन्य वस्तुओं को भण्डाया। साम्राज्यवाद से पूर्व मिस्र में बस्त्र निर्माण का आविष्कार नहीं हुआ था। धन किछोर व्यवस्था तक प्रायः बालक एक बालिकाएँ मर चुकीं परन्तु जीवन-भावमन के साथ वे अपनी बटि के चारों ओर आस लपेटना शुरू कर देते थे। तब का ऊपरी भाग लपट रहता था। मुश्कियाँ कमर में गोशियों की माँसा पहनती थीं। बाबू म जब व्यापार बढ़ने लगा और देश में समृद्धि आई तो मिथवासियों ने बिबिसिया से मोटा पहनना छोड़ा। निर्बल बर्ग के लोग स्त्री एवं पुरुष दोनों मोटी पहनते थे। उच्च बर्ग के लोग कीमती बस्त्र पहनते थे। मिस्र में साम्राज्यवाद-युग में बस्त्र निर्माण आरम्भ हो गया था। सभी से मिथवासियों की बेच-भुजा में बहुलता और बिबिसिता भी आ गई थी।

प्राचीन मिथवासियों को बालकाल एवं धातूपणों के प्रति बहुत शाय था। स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से धातूपणों का प्रयोग करते थे। इतिहासकार डेविड के मतानुसार मिस्र ही वह देश था जहाँ सर्वप्रथम धातु का उपयोग आरम्भ हुआ। मिथवासियों ने सिनाई के क्षेत्र में ताम्र की खाना भी खोज की। यद्यपि यह अनुमान लगाया जाता है कि मिथवासिया न काष्ठ पापाएँ एक दुर्लभ छीपियों की ही बालकाल के रूप में प्रयुक्त न किया मसिप्त उन्होंने धातु के धातूपणों से भी अपने शरीर को बालकृत करना सीख लिया था। थोडी (Thebes) के निकट धामेसहीउप की कब में वो बहुमुख्य धामयो प्राप्त हुई है उससे ज्ञात होता है कि धान और चाँदी के धातूपणों का प्रयोग उस समय के राजकुम के व्यक्तिता द्वारा सामान्य रूप से किया जाता। राजकुम एवं धनी धामयत बर्ग के लोग अत्यन्त कीमती बस्त्र पहनने के दिन पर धीन धोर चाँदी की सजावट होती थी। स्त्रियाँ कानों में कुण्डल लन में हार बाकुमा म बहुमुख्य कगम एवं हाथ म सुन्दर कंकन धारण करती थी। धरणों एक नाभूनों का सुन्दर बनाव के लिए स्त्रियाँ विभिन्न वस्तुधा लेप का प्रयोग करती थी। युव के सौम्य में बुद्धि के हेतु व युगधिन पाठकर धादि का प्रयोग करती थी। पुरुष धातु की एवं कुण्डल का प्रयोग करते थे एक गल में गोशियों की माँसा पहनते थे। प्राचीन मिथवासियों की बस नूपा स स्पष्ट हो जाता है कि अपने शारीरिक सौम्य के प्रति समुच्च का आकर्षण धान से हजारों वर्ष पूर्व भी बसा ही था वैसे कि धातुनिक युग में है।

जीवन के धनेक क्षेत्रों में मिथवासी अपने समकालीन धन्य देशवासियों

से प्राये थे। साहित्यिक क्षेत्र में मिथवासियों की प्रगति प्राचीन सुमेरियन या बेबिलोनवासियों से कहीं अधिक घण्टी थी यद्यपि अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि सुमेरियन या मिथवासियों में से किसने किससे भाषा ज्ञान सीखा। दोनों का भाषा ज्ञान समान होता हुआ भी मिथवासियों ने सैन्य कार्य की अपेक्षाकृत सीध ही अपना लिया। प्राचीन मिथ में प्रारम्भ में बिज सिपि प्रचलित थी। य बिपि व्यञ्जनों के प्रतीक-वाचक थे। प्राचीनतम मिथी लेखों में बिज-सिपि का ही प्रयोग मिलता है। यह सिपि संकेत लिपि न थी। बादतः में मिथवासियों को इस बात का बोध प्राप्त है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम बिचार-सिपि का आविष्कार किया। प्राचीन मिथवासियों केवल संज्ञावाचक एवं गर्वनाम के लिये बिज का प्रयोग न करते थे अपितु क्रिया का बोध कराने के लिए भी बिजों का उपयोग करते थे जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः से समस्त ६०० वर्ष पूर्व मिथवासियों ने बिचारों की अभिव्यक्ति के लिए बिपि लिपि का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। फिर भी प्राचीन मिथ में वर्ण-लिपि का पूर्ण ज्ञान न था। इस विषय में उन्होंने सुमेरियन भाषा का अनुकरण किया। उनकी सहायता से उन्होंने अपनी २४ व्यञ्जनों की बस भाषा का विकास किया।

सरकण्डों की वस्तु स्थायी काल के लिए दान का प्रयोग सैन्य-सामग्री के रूप में होता था। सम्भवतः इस क्षेत्र में मिथवासियों सबसे घण्टी थे। उन्होंने कागज (पेपरस कागज) बनाना एवं स्थायी के रूप में प्राकृतिक सम्पत्ति को धर्मस्थ निधि प्रदान की है। सरकण्डों की कल्प का आविष्कार भी उन्होंने किया था। वे मिट्टी की दाना और बाइ एवं कुछ सूखी वन पत्तियों के गुहा में बनी हुई रसायन का प्रयोग करने थे। इनका यह धारणा पर यह कुछ ऐसी ही प्राचीन कागज है जो बिपि के प्राचीन नगद्वारा से प्राप्त किए गए हैं। इनमें कुछ ऐसी कागज है जो १३५ एडि एम्बे और १० इंच चौड़े हैं।

इस प्रकार प्राचीन मिथवासियों ने साहित्यिक प्रगति के हेतु धार्मिक एवं सैन्य-सामग्री बनाना सीखा था। इनके फलस्वरूप मिथ में साहित्य के क्षेत्र में प्रथम प्रगति हुई। देवताओं की स्तुति एवं महान राजाओं का प्रशंसा में काव्य रचना होती थी। यह धार्मिक एवं सैन्य के लिए कहा गया लिपि मिली जात थी। ऐसी ही एक कहानी मिथ के एक प्राचीन पिपमिड में प्राप्त हुई है। इसका नाम है सिप्पु की कहानी। इनके पवित्र मृत धार्मिकों के पद प्रदर्शन के लिए कुछ निवेदन या सिद्धांत उसकी कल्पना में

बनने के लिए अन्य वस्तुओं को अपनाया। साम्राज्यवाद से पूर्व मिथ में बन्धु निर्माण का आविष्कार नहीं हुआ था। भूत किछोर समस्या एक प्रायः बालक एक बालिकाएँ नग्न रहतीं परन्तु जीवन-यागमन के साथ वे अपनी कटि क आरों और खाल लपेटना शुरू कर देते थे। तब का ऊपरी यात्र नग्न रहता था। दुर्भाग्यवश कमर में गोमियाँ की भाँसा पहनती थी। बाद में जब व्यापार बढ़ने लगा और देश में समृद्धि आई तो मिथवासियों ने निर्वासिता से मोती पहनना सीखा। निर्बल वर्ग के लोग स्त्री एवं पुरुष दोनों मोती पहनते थे। उच्च वर्ग के लोग कीमती बन्धु पहनते थे। मिथ में साम्राज्यवाद युग में बन्धु निर्माण आरम्भ हो गया था। उसी से मिथवासियों की बेछ-रूपा में बहुमता और विविधता भी आ गई थी।

प्राचीन मिथवासियों को धर्मकारा एक धामूपछा के प्रति बहुत चाव था। स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज रूप से धामूपछों का प्रयोग करते थे। इतिहासकार बेबिन के मतानुसार मिथ ही वह देश था जहाँ सर्वप्रथम धातु का उपयोग आरम्भ हुआ। मिथवासियों ने सिनाई के क्षेत्र में तब की जालों की खोज की। भूतएक यह अनुमान लगाया जाता है कि मिथवासियों ने काष्ठ पाषाण एवं दुर्लभ सीपिया की ही धर्मकार के रूप में प्रयुक्त न किया अपितु उन्होंने धातु के धामूपछों से भी धर्म सरीर को धर्मकृत करना सीख लिया था। थीबीज (Thebes) के निकट ग्रामेनहोरोप की कब्र में जो बहुमुख्य सामग्री प्राप्त हुई है उससे ज्ञात होता है कि सोने और चाँदी के धामूपछों का प्रयोग उस समय के राजकुमारों की व्यक्तिगत द्वारा सामान्य रूप से किया जाता। राजकुमार एवं धनी सामान्य वर्ग के लोग धर्मकृत कीमती वस्त्र पहनते थे जिन पर सोने और चाँदी की सजावट होती थी। स्त्रियाँ काला में कुण्डल धन में हार बाहुमा में बहुमुख्य वस्त्र एवं हाथों में सुन्दर कंकल धारण करती थी। धर्म एवं भावनाओं को सुन्दर बनाने के लिए स्त्रियाँ विभिन्न वस्तुओं के लेप का प्रयोग करती थी। मुख में सोम्यर्य में कृत्रिम हनु में सुश्रुत पाउडर आदि का प्रयोग करती थी। पुरुष धँसूटी एवं कुण्डला का प्रयोग करते थे एवं गल में गोमियों की भाँसा पहनते थे। प्राचीन मिथवासियों की देह रूपा से स्पष्ट हो जाता है कि अपने धारीरिक सोम्यर्य के प्रति मनुष्य का धर्मकृत धातु से हजारों वर्ष पूर्व भी वैसा ही था जैसा कि धामुनिक युग में है।

बीबिन के धर्मकृत धँसों में मिथवासी अपने समकालीन अन्य देशवासियों

मे भाये थे। साहित्यिक क्षेत्र में मिथवासियों की प्रगति प्राचीन सुमेरियन या मेसिलोनवासियों से कहीं अधिक घण्टी की यद्यपि अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि सुमेरियन या मिथवासियों में से किसने किससे भाषा ज्ञान सीखा। दोनों का भाषा ज्ञान समान होते हुए भी मिथवासियों ने लक्षण बार्ब को प्रयोगात्मत सीख ही अपना लिया। प्राचीन मिथ में प्रारम्भ में चित्र लिपि प्रचलित थी। यह चित्र व्यक्तियों के प्रतीक-भाव थे। प्राचीनतम मिथी देशों में चित्र लिपि का ही प्रयोग मिलता है। यह लिपि संकेत लिपि न थी। वास्तव में मिथवासियों को इस बात का ध्येय प्राप्त है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम विचार-लिपि का आविष्कार किया। प्राचीन मिथवासियों केवल सजाया एवं नर्बनाम के लिये चित्र का प्रयोग न करते थे अपितु क्रिया का बोध कराने के लिए भी चित्रों का उपयोग करते थे जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राक् में लगभग ६०० वर्ष पूर्व मिथवासियों ने विचारों को अभिव्यक्ति के लिए विविध लिपि का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। फिर भी प्राचीन मिथ में बर्तन-लिपि का पूर्ण ज्ञान न था। इस विषय में उन्होंने सुमेरियन लोगों का अनुकरण किया। उनकी सहायता से उन्होंने अपना २४ व्यंजनों की बण भाषा का विकास किया।

सरकरवा की नन्दक स्थाप्ता कागज और रबान का प्रयोग मेसल-सामग्री के रूप में जाना था। सम्भवतः इस क्षेत्र में मिथवासियों सबसे घबरी थे। उन्होंने कागज (पेरिपस कागज) कमजोर एवं स्थायी के रूप में प्राकृतिक सम्पत्तियों को समुचित निधि प्रदान की है। सरकरवा की कस्तम का आविष्कार भी उन्होंने किया था। वे मिट्टी की रचना और पात्र एवं कुछ मूर्तों बन रचाने के लिये न बना हुआ का प्रयोग करने में। इवर्गर्ड के प्रजापद पर में कुछ ऐसे हैं। प्राचीन कागज है जामिन के प्राचीन लकड़हरे से प्राप्त किए गए हैं। इनमें कुछ ऐसे भी कागज हैं जो १३३ फीट लम्बे और १७ इंच चौड़े हैं।

इस प्रकार प्राचीन मिथवासियों ने साहित्यिक प्रगति के बहुत आवश्यक गुरु मेसल-सामग्री बनाया स्रोत दिया था। इसके फलस्वरूप मिथ में साहित्य के क्षेत्र में प्रचलित प्रगति हुई। दशताम्यों की स्तुति एवं महान उद्योगों का प्रचलन में कान्ति रचना हुई। यही मृत धारवाया के मन्त्रारजन के लिए कहा गया लिखी जाता था। यही है एक कहानी मिथ के एक प्राचीन विद्वानों में प्राप्त हुई है। इसका नाम है मिथू का कहना। इसके अतिरिक्त मृत धारवाया के पद प्रदर्शन के लिए कुछ निवेदन भी लिखकर उसकी कविता में रस

जाते थे। चित्र-लिपि में लिखी गई ये पुस्तकें पेपरस कागज की बड़ी-बड़ी तहों पर लिखी जाती थी। उस समय इतिहास एवं धर्मशास्त्र पर भी पुस्तकें लिखी जाती थीं। मगर बहुधा वर्णनात्मक हाते थे और जीवन के सही रूप को चित्रित करते थे।

प्राचीन मिथवास्तुशास्त्र की कला के प्रति विशेष धर्मरुचि थी। यद्यपि साधारणतः मकान मिट्टी के बनते थे मगर देव-मन्दिर पिरामिड एवं अन्य



चित्र ३०—औट का मूर्त बुधन



चित्र ३१—पार्ष्विकों का मूर्त बुधन



चित्र ३२—मोघन जो-बकों का बुधन


पवित्र भवन विद्यालय पापासु कब्रों से बनते थे। कालान्तर में बाह्य क फरा घोड़ा न भी ध्वज महसा के लिए भी मत्परा का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। स्मारक कला के क्षेत्र में मिथ न आश्चर्यजनक उत्पत्ति की थी। मिथवास्तुओं को 'विद्यालया' से बड़ा प्रेम था। उनके पिरेमिड और बृहन् देव-मन्दिर इस बात के जीत प्रामाण्य मण्डल हैं। चातु-गुण में पूर्व पूर्व-राज

द्वारा तैयार की गई ईंटों को कबों के स्तूप बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। परन्तु तब के आबिकार के पञ्चस्वरण परिवार की बड़ी-बड़ी शिमाघ्रा को काटना छोटना सुगम हो गया। फराघोह जोसर (Zoser) द्वारा निर्मित मोगान पिरैमिड मिथ का प्राचीनतम पिरैमिड है। १०० ई. पू० में इम्होतेप (Imhotep) नामक विस्पकार ने इसे बनाया था। इसके समग्र एवं चतुर्भुज पदमात फराघोह धुकु या थ्योपस (Khufu or Cheops) ने एक अन्य विद्या पिरैमिड का निर्माण कराया जो गिरेह के पिरैमिड के नाम से प्रसिद्ध है। यह विद्या प्रस्तर-लवण संगम ११ एकर भूमि पर फैला हुआ है। इसमें समग्र २ १०० ००० शिमा-लवणों का प्रयोग किया गया है जिनमें से प्रत्येक शिमा-लवण का भार लगभग २३ टन का होता है। यह ४८१ फीट ऊँचा है और इसकी प्रत्येक धारा मुखा ७२५ फीट लम्बी है। यह पिरैमिड मिथ की वर्तमान राजधानी काहिरा के समीप ही स्थित है। इसके चारों ओर अनेक अन्य छोटे पिरैमिड हैं जो अन्य फराघोहों एवं उनके सम्बन्धियों के हैं। आज से १००० वर्ष पूर्व यहाँ के धमाक में कौन ऐसी विद्या हमारा का निर्माण हुआ होगा, यह आधुनिक इन्जीनियरों के लिए आज भी आश्चर्य का विषय है।

कारनाक मन्दिर बीबीज एवं धनु मिम्बेल के विद्या एक अन्य मन्दिर मिथी शिल्पकला के समग्र-स्मारक हैं। कारनाक का मन्दिर कारतुक्रता का प्रस्तुत लक्ष्य है। यह समग्र बीबीज मीन लम्बा है। इसका बनवाने में समग्र ३० हजार वर्ष लगे और मिथ मिथ समय में मिथ मिथ राजाओं ने इसका निर्माण कराया है। इसका निर्माण सामन्त युग ॥ आरम्भ हुआ फराघोहों के पौरवपूर्ण युग में इसका अधिकांश भाग पूर्ण हुआ और उनके महीनम भागों का निर्माण युग के टास्वी ब्रह्माटों के समय हुआ। मिथ के समग्र पूर्ण इतिहास की अनुपम धारणा से प्रकाशित करने का बहुत कुछ धन इन विद्या मन्दिर को है। इसके सर्वाधिक मध्य एवं मुम्बर भागों का निर्माण पिरामिडकालीन फराघोहों के समय में हुआ था। इस मन्दिर में रत्नमों से बना एक विद्या होता है जो १७ फीट लम्बा और १८ फीट चौड़ा है। ऐसे ही अनेक और विद्या होते हैं जो यद्यपि अन्य कुछ धाते हैं।

यह धनेसा हाथ ही पेरिस स्थित लोरे रेम विरजातर के बराबर है। इनमें १३९ स्तम्भों की ६ कतारें हैं। बीच में ७६ फीट ऊँचे १२ स्तम्भ हैं जिनमें से प्रत्येक के ऊपर १० प्यटि मुगलगाधुकर बठ लगे हैं। यह

मन्दिर स्वर्ण धपने में ही एक बृहत् भव्यसुताभय है। कारमाक के मन्दिर से लगभग १—१२ पर प्राचीन मिथ का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर है जो धपनी भव्यता एवं सुन्दरता के लिए उतना ही प्रसिद्ध है जितना कि कारमाक का मन्दिर है। धामेनहोतेप तृतीय और रानी हेततेपसुत ने इसका निर्माण कराया था। यह सक्कर क मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इन दो मन्दिर के प्रतिरिक्त बीबीज में अन्य अनेक मन्दिर और हैं। इन मन्दिरों की दीवारा पर सुन्दर चित्रकारी की गई थी। इन चित्रों के द्वारा हमें उत्कासीन मिथ के सामान्य जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन मिथ के राजाओं की युद्ध-यात्राओं के चित्र प्रमुखता से प्राप्त हुये हैं। फिर भी चमकदार सफेद और सुनहरी रंगों की विशेषता के प्रतिरिक्त इन चित्रों में रंग-सामग्र्यस्य और सभी की कोई विशेषता नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन मिथवासी चित्र-कला में इतनी प्रगति न कर पाये थे जितनी कि स्वापत्य कला या मूर्ति-कला में की।

१६वें शताब्दी के फराओहू रेमसेज द्वितीय ने धनु सिम्बेल में एक विशाल मन्दिर बनवाया था जो १५५ फीट लम्बा और ६० फीट ऊँचा था। मन्दिर के प्रतिरिक्त मूर्ति-कला की ओर भी मिथवासी समान रूप से आकृष्ट हुए थे। सक्कर के मन्दिर के पास ही धामेनहोतेप तृतीय की दो विशाल मूर्तियाँ हैं जो धपनी साबकी विशालता और रचना-शील्य के लिये प्रसिद्ध हैं। एक ही पत्थर को काटकर बनाई हुई ये मूर्तियाँ लगभग ६० फीट ऊँची हैं और इनका वजन लगभग १०० टन है। इसी प्रकार रेमसेज द्वितीय द्वारा बनवाई गई मूर्तियाँ भी प्राचीन मिथ की कला का उपयुक्त प्रतिनिधित्व करती हैं। मिथ के सप्तम निरेमिड के पास बनी  स्किन्स तो विश्व के लिये एक अत्यन्त धार्मिक-वस्तु है। यह एक ऐसी मूर्ति है, जिसका केहरा मुख्य उद्देश्य है और शरीर घेर जैसा है। इस मूर्ति की लम्बाई लगभग १६ फीट है और ऊँचाई ७ फीट है। इसका वजन सिर ३६ फीट लम्बा और ७० फीट चौड़ा है। इसके प्रतिरिक्त मिथ में धर्मक प्रस्तर-विभाण (पामेलिस्क—Obelisk) बनवाई गई थीं। क्लियोपेट्रा की सुई (Cleopatra's Needles) नामक प्रस्तर-धिला विश्व प्रसिद्ध जिसका निर्माण रानी हेततेपसुत ने राज्य काम में हुआ था। वास्तव में मिथवासियों ने किमी धर्म्य क्षेत्र में इतनी शक्ता और प्रगति नहीं की थी जितनी कि मूर्ति-कला और वास्तु कला में की।

मिथवासी बड़े धर्म्यव्यवसायो एवं परिधमी थे। नील की बाढ़ के रहस्य को समझने के लिये उन्होंने बड़े धर्म्य-युद्धक उमकी बाढ़ों का पैदा-ओला

गंगा घाट प्रान्त में उन्होंने कुछ ऐसे मित्रों मित्रासे जिनमें हम लोग आज भी मानान्वित हो रहे हैं। यह की नियमितता एवं यही और उपग्रहों की गणना के अनुसार उन्होंने बिद्वत् में सबसे पहले वर्ष को ३६५ दिना में विभाजित किया था। यह उनकी ज्योतिष की एक महान् सफलता थी। गीत नदी में सिंचाई के लिये एवं विशाल पिरामिडों के निर्माण में वे लोग रोम-पणित के सिद्धांतों से अनुसार कार्य करते थे। परन्तु उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी था—वैज्ञानिक नहीं। यही कारण था कि जहाँ उन्होंने मकान के निर्माण के लिये पाषाण के साधन खोज निराले थे इस भाषा पर काँ वैज्ञानिक सिद्धान्त न बना सके। उन्हें गणित का काफी ज्ञान था परन्तु यह ज्ञान भी यही एक सीमित था जहाँ तक कि वह उनके लिये सामान्य था। उनका परितुल्य काफी कठिन था। पहाड़ों गुला माग घाटि से भी वे पूर्ण रूप से परिचित न थे। उन्हें द्रव्यसत्त्व का ज्ञान न था।

मिथवासी चिकित्सा के ज्ञान में कोई मौखिक स्रोत न कर सके। इस विषय में वे कहिवादी एवं मान्यविश्वासी थे। यद्यपि कुछ रोगों के लिए उन्होंने कुछ नुस्खे बना लिये थे फिर भी बुद्धिमानों के मन्त्रों पर प्रधानतया विश्वास किया जाता था कि वे मन्त्रोच्चारण द्वारा रोग निदान करेंगे। प्राचीन मियवामी भूत व्यक्ति को बीरमा पाप समझते थे। मरने के क्षण के मूस भागों से पूर्वतः परिचित न हो पाये थे। कुछ विज्ञानों के मतानुसार वे मनुष्य के सिर की बीजाफाड़ी करते थे और बाण भाग को निकाल कर उसकी जगह चाँदी के टुकड़े बिपकाया करते थे। इसमें रोगी प्रायः ही मृत्यु को प्राप्त होता था। बीजाफाड़ी करने के समय पर भी धरम्य पीड़ा होती थी। संभवतः मृतानी चिकित्सा पद्धति पर मियवी चिकित्सा शास्त्र में अपना प्रभाव डाला है।

इज्जता और शरत्त को घाटों की सम्पत्ताएँ—मनुष्य का जीवन किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों से प्रभावित होता है यह हम यहाँ तक कहें हैं। इज्जता एवं कष्ट —काटियों की सम्पत्ताएँ भी इसी तत्त्व को पुष्टि करती हैं। मनुष्य उन्नी स्थान में बसने की इच्छा करता है जहाँ बाह्य परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होती हैं। इति युग से पूर्व जो मनुष्य इन परिस्थितियों की ओर पूरा ध्यान देना था। समस्त केवल यह था कि जब मनुष्य उर्वरा भूमि को इनका महत्त्व न देना था जितना कि वह हरे-भरे जल मैदानों या घाटियों को देना था जहाँ उसे अपने पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में घास प्राप्त हो जाती थी। परन्तु

अमरुतीस प्रकृति का परिणाम करने के उपरान्त स्थायी रूप में निवास करने के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने लिए बस भोजन एवं घर का प्रबन्ध करे। प्रकृतिक यही तीन के आकर्षण थे जो कि मनुष्य को किसी प्रदेश विशेष में बसने के लिए प्रेरित करते थे। दक्कन एवं ऊपरी नदियों के मध्य में भी एक ऐसा ही प्रदेश था जो अत्यन्त उर्वर भूमि है। कारण अनेक महान संस्कृतियों का क्रीड़ा-स्थल बना। यहाँ की भूमि इतनी उपजाऊ थी कि यहाँ अन्य निवृत्तों के प्रदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गेहूँ पैदा होता था। सम्भवतः इस देश में सर्वप्रथम गेहूँ पैदा हुआ होगा क्योंकि यही वह जंगली रूप में उगा हुआ पाया गया था। यहाँ की मिट्टी ईंटें बनाने के लिए बड़ी अच्छी थी। जल की तो कमी हो न थी। दामों नदियों के बीच में स्थित होने के कारण ही इसे सीक्वासियों व मैसोपोटामिया के नाम से पुकारा।

इस प्रदेश की सम्पन्नता और समृद्धि ने ही मैसोपोटामिया का इतिहास निर्माण किया है। मिस्र समयों में यहाँ मिस्र-मिस्र स्थानों के व्यक्तियों ने आक्रमण किए इस भूमि पर अधिकार किया और अपनी नई संस्कृति का निर्माण किया। मैसोपोटामिया की प्राचीनतम संस्कृति संभवतः मिस्र की संस्कृति से भी अधिक प्राचीन थी। वह संस्कृति जिसे सुमेरियन संस्कृति कहते हैं ९० ई० पू० सभ्यता के विकास पर थी। सुमेरियन लोग यहाँ आकर बसने वालों में प्रथम थे। उनके आगमन से पूर्व यहाँ किसका निवास था—यह अभी अज्ञात है। सुमेरियन लोगों के नाम पर वह प्रदेश 'सुमेरिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सुमेरियन लोगों से जब अक्काद (Akkadians) जाति के लोगों ने राज-सत्ता छीन ली तो एक नई संस्कृति पनपी जिसे इतिहासकार सुमेर अक्काद संस्कृति के नाम से सम्बोधित करते हैं। अक्काद लोगों से सीरिया बासी सैमेटिक जाति के लोगों ने शक्ति छीनकर अधिकार कर लिया था और बैबिलोन को अपनी राजधानी बनाकर 'बैबिलोनिया' की संस्कृति को जन्म दिया। काबान्तर में असीरियावासियों ने बैबिलोन पर अधिकार करके उसे नष्ट कर दिया और निनवे (Nineveh) को राजधानी बनाया। इस प्रकार अमुर या असीरियन संस्कृति ने बैबिलोनियन संस्कृति का स्थान लिया। परन्तु सम्पत्ताओं एवं संस्कृतियों के इस क्रम का अन्त यही नहीं हुआ। कुछ काम परभावतः अक्काद लोगों ने अमुर लोगों को सत्ता-हीन करके चाल्ड (Chaldean) सभ्यता का विकास किया। इस प्रकार दक्कन एवं ऊपरी नदियों की घाटी में अनेक सभ्यताओं ने जन्म लिया, विकसित हुई एवं विनीत हो गई।

विजेताओं ने इस प्रदेश को अपनी हथकड़ीनुसार बनाया और विभाजित किया। यह प्रदेश अनेक सभ्यताओं का मिलन-स्थल ईराक के नाम से जाना जाता है। ईराक राज्य का प्राचीन रूप 'मार्स' से भी जाना जाता है।

ईराक को हम प्राचीन सभ्यताओं को प्रकाश में लाने का मुख्य ध्येय एक इतिहास इतिहासकार मार्स को है। उसने अनेक वर्षों के सतत परिश्रम एवं अध्ययन के पश्चात् सन् १८४२ में प्राचीन सभ्यताओं की खोज की।

सुमेर की सभ्यता—(७ ०० ई० पूर्व से २२०० ई० पू०) मेसोपोटेमिया विश्व-विद्यालय द्वारा प्रायोगिक उत्खनन (Excavation) कार्य के परिणामस्वरूप ईराक में एक ऐसे प्राचीन नगर-साम्राज्य के अवशिष्ट विह्वल प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ईसा से लगभग ६००० वर्षों पूर्व वहाँ कई सभ्यतावादी नगर थे। ईराक में प्रचलित एक प्राचीन कहानी के अनुसार पहले सब घोर जल का। फिर एरिड (Erida) का निर्माण हुआ। प्रागुक्त पुरातन-सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य ने हम कहानी की सत्यता सिद्ध कर दी है। प्राचीन एरिड के निष्कट झरना करने से वैज्ञानिकों को एक-दो नहीं बल्कि १५ नगरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं और उनके मतानुसार सबसे नीचे के अवशेष ही प्राचीन एरिड नगर के अवशिष्ट भाग हैं। शायद यही नगर बंधार का सर्वप्रथम नगर था। इसी नगर का समकालीन एक और नगर था 'निप्पुर' (Nippur)। इस नगर के विषय में भी विद्वानों का मत है कि यह ६०० ई० पू० से १ ०० ई० पू० के मध्य सुमेरियन लोगों द्वारा बनाया गया था। निप्पुर (Nippur) के सभ्यताओं से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही इतिहासकारों ने यह मत स्थापित किया है कि सुमेरियन सभ्यता मिस्र की सभ्यता के समकालीन अवस्था पूर्ववर्ती थी। सुमेरियन सभ्यता के अन्य वैभववादी नगरों में उर (Ur) लगेस (Lagash) एवं किश (Kish) के नाम प्रमुख थे।

सुमेरियन सभ्यता का प्रारम्भ मेसोपोटेमिया में सुमेरियन लोगों के आगमन से प्रारम्भ हुआ। यह धर्मो तक एक विश्वासघात प्रदान बना हुआ है कि सुमेरियन लोग किस देश से आकर यहाँ बसे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि यद्यपि ये लोग सैमेटिक नहीं थे फिर भी सम्भवतः वे लोग मौरिया से यहाँ आये थे। बहुतों अन्य विद्वानों ने हम मत का पक्ष लिया कि और हम विषय में एक नई युक्ति प्रस्तुत की जिसके अनुसार ये लोग फारस की माइओ द्वारा आग से तरफ से यहाँ आये। जबकि विपरीत वैज्ञानिकों को पुष्टि द्वारा ज्ञान होता है कि ये लोग पूर्व की तरफ से आये और शिमार की भूमि

में साकर बस गए। इसीलिए इस स्थान का नाम 'सुमेरिया' हुआ। सुमेरियन लोग प्रायों की भाँति सुन्दर, बलिष्ठ एवं गौरवर्ण के होते थे।

सुमेरियन लोगों ने नगर राज्यों की स्थापना की थी। वास्तव में तब तो यह है कि सुमेरियन लोगों ने प्रसामन के सिवा किसी हड़ केन्द्रीय-संस्था का आविष्कार नहीं किया था और उसके अभाव में सुमेरियन लोगों के मित्र भिन्न कबीलों ने असह-असह अपने नगर स्थापित कर लिए थे जो एक दूसरे से केवल असह ही न होते थे अपितु पूर्ण रूप में स्वतन्त्र भी होते थे। तयरी का प्रबन्ध वहाँ के पुरोहित के हाथों में होता था। प्रधान पुरोहित ही मुख्य प्रशासन होता था जिसे 'पातेष्ती' या 'इसाकु' कहा जाता था। शासक चुनि कर प्राप्त करने का अधिकारी होता था। शासक का पद पितृक होता था।

देश में एक राष्ट्रीय या केन्द्रीय प्रशासन के अभाव में प्रत्येक नगर दूसरे नगर की चुनि पर अधिकार करने की चेष्टा करता था। अतः प्रायः आपस में युद्ध होते रहते थे। यही कारण था कि ये लोग चतुर एवं बीर योद्धा होते थे। इनके सेनापति युद्ध-कला में पूर्णतः निपुण होते थे। समने समने भागे एवं बड़ी-बड़ी लालें ही इनके मुख्य अस्त्र-यस्त्र थे।

धर्म—सुमेरियन जाति पवन देवता की पूजा करती थी। पवन देवता को वे 'एनलि (Enlil)' के नाम से सम्बोधित करते थे। ये लोग ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ बनाकर उनके शिखर पर देवताओं के मन्दिर बनाते थे। सुमेरवासी छोटियाँ बनाना नहीं जानते थे। अतः स्तम्भों पर चढ़ने उतरने के लिए छानू गैलेरियाँ बनाई जाती थीं। निप्पुर में भी उन्होंने एक ऐसा ही विशाल स्तम्भ बनाया था। इस प्रकार के स्तम्भों के आस-पास मीसोपोटामिया में पाये गये हैं। सुमेरवासी कई धर्म देवों की पूजा करते थे। सूर्य, जल एवं वायु की उपासना अधिक प्रचलित थी यद्यपि समूहोंने इपि एवं बनस्पति के देवताओं की भी कल्पना करके उनकी पूजा आरम्भ कर दी थी। ये लोग भूत प्रेत आदि में भी विश्वास करते थे। इनका विश्वास था कि उनके देवता बड़े बयानु थे। उस समय बलि प्रथा प्रचलित थी। संक्र के समय या विशेष उत्सवों पर देवताओं की प्रसन्न करने के हेतु मर-बलि भी दी जाती थी। ये लोग मन्दिरों में अपने आराध्य देवताओं की विद्या प्रतिमाएँ स्थापित करते थे। ये लोग मन्दिरों को 'जिगुरात' (Ziggurat) कहते थे।

इस सब देवताओं की पूजा करते हुए भी उनका धार्मिक विश्वास था

कि सम्पूर्ण बिम्ब की किसी एक ही शक्ति ने सृष्टि की है और वही सर्वोच्च शक्ति है। इस शक्ति को मुमेरवामी 'ई' नाम से पुकारने से। कुछ विद्वानों के मतानुसार मुमेरवामी प्राचीन भारतवासियों से सम्बन्धित से क्योंकि दाता ही पवन का देवता मानते थे और एक सर्वोच्च शक्ति में बिम्बान्न करने से। यह कहा जाता है कि मुमेरवासियों के एकलिंग एवं 'ई' सम्प्रसारनीय 'मिनिस' एवं 'इग' शब्दों के ही व्युत्पन्न हैं।

जिप्पुर के पास प्राप्त हुए एक प्राचीन गिम्पावर द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि प्राचीन मुमेरवामी एक बिम्बात साम्राज्य के स्वामी थे। यह साम्राज्य ईरक (Erech) के श्वेता के पुरोहित द्वारा स्थापित हुआ था। इसमें यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सम्राट में पुरोहिता की स्थिति निम्नी महत्त्वपूर्ण थी। यह साम्राज्य कारण की छाड़ी में भूमध्यसागर तक फैला हुआ था।

प्राचीन मित्र की शक्ति मुमेरवामी के सम्राट में भी कई बर्षों से। प्रचलित तीन वर्गों से। पुरोहित वर्ग सबसे ऊँचा वर्ग था। प्रभु और एक प्रशासन दोनों ही क्षेत्रों में वे प्रचाली थे। उनका जनता से बहुत सम्मान था। वे सब प्रकार के सामान सम्पन्न होने से। ऐसे व्यक्ति को यद्यपि पुरोहित तो न था परन्तु जो सु-स्वामी होने से वे भी हमी उच्च वर्ग में सम्मिलित किए जाते थे। इसका बग सम्बन्धी लोगों का था जो उद्योग व्यवसाय एवं वाणिज्यी का काम करत थे। "मक" प्रतिष्ठित उस समय भी दास प्रथा प्रचलित थी। दास व्यक्तिगत सम्पत्ति के समान समझे जाते थे। जैसे उनका सामान्य कार्य धन में ऊँचे लोगों वषों की सेवा करना था। दासों के साथ दया का बरताव दिया जाता था।

सम्राट में स्त्री की श्रेष्ठा पुरुष की अधिक स्तुति प्राप्त थी। पर और घर के बाहर—मौलों ही श्रेष्ठों में वह पूर्ण सत्ता का उपयोग करता था। बिम्ब पतिस्थितियों में वह एक ही अधिक स्त्री भी रख सकता था। लोग ईवाहिक जीवन व्यतीत करना सीख गए थे। विवाह के सम्बन्ध में मुमेरवासियों ने कुछ विविध नियम भी बना लिए थे जिनका पालन करना आवश्यक समझा जाता था। पति स्त्री का प्राण-रक्षक तक किया जाता था। यह धारण्य का विषय है कि प्रायः से १७ हजार वर्ष पूर्व मुमेरियन लोगों ने केवल विवाह करना ही न सोचा यद्यपि तबका की भी ईवानिक रूप से स्त्रीरत्न कर लिया था। धर्म या सम्पत्ति की त्यागा जा सकता था। स्त्रियों की

पिटू-मूह से जो वस्तुएं प्राप्त होती थीं उन पर उसका व्यक्तिगत अधिकार समझा जाता था। दहेज प्रथा का भी प्रचलन था। प्राचीन प्रवचनों में प्राप्त वस्तुओं से यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अपने रूप सौन्दर्य की वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करती थीं।

सुमेरवासी बड़े परिश्रमी एवं चतुर थे। उन्होंने जीवन यापन के लिए अनेक साधन खोज निकाले। सिंचाई के हेतु उन्होंने मृत्तिमोचित प्रवस्था कर लिया था ताकि जल उन्हें सुव्यवस्थापूर्वक मुहाने तक पहुँच सके। कृषि उनका मुख्य पेशा था। परन्तु पशुपालन भी मामाध्यम्य में प्रचलित था। वे लोग कासा मरुत में बरत बुलना भी सीख गये थे। पत्थर मुहाने होने के कारण मकान बनाने के लिए उन्होंने ईंटें बनाना आरम्भ कर दिया था। ये लोग बड़ी सुन्दर ईंटें बना लेते थे। मन्दिर स्तम्भ एवं अन्य भवनों के निर्माण में ईंटों का ही प्रयोग किया जाता था। सुमेरवासी रजत एवं स्वर्ण पात्र बनाने की कला में भी पूर्णतया पारंगत थे। वे समुद्रिच्छासी और सम्पन्न थे।

साहित्यिक क्षेत्र में सुमेरवासियों की प्रगति मिश्रवासियों के समान न थी। परन्तु सुमेरवासी चायब लेखनकला में मिश्रवासियों से आगे थे। यह उनकी सभ्यता की महान्तम विशेषताओं में से प्रमुख है। ४०० ई. पूर्व या इससे भी कुछ पूर्व काल में यह लेखन-कला विकसित हुई। ये संकेत लिपि का प्रयोग करते थे। उनकी लिपि में लगभग ४०० संकेत थे। बरत या घससों के लिए कोई संकेत न था। घससों के लिए संकेत थे। जिनको मिला कर लिखने से वाक्य बनाये जाते थे। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस लिपि का जन्म चित्र-लिपि से ही हुआ था। संकेत लिपि में लिखे हुए प्राचीनतम लेख लिखावटों पर प्राप्त हुए हैं। परन्तु परचाएवर्सी लेख मिट्टी की तक्षियों पर खुदे हुए मिलते हैं। यह लिपि छद्म की भाँति दिये से बने की तरह लिखी जाती थी। इसी लिपि में ऐतिहासिक अक्षर ऊपर की ओर मुकीये होते थे। इसलिप् इसे 'कीमाक्षर-लिपि' (Cuneiform) कहते हैं। बागव के प्रमाण में ये लोग बीबी मिट्टी की तक्षियों पर मरकजों से लिखते थे। मूषने पर ये अक्षर तक्षी पर खुद जाते थे।

सुमेरियन लोग प्राचीन मिश्रवासियों की तुलना में स्थापत्य कला के क्षेत्र में अधिक उत्थिति नहीं कर पाये थे। पत्थरों के प्रभाव में उन्हें ईंटों पर निर्भर करना पड़ता था। शायद इसी कारण से वे इस ओर अपनी समात्मक

इन्हीं की रचनात्मक रूप में दे पाये। फिर भी वे सोम सुन्दर स्तम्भ मन्दिर एवं भवन बना लेते थे। स्वायत्त कला की अपेक्षा मूर्तिरसा के लक्ष में अधिक ज़रूरत की थी। इन्होंने अपने मन्दिरों के लिए विद्यास एवं बड़ी मजबूत मूर्तियों को निर्माण किया।

वैज्ञानिक लक्ष में सुमेरियन लोधा में कुछ ऐसी सफलताएँ प्राप्त की थी कि जा प्रायः एक प्राकृतिक विषय का मार्ग-दर्शन कर रही हैं। उन्होंने चन्द्रमा की कलाओं का अध्ययन करके समय की गणना करना सीख लिया था। चन्द्रमा की विभिन्न कलाओं के आधार पर ही उन्होंने वर्ष को ३० ३० दिन के १२ भागों में विभक्त किया था। ये लोग मसलों की गतिविधियों का अध्ययन में भी रुचि रखते थे। इनकी गिनती में ६ इकाइयाँ थीं। यही यह स्मरणीय है कि हम आज भी घंटे मिनट एवं वृत्त को ६० भागों में ही विभक्त करते हैं। सुमेरवासी मिट्टी के बर्तन बनाने में भी इस नव्यकि वे कुम्हार के चाक का प्रयोग करना जानते थे।

सुमेर प्रकाश साम्राज्य धूम—वैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सुमेरवासी स्वतन्त्र नगर राज्यों में निवास करते थे और प्रायः एक दूसरे से परस्पर कुछ करते रहते थे। इस पारस्परिक कला के फलस्वरूप अन्तः सैन्य उनकी सैनिक शक्ति घटी होती गई। इसके अतिरिक्त एक बार कास तक रक्षा का उपयोग करने के कारण उन लोधा में कुछ विभिन्नता प्रगट होनी लगी। पड़ोसी देशों तक सुमेर के संबंध की कहानियाँ पहुँच ही पहुँच चुकी थीं। वे अक्सर की ताक में थे। सुमेरवासियों की शक्ति घटी होने से सुमेर के उत्तर की ओर वे अक्सर (Akkad) जाति ने सुमेर पर आक्रमण कर दिया और सुमेर साम्राज्य को नष्ट करके देश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार २७३० ई. पू. सुमेरवासियों की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई।

सारगन प्रथम (Sargon I) ही वह प्रथम राजा था जिसके नेतृत्व में अक्सर लोगों ने सुमेर पर विजय प्राप्त की थी। सारगन प्रथम एक और एवं महान योद्धा था। वह बड़ा ही योग्य एवं महत्त्वकांक्षी शासक था। उसने सुमेरवासियों के प्रति क्या का बर्तन किया और उनका विरघात प्राप्त करने की चेष्टा की जिससे वह पूर्ण रूप से सफल हुआ। उसने और उसका बाद उसके पोते (कुछ इतिहासकारों के मतानुसार वह उसका पुत्र था) नारम सिन (Naram Sin) ने बड़ी योग्यता पूर्वक शासन का संचालन किया और साम्राज्य का विस्तार किया। इसका और फल नवी की चाटी के बाढ़ों से

उत्तरी भाग के इतिरिक्त समस्त प्रदेश धनकाद जाति ने अपने दाखीन कर लिया था। परिणाम में उनका साम्राज्य भूमध्यसागर तक फैला हुआ था। नरमसिन के पश्चात् बड़ी सीधता से धनकाद साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। इन्तर्, सुमेरियन लोगों ने पुन शक्ति संचय कर ली थी। परन्तु उन्होंने ऐसी परिस्थिति में बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया और अपने विजेता धनकाद लोगों से कुछ करण के स्थान पर उन्होंने घसीरिया और उसके निकटवर्ती प्रदेशों का भीत लिया। इस प्रकार सुमेरियन धनकाद साम्राज्य की स्थापना हुई। इस संयुक्त साम्राज्य का अन्त २१ ई पू के लगभग हुआ जब कि हम्मुरबी ने इस साम्राज्य को नष्ट करके नये साम्राज्य की स्थापना की।

यद्यपि धनकाद जाति ने सुमेर-बासियों को पराजित कर दिया था फिर भी उन्होंने उनकी संस्कृति को अपना लिया। उन्होंने सुमेरियाबासियों की विकसित संस्कृति से लाभ उठाया और उनके रहन-सहन के ढंग ऐतिरिक्त भाषा का अनुकरण किया। भाषा स्थापत्य कला विज्ञान व्यापारिक प्रणाली एवं नाप ताल की पद्धति भाषा सेना में धनकाद लोग सुमेरबासियों के लिये थे। उन्होंने सुमेरियन सभ्यता का प्रसार दूर दूर तक किया। साथ ही साथ सुमेरियाबासियों ने भी धनकाद लोगों से बहुत कुछ सीखा। धनकाद जाति स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में सुमेरियन लोगों से अधिक उत्कृष्ट थी। धनकाद जाति की मूर्तिकला का एक सुन्दर नमूना प्राप्त हुआ है जिसमें नरमसिन को ऐलाम (Elam) नामक स्थान में एक पहाड़ पर धाक्रमण करते हुए प्रदर्शित किया गया है। धनकाद लोग केलसाकार लोग मुद्रा प्रदान में भी बड़ ददा थे। नीची मिट्टी के ऊपर इन मुद्राओं द्वारा बड़े यन्त्रों के चित्र प्रकट किए जा सकते थे। इन मुद्राओं में अधिकांशतः पशुओं के चित्र हैं। इस प्रकार सुमेरियन एवं धनकाद जातियों के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप सुमेरियन संस्कृति ने बहुत उत्थति की। २१ ई० पू हम्मुरबी के धाक्रमण के समय सुमेरियन धनकाद सभ्यता अपने अरम उत्कर्ष पर थी यद्यपि सुमेरियन धनकाद साम्राज्य अपनी अन्तिम सीमें विन रहा था।

बैबीलोनिया की सभ्यता—धनकाद जाति के राजा नरमसिन के काल से सुमेरियन-धनकाद साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। उसके सप्तन-काल के अन्तिम दिनों में साम्राज्य की सत्ता एक शक्ति शील होती जा रही थी। अनुकूल परिस्थितियाँ देखकर सैमिटिक जाति ने बैबीलोनिया पर धाक्रमण

भारत कर दिये। एसाम के (Elamites) लोगों ने सुमेर साम्राज्य के दक्षिणी भागों पर अधिकार कर लिया। सैमिटिक जाति के ही अमोराइट (Amurite) नामक लोगों ने भी मसोपोटामिया के कुछ भागों को जीत लिया एवं उत्तरी सुमेर का पूर्णतया जीत कर वहाँ अपने घर बना लिये। बैबिलोन नाम का छोटा सा कस्बा इनका मुख्य केन्द्र था। लगातार विजय प्राप्त करने के कारण अमोराइट लोगों का उत्साह बढ रहा था। परन्तु एक मुख्यव्यक्ति एवं छत्ति सौ सैमिटिक जाति के लिए आवश्यक था कि कोई योग्य एवं छत्ति सौ वर्ष के लयमय हम्मुरबी ने अमोराइट लोगों को संगठित करके उनकी छत्ति में वृद्धि की। उसने सुमेरियन लोगों की अवधिष्ट छत्ति को भी कुछ बढ़ा दिया। दूसरों हम्मुरबी जानता था कि एक स्थायी साम्राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक है कि पड़ोसी जातियों का मित्रतापूर्ण या आवश्यक हो ता सैनिक-बल द्वारा बना में रखा जाये। अतः उसने एसामोई लोगों के विरुद्ध अभियान चालू कर दिया। एसाम के भाग उसकी छत्तिवासी बना व सम्मुख न ठहर सके और आत्म समर्पण कर दिया। इन प्रकार दक्षिणी मिस्र पोटामिया पर भी उसने अपना प्रभुत्व स्थापित करके सम्पूर्ण सुमेर प्रकट साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। हम्मुरबी ने बैबिलोन की ही अपनी प्राचीन बनाया इसलिये यह सम्यता भी 'बैबिलोनवासियों की सम्यता' के मे विख्यात हुई।

हम्मुरबी अपने समय का अत्यन्त प्रगल्भी राजा हुआ है। वह अपनी सैनिकियों के कारण नहीं अपितु अपने योग्य काम के कारण इतना प्रसिद्ध हुआ है। उसने साम्राज्य-विस्तार में अधिक उचित सामन-प्रबन्ध की धार ध्यान दिया। एक ऐसे युग में जबकि प्रायः राजाओं का प्रधान लक्ष्य साम्राज्य विस्तार के द्वारा असीमित सत्ता का उपभोग करना मान ही था हम्मुरबी प्रथम सम्राट था जिसने राजपद को नैतिक एवं नैतिक दृष्टि से प्रजा के कल्याण के प्रति उत्तरदायी बनाया। उसने प्रजा का सुरक्षा एवं स्वायत्त प्रदान करके अपने उत्तरदायी को सम्मुख एक उच्च धार रखा। उसके समय के ३३ वर्ष प्राप्त हुए हैं जो कि उपलब्ध मिश्र-मय पर अपने उच्च अधिकारियों को सिद्ध है। ये पत्र मिट्टी की तल्लियाँ पर 'कीलाक्षर लिपि' में लिखे हुए हैं और बैबिलोन की संस्कृति एवं सम्यता पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इनके प्रतिरिक्त एक साठ छोट-छोटा पापाण-स्तम्भ भी प्राप्त हुआ है जिस पर

हम्मुरब्बी के नियम कानून एवं विधान संकलित हैं। इस स्तम्भ के सिद्धर पर हम्मुरब्बी का सूर्य-देवता से विधि-ज्ञान प्राप्त करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इन प्राचीन पत्रों एवं मूर्तियों से ज्ञात होता है कि राजा हम्मुरब्बी राज्य के छोटे और बड़े प्रत्येक कार्य में रुचि लेता था। वह नर-संरक्षण, सामान्य उत्सवों, बागों के नियन्त्रण आदि सामान्य विषयों में भी अपने अधिकारियों को उचित धारण देता था। पूँसखोरी के विरुद्ध उसने कई प्रभावशाली नियम बनाये थे।

हम्मुरब्बी की महानतम सफलता विधि-ज्ञान में थी। उसने न्याय को राजा के इच्छित मौखिक धारणा के स्तर से उठाकर एक उच्च आधार प्रदान किया। एरिडू के निकट प्राचीन विधान प्राप्त करने से पूर्व राजा हम्मुरब्बी का विधान ही प्राचीनतम समझा जाता है। यह प्यसोसी पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा सूसा नामक स्थान के पास पाया गया था। इसके कुछ अंश निर्गुण स्थित धनुरबनिपाल के पुस्तकालय में भी प्राप्त हुए हैं। हम्मुरब्बी ने केवल पूर्ववर्ती और अपने समय के कानूनों का संग्रह-भाग ही नहीं किया था अपितु स्वयं भी अनेक कानूनों की रचना की थी। हम्मुरब्बी के विधान का प्रधान उद्देश्य जनता को उचित न्याय और अपराधियों को उपयुक्त दण्ड प्रदान करना था। अधिकारी गण इस विधान के अनुसार ही शासन-संभाल करते थे। प्रधान सम्पत्ति सम्बन्धों में कृषि, व्यापार विनिमय, विवाह गोश्रम आदि अपराधिकार की समस्या आदि के विषय में स्पष्ट नियम थे। अपराधियों को सजाय देना व दण्ड मिलता था। विशेष परिस्थितियों में राजा से अपील भी की जा सकती थी। न्याय पासक की रचना एवं उसकी कार्यप्रणाली के विषय में स्पष्ट निर्देश थे। हम्मुरब्बी का कानून प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद भाव के चाहे वह विदेशी ही क्यों न हो सुरक्षा प्रदान करता था। इस विधान के विषय में (जहाँ यह न बताया जाये कि यह राजा हम्मुरब्बी का विधान है) यह अनुमान लगाना बड़ा गठित है कि यह ४० वर्ष से भी अधिक पुराना है। इनका मुख्य कारण यह है कि यह विधान कुछ ऐसी समस्याओं के विषय में भी उपयुक्त निर्देश देता है जो कि प्रधानतः हमारे युग की समस्याएँ हैं। सन्तान एवं पत्नी के कानूनी अधिकार, मादक द्रव्यों का नियन्त्रण, समान की समस्याएँ, पत्नी का कर्जा सैनिक सेवा सम्बन्धी रियासतों आदि विषयों पर इस विधान में निश्चित कानून हैं। इनके अतिरिक्त इस विधान की एक और विशेषता भी है। हम्मुरब्बी के मतानुसार निर्धनों विधवाओं और अनाथों को भी उचित न्याय

प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु यह विधान इतना प्रगतिशील होते हुए भी अपने समय का सच्चा प्रतिनिधि है। कुछ निश्चित व्यपराधों में 'जैसे को वैसे' कड़ाबत के अनुसार दण्ड मिलता था। कुछ ऐसे भी व्यपराधों का जल्नेस है जो सामुहिक मानव को हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। उदाहरणतः, इस विधान के अनुसार यदि मदन के स्वामी का पुत्र मदन धरने के कारण मर जाता है तो उस मदन के स्वामी को अधिकार होगा कि वह उस मदन के बनाने वाले व्यक्ति के पुत्र को राज्य द्वारा मृत्यु-दण्ड देने की याचना करे। फिर भी इतिहासकार इस विषय में एकमत हैं कि तत्कालीन समय को देखते हुए इम्यूरेब्ली का विधान अत्यन्त प्रगतिशील था।

बैबिलोनवासियों के जीवन में धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। सुमेरवासियों की भांति वे भी बनेक देवताओं की उपासना करते थे। देवताओं को वे मनुष्य की भांति शरीरवादी समझते थे। उसी रूप में उनकी पूजा की जाती थी। सुमेरवासियों की भांति इनका प्रधान देवता मर्दुक (Marduk) था। इस्तर की पूजा प्रथम की देवी (Goddess of Love) के रूप में होती थी। इस्तर (Ishtar) के आधार पर ही बाद में यूनानियों ने 'ऐफ्रोडाइट' (Aphrodite) एवं रोमन लोगों ने 'वीनस' (Venus) की कल्पना की। बैबिलोनवासी धनु' (धाकाश) एवं 'धमछ' (सूर्य) की भी उपासना करते थे। समाज में पुरोहित-वर्ग सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण था। इतिहासकार डेविड के अनुसार पुरोहित लोग बलि की हुई मछ के वस्त्र द्वारा मन्त्रिणवासियों किया करते थे।

बैबिलोन के मंदिर पूजा-रस हो न थे वे कला के संग्रहालय एवं विज्ञान की प्रबोधघाताएँ भी थे। वे वाणिज्य के केन्द्र एवं राजकोष भी थे। राज्य को समस्त धन्य यहाँ संचित की जाती थी वाणिज्य का संचालन यहीं से होता था। स्पष्ट है कि पुजारी-वर्ग ही सर्वोच्च था। प्रायः मन्दिर सब मन्त्रियों तक के होते थे। प्रत्येक मन्त्रिण पर प्रत्यक्ष २ कार्यालय थे। पुरोहिता का निम्नरत सप्त-मण्डल के नाम से प्रसिद्ध था। विज्ञान के क्षेत्र में बैबिलोनवासियों ने महान् उपलब्धि की थी। व्यापारिक श्रुति के कारण समुद्र यात्राओं में श्रुति हुई। इसी के फलस्वरूप नगर-विज्ञान में भी प्रगति की। ज्योतिष-शास्त्र का विकास हुआ। इन मंदिरों में प्रत्यक्ष २ नगरों का अध्ययन किया जाता था। यहाँ एवं परिग्रहों की प्रतिनिधियों द्वारा मन्त्रिणवासियों की जाती थी। बैबिलोनवासियों ने समय नाप करने के लिए

बच्चों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। उनके समय में सूर्य भड़ी और बस-भड़ी दोनों ही प्रचलित थीं। उन्होंने बच्चों का ठीक समय मात करना भी सीखा लिया था। मिथवासियों की भाँति सुमेरवासियों ने वर्ष को ३०-३० दिन के १२ मासों में विभक्त किया था। बैबिलोनवासियों ने इस विषय में भी अधिक उत्सर्ग का थी। उन्होंने मास को ४ सप्ताह में भड़ी की १२ भागों में और मिनट एवं सेकण्ड को ६०-६० भागों में विभक्त करके धार्मिक विज्ञान का पक्ष प्रदर्शन किया। विभिन्न ज्यूरिस्ट के मतों के अनुसार यही उनकी महान्तम वस्तु है। बैबिलोनवासियों ने विश्व को मुद्रा प्रणाली और माप-सोम के क्षेत्र में भी मार्ग-दर्शन किया। मन के घोट को डूनारिया ने बड़ी से बड़ा किया।

पापाण के अभाव में यहाँ मूर्ति-कला कतनी विकसित न हो पाई बितनी कि मध्य में हुई। भवन एवं मन्दिर आदि प्रायः ईंटों के ही बनते थे। सौन्दर्य एवं स्वादित्व—वोना ही दृष्टियों से य मध्य कला के समकक्ष न थे। मूर्तियों के लिए प्रायः पत्थर का प्रयोग होता था। परन्तु य मूर्तियाँ भी कुशल कारीगरों के हाथ की बनाई हुई प्रतीत नहीं होती हैं।

उत्तर बताया जा चुका है कि सैन्य-कार्य मिट्टी की तक़्तिबा पर सरकारों द्वारा होता था। बैबिलोनवासी सामी भाषा का प्रयोग साकेतिक ध्वनियों में कोसाम्बर-लिपि के अनुसार करते थे। वे बाई से बाई और लिखते थे। य लोग भी अपने पूर्वजों की भाँति बर्तु-नामा का आधिपत्य करने में प्रसक्त रहे। इसकी लिपि में सम्बन्ध ३० संकेत थे। राजकीय एवं ऐतिहासिक उद्देश्यों के लिए इसी लिपि का प्रयुक्त किया जाता था। यद्यपि उक्त समय का एक धार्मिक महाकाव्य 'जिसगेयिष' प्राप्त हुआ था उस समय की ऐतिहासिक प्रगति का प्रतिनिधित्व करता था फिर भी ऐसा जात होता है कि प्राचीन बेबीलोनवासियों का हित भी आर पूर्ण ध्यान न दे सका थे।

विद्या के क्षेत्र में बैबिलोनवासियों ने एक महान् प्रयोग किया था। एता प्रतीत होता है कि इस इतिहास में ध्यायः सर्वप्रथम बैबिलोन में ही सांस्कृतिक शिक्षा के हेतु विद्यालय स्थापित किया गया था। उक्त समय के एक प्राचीन विद्यालय के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह समय २२ वर्ष फ़ोट के दानपत्र में स्थित था। इसकी एक दीवार पर उस समय की एक कहावत अंकित है—
'जो सज्जन-कसा म प्रगति करेगा वह सूर्य की भाँति जलकेगा'। यह कहावत

इस बात का परिणामक है कि उस समय लेखन-कला में बसता प्राप्त करना किताब बुझकर कार्य समझ जाता था।

ईदीसोन ॥ केवल पश्चिमी एशिया की राजधानी ही था यद्यपि वह अपने समय का विश्व का सबसे अधिक समृद्धिवादी नगर था। उस समय मैसे-पोटामिया बड़ा प्रगतिशील था। देश की जनता सुखी थी। देश में मित्र २ व्यवसाय विकसित हो रहे थे। लोगों के सामान्य-वेष्टा कृषि करना एवं पशु-पालन थे। मत्तक की कोई कमी न थी। ऊन का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। बुने हुए कपड़ों का निर्यात होता था। प्रायः सामान यहाँ पर लाव कर पश्चिम एशिया के नगरों तक ले जाया जाता था। मत्तक-निर्माण के लिए ईंटें बनाई जाती थीं। स्वर्ण एवं चाँदी का प्रयोग व्यापारिक विनिमय के हेतु होता था।

व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के कारण जनता की दशा बहुत अच्छी थी। देश का निम्नतम वर्ग जिसमें शिल्पकारों कास ही थे सुखी था। उत्कृष्टतम धन्य श्रेष्ठों की भाँति बैबीलोन में भी शासक था। वे अपने से उपरानों को सेवा करते थे। शासक की कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त न थे फिर भी राज्य उनकी रक्षा के लिए उत्तरदायी था। बुलान सम्राट रोम के शासक को जैसा उनकी दशा बैबिलोन में कही अच्छी थी। सुमरवासियों में भी हीन वर्ग थे। बैबिलोन में यहाँ की सृष्टि समाज न नही यद्यपि शासन ने की थी। शासन ने जनता को तीन श्रेणियों में विभक्त कर रखा था—धर्म (उच्च वर्ग) मुचबिनु (मध्यम वर्ग) एवं शसक वर्ग। उच्च वर्ग की अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त थे। समाज एवं शासन दोनों में ही उनका बहुत महत्त्व था। मध्यमवर्ग भी स्वतन्त्र था। शासकाल में देश की समृद्धि उसके परिधम पर और युद्धकाल में उसके शीघ्र एवं साहस पर निर्भर करती थी। युद्ध के समय इनका अनिवार्य रूप से सेना में सम्मिलित होना पड़ता था।

विवाह का धार्मिक महत्त्व को छोड़कर कानूनी महत्त्व अधिक प्राप्त था। स्त्री-पुरुष स्वतन्त्र न विवाह कर सकते थे। बैबिलोनवासियों में स्त्री का अधिक सम्मान था। इस दृष्टि से वे सुमरवासियों से अधिक प्रगतिशील थे। समाज और घर दोनों में स्त्री का बड़ा सम्मान था। व्यवसाय में भी पुरुषों का हाथ बैलसी था। पद-प्रथा न थी। स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जा सकता था। पुत्र मौर सने की प्रथा प्रचलित थी। सब पुत्रों के समान

अधिकार होते थे। स्त्रियों का अधिकार और धर्मशास्त्रों का प्रयोग करती थीं। मृत्यु के प्रति उनका भाव अन्य देशों की स्त्रियों के समान था। जननाल पुण्य कीमती वस्त्र धारण करते थे। सुमेरवासियों एवं बैबिलोनवासियों की वंशसूचा लगभग एक ही थी।

असुर संस्कृति—लगभग वा छठाब्दी तक मैसेपोटामिया में राज्य करने के पश्चात् बैबिलोनवासियों का पतन आरम्भ हो गया। आरम्भ में जो उत्साह था वह धीरे-धीरे कम हो रहा था। हम्मुरबी के राज्य काल में जनता को पूर्ण शान्ति और सुरक्षा प्राप्त थी। इसलिये जनता में भोग-विवाह की प्रवृत्ति ने कम लिया। हम्मुरबी की मृत्यु के पश्चात् पड़ोसी जातियों को भी बैबिलोन के वैभव का आश्वासन करने की आकांक्षा हुई। सुमेरवासियों के समय में ही असीरिया की असुर जाति ने मैसेपोटामिया पर आक्रमण आरम्भ कर दिये थे। परन्तु आक्रमण प्रथम में उन्हें पराजित करके भगा दिया था और वे घाटी के ऊपरी भाग में बस गये थे। उन्हें जब फिर मैसेपोटामिया पर अधिकार करने का सुषमसर प्राप्त हुआ। बैबिलोन की उस सभ्यता की काज केवल बहो नहीं उठाना चाहते थे अपितु कैसाइट (Chaldean) नामक एक पहाड़ी जाति और भी। इन लोगों ने १२०० ई. पू. के लगभग बैबिलोनवासियों से युद्ध करने के लक्ष्य पर शान्ति-पूर्वक उनके नगरों में बसना आरम्भ कर दिया। उनके इस व्यवहार में बैबिलोनवासियों को तनिक भी लगे नहीं हुआ। कैसाइट लोग अनुक्रम परित्यक्तियों की प्रतीति में थे। जहाँ कहीं भी लगे सबसुर मिलता था वहाँ वे शासन में हस्तक्षेप करते थे और अधिकार कर लेते थे। इस प्रकार उन्होंने अपने पैर जमा लिये थे फिर भी वे अभी तक बैबिलोनवासियों का पूर्णवत्ता सत्ता स्वीकृत न कर पाये थे। परन्तु लगभग १०३ ई. पू. हिती लोगों ने बैबिलोन पर भयंकर आक्रमण किया और बैबिलोन को नष्ट कर दिया। इससे बैबिलोनवासियों की शक्ति क्षीण हो गई और वे कैसाइट या कस्सिय जाति से पराजित हो गए। इन पहाड़ी जातियों ने युद्ध में जोड़ों का प्रयोग किया था जो कि बैबिलोनवासियों के लिए एक नई वस्तु थी।

असुर जाति का इतिहास—लगभग ६०० वर्षों तक कस्सिय लोगों ने बैबिलोन पर शासन किया। परन्तु उनके पड़ोसी असीरियावासियों ने उन्हें शान्तिपूर्वक न बँटन दिया। अपने आरम्भिक आक्रमणों में वे सुमेरवासियों से पराजित हो चुके थे। परन्तु ६०६ ई. पू. के लगभग उन्होंने बैबिलोन

वासियों के विरुद्ध सफलता-पूर्वक विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करनी थी। असीरियन या अशुर जाति का इतिहास अटिस्तामो से परिपूर्ण है। सुमेरवासियों से भी पूर्व ये लोग मैसेपोटामिया के उत्तरी भाग में बस गये थे। इनका संबंधमय इतिहास सभी से प्रारम्भ होता है। परन्तु अपने छत्तिशाही पड़ोसियों मैसेपोटामिया एवं मिश्र के कारण वे एक छत्तिशाही राज्य की स्थापना न कर सके। परन्तु बैबिलोन में कस्सिय जाति के शासन में घिपितता ■ सञ्चाल देसते ही इन्होंने १३०० ई. पू. के लगभग बैबिलोन को जीत लिया। ये लोग धारण और रथों का प्रयोग अपनी नैतिक शक्ति में बृद्धि करने के हेतु करते थे। द्विती मोरों से इन लोगों ने लोह निर्मित धस्त्र-धस्त्रों का प्रयोग करना सीख लिया। इन्हीं कारणों से ये युद्ध क्रमा में बढ़े निपुण थे। साहस और वीरता उनके चारित्रिक गुण थे। इनके देश देवता और स्वयं इनकी जाति का नाम अशुर (Asshur) था। ई० पूर्व १३वीं शताब्दी में रेमेजेन तृतीय के योग्य शासन में मिश्र की छत्ति बहुत बढ़ गई थी। अतः बैबिलोन जीत कर भी अशुर लोग अपने साम्राज्य की कोई हड़ भीष न रह सके और न ही मिश्र की छत्ति के कारण निकटवर्ती देशों को जीत सके। ११० ई. पूर्व के लगभग इन्होंने परिसिंधियों को अनुक्रम बाहर पड़ोसी राष्ट्रा पर आक्रमण कर दिये और मैसेपोटामिया में भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। ई० पूर्व २४० से लगभग ९१२ ई० पूर्व तक की सीर्य-अरबि में अशुर लोगों की शक्ति और समृद्धि क्रमशः १२ वीं १ वीं और ८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं ७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अपने चरमोत्कर्ष पर थी। अशुर जाति ने ई. पूर्व १३वीं शताब्दी में अपनी विजय-यात्रा में शलमनेजर प्रथम (Shalmaneser I १२७६ ई० पूर्व) के नेतृत्व में प्रारम्भ की थी। अशुरों के इस सीर्य-काशीन इतिहास में अनेक राजा हुए थे। साथ ही इस अरबि में कई बार बैबिलोन इनके हाथों से छिना और इनके मिश्र-मिश्र राजाओं ने इसे पुनः पुनः जीता। अशुर और निनीवे इन जाति के प्रधान नगर थे। असीरियन या अशुर जाति के अनेक राजाओं में से केवल दोहरे से ही राजा ऐसे हुए जिन्होंने शास्त्र में असीरियन साम्राज्य का निर्माण किया। शलमनेजर प्रथम (१२७६ ई० पूर्व) तिमसाथ पिलेजर प्रथम (Tiglath Pileser ११२० ई० पूर्व), अशुर नासिर पाल (Assurnasirpal, ८८० ई० पूर्व) तिमसाथ पिलेजर तृतीय (७४६-७२७ ई० पूर्व) शलमनेजर अनुर्ब (७२७-७२२ ई० पूर्व) सारगन तृतीय (७२१-७०२ ई० पूर्व) मेनाकेरिब

(Sennacherib ७०४ ई०) ईसरहेड्डन (Earschaddon ६८० ई०) एवं अशूर बानी पाल (Assur bani Pal ६९८ से ६९६) आदि अशूर साम्राज्यों में प्रमुख थे । बिबलेथॉन टिगसाब विजेजर तृतीय (७४३-७२७ ई० पू०) पूर्व के राज्य काल में अशूर जाति पूर्णतः संन्यस्त हो गई थी और वास्तव में बड़ी अशूर साम्राज्य का वास्तविक स्थापक था । उसने बेबिलोन और एमिस्त को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था । सारगन द्वितीय और जोड़ा था । उसने साम्राज्य-विस्तार की नीति का ही अनुसरण किया । उसने फिलिस्तीन को जीता हीब्रू लोगों को जीतकर बहुत बड़ी संख्या में कड़ी बना लिया और असीरियन साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर मैसेपोटामिया से फारस की खाड़ी तक और दक्षिण पूर्व में मिस्र तक बढ़ा दी । सेनाकेरिब अपने पिता सारगन द्वितीय से भी अधिक महत्वाकांक्षी था । उसने एशिया माइनर एवं फ्रीनीसिया के अनेक राष्ट्रीय नगरों को विजय किया । इसी बीच बेबिलोन ने विद्रोह कर फिर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी । इसलिये उसने बेबिलोन पर अधिकार करके उसे नष्ट कर दिया । उसका विचार मिथ विजय करने का भी था परन्तु मिथ की सीमा पर पक्ष फैला हुआ था जिसकी वजह से उसके बहुत से सैनिक मर गये । इसलिये वह वापिस लौट आया लौटते समय उसने मिथ को राजधानी बनाया और उसका नवनिर्माण करके उसे एक मध्य एवं सुन्दर नगर के रूप में परिवर्तित कर दिया । सेनाकेरिब के पुत्र ईसरहेड्डन ने मिथ-विजय करके पिता के स्वप्न को साकार किया और साम्राज्य में वृद्धि की । अशूरबनिपाल अशूर जाति का अन्तिम महान सम्राट् था । वह अत्यन्त साहसी एवं भयंकर यात्री था । उसके राज्यकाल में अशूर साम्राज्य अपनी औरत-हरिमा के उत्तम क्षिप्र पर था । उमन अमिस्त बना एवं साहित्य के उत्थान में महान योग दिया था । उसकी मृत्यु के १४ वर्ष पश्चात् ही अशूर साम्राज्य का पतन हो गया ।

मुक्त कला—अशूर जाति एक बर्बर और एक भयंकर जाति थी । ये लोग सैनिक थे । ये अपने को अशूर देवता (सूर्य) की मूर्तान मानते थे इसीलिए अपने देव को असीरिया और स्वयं अपने का अशूर कहते थे । बुस्साहग एवं औरता इनके जातिगत गुण थे । ये लोग कुशलता में बड़े निपुण थे । हिली लोगों की भाँति ये लोग भी मोह के अस्थ-सस्त्रों का प्रयोग करते थे । अशूर सैनिक पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होते थे । सेना के प्राय तीन अंग होते थे—
(१) पैदल सैनिक (२) अस्त्रारोही, एवं (३) रथारोही । मोड़ों और रथों के

कारण इनकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई थी। बुर्ग प्राचीन एवं मध्य की मण्डल करने के लिए ये विविध प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार के युद्ध-कला में अपनी समकालीन जातियां के अधिक उपलब्धिपूर्ण प। समुद्र सौग विभिन्न प्रदेशों को जीत कर उगाड़ देने लगे—सोमों की शरणापूर्वक हार कर देते थे। युद्धकर्मियों की साम शिबवा सने थे और मन्त्रक का मने थे। उन प्रकार का व्यवहार करने से उन्हें एक विशेष आनन्द प्राप्त होता था और वे इस पर गर्व करते थे क्योंकि उस समय के एक सिमानेस में बड़े ही यौवनपूर्ण युद्ध में उनके एक सहाय ने वे युद्ध क्षितिज कराये थे। मैंने इनकी साधों से पहाड़ा की कोटियाँ एवं पाटियाँ पाई हैं—इनके मस्तक काट कर मैंने इनके मकर की शोभा का इन मस्तकों से सजाया है। मैं अपने साथ अपने दास और अपरिचित वनराशि ल आया हूँ। असीरियन साम्राज्य की जीव मानव के हाइ-मॉन पर रसी गई थी और उनके मानवचर से सीखा गया था।

असीरियावासियों की संस्कृति प्रायः बबिलोनवासियों एवं सुमेरवासियों से मिलती जुलती थी क्योंकि बीसा कि डेविस का मत है संस्कृति एवं सम्पत्ता के क्षेत्र में उन्होंने इन दोनों का ही अनुकरण किया था। ये लोग देवताओं के मानवीय रूप की उपासना करने लगे। इस बात में भी बाबु और आकास की पूजा प्रचलित थी। उन्होंने बबिलोन को मण्डल कर दिया था परन्तु उसक देवता 'मरुदु' को अपना लिया। 'असुर' उनका प्रधान देवता था। युद्ध में पूर्व से उसके आधीर्षि को आकाश करते थे। पुरोहितों का सम्मान दिया जाता था परन्तु शासन प्रणाली में उन्हें बह महत्व प्राप्त न था जोकि राजा हम्मुरबी के समय में था।

निर्नये अपने समय का पूर्व का सबसे अधिक वैभवशाली नगर था। वह व्यापार और व्यवसाय का केन्द्र था। व्यापारीयण का असीरियन समान में जतना महत्वपूर्ण स्थान न था जिसका कि पुरोहित-वर्ग का था। वे मध्यम वर्ग में थे। इसका एक राजकीय कर्मचारी भी इसी वर्ग में सम्मिलित कर लिए जाते थे। असीरियावासी पराजित लोगों को बन्धो बना कर ले जाने में और उन्हें दासों की भाँति प्रयुक्त करने में दासों के साथ उनका अच्छा व्यवहार नहीं होता था बीसा कि राजा हम्मुरबी के समय में होता था।

असीरियावासी को कानों में बड़े निपुण थे—युद्ध में और भोगविनाय में। उनके जीवन में विज्ञान और गम्भीरता की कोई ग्यान प्राप्त न था।

स्वयं भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझी जाती थी। स्त्रियों को समाज में कोई महत्त्व न था। असीरिया-बासी उन्हें प्रेम और स्नेह की वस्तु समझते थे। परिणामतः स्त्रियों में भी शृंगार-प्रियता की प्रकृति का विकास हुआ। हमारी मित्र प्रकार से केवल शृंगार करती थीं। स्वर्ण एवं कपड़े के धामूपण करने करती थीं। सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करती थीं। पुरुष कोम हाड़ी करते थे और उन्हें बड़े बड़े केश रखने का शौक था।

साहित्य के क्षेत्र में असीरियावासियों ने अपने पूर्वजों और समकालीन जातियों का अनुसरण किया था। बीबीलोनवासियों की भांति वे भी मिट्टी की स्तंभों पर 'कीलाखर-लिपि' का प्रयोग करते थे। फिर भी दो बातों में उन्होंने खेद प्रवृत्ति की थी। इस लोको में फीनीशिया-वासियों की बर्णमाला को अपना लिया था। यह एक नई बात थी। बाद में इसी बर्णमाला ने 'कीलाखर-लिपि' का स्थान ग्रहण किया। कालान्तर में असीरियावासियों में यह भाव इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजकीय कार्य के लिए दोनों लिपियों का मोह होने लगा। ऐसे शेष प्राप्त हुए हैं जिसमें 'कीलाखर-लिपि' के साथ इस बर्णमाला लिपि का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अमुरबनिपास निनैवे में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की थी जिसमें २० ०० स्तंभों का संग्रह था। इससे पूर्व इतना बड़ा पुस्तकालय कहीं भी नहीं था। अमुरबनिपास को अपनी जेल-कक्षा पर मर्त्य था।

स्थापत्यकला मूर्तिकला एवं चित्रकला में अमुर जाति ने बीबीलोनवासियों अधिक उत्पत्ति की थी। यह एक प्राश्न्य का विषय है कि इतने क्रूर और बर्बर होते हुए भी कला के प्रति उनकी तीव्र रुचि थी। निनैवे के महलों के महार उनका उच्च स्थापत्य-कला के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वे लोग बड़े सुन्दर और महाराज बना बैठे थे। भवनों की रचना सुन्दर बन से की जाती थी। तब पर मकानों के कार्य न थी वे लोग सिद्धहस्त थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें चित्रकला का भी अच्छा ज्ञान था। दीवारों पर मुहराई कर के सुन्दर बन बनाये जाते थे। इन चित्रों में पशुओं के चित्रों की प्रधानता है। चित्र के प्राश्न्य और सजीव होते थे। वे लोग ईंटों की रचना भी जानते। इन की हुई ईंटों का प्रयोग मुख्यतः राजमहलों या मन्दिरों के निर्माण के लिए हो जाता था। अमुर लोग हाथी दाँत का प्रयोग करना भी जानते थे। इस अनुविद्यासी व्यक्तियों के विचारों की समझी समझा जाता था। देश में कपास के बंटी होती थी। इसलिए वस्त्र उद्योग में असीरियन साम्राज्य में बड़ी उन्नति

की थी। इन लोगों ने फसों की उपज की धोर भी पर्याप्त ध्यान दिया था। विशेषतः अन्न की उपज बढ़ाने में उन्होंने बड़ी उत्पत्ति की थी। फिर भी अन्न-संस्कृति के विषय में एक बात पुर्युष स्पष्ट है कि असीरियावासी बड़े अन्न-प्रचुरता-कर्ता थे, अन्धे आधिकारकर्ता नहीं थे।

असीरियन साम्राज्य में राजा असीरियन अधिकारों का उपयोग करता था। उसका आदेश ही कानून था। वह निर्दुष्क होता था। शासन प्रबन्ध की धोर राजा बड़ा उत्कर्ष करता था। असीरि कीमती साम्राज्यों से उन्होंने यह सिखा प्रकृत की थी कि शासन को व्यवस्था पर ने राज्यों को बन्ध देती है और घर के बाहर के राज्यों से पालस प्रदान करती है। शासन-संवादन बड़ी कठोरता-पूर्वक होता था। सम्पूर्ण राज्य को लगभग ३० प्रदेशों में विभक्त कर दिया गया था। प्रत्येक प्रदेश के प्रबन्ध सम्राट के विश्वासपात्र व्यक्ति होते थे जो उसकी आज्ञानुसार कार्य करते थे। प्रत्येक प्रदेश एक निश्चित मन-रूपि सम्राट को नियमित ढंग से देता था। स्वामीय शासन में प्रत्येक की पर्याप्त स्वतंत्रता थी। विद्याय साम्राज्य के सुप्रबन्ध के लिए एवं व्यापार की उत्पत्ति के हेतु सम्पूर्ण साम्राज्य में सड़कों का निर्माण कर दिया गया था। सम्राट स्वामी रूप से दूत और दूतचर रखता था जो उस पूरे साम्राज्य के समाचार देते थे। परन्तु यह सब सुप्रबन्ध राजा के हित के लिये था प्रजा के हित के लिए नहीं। इसीलिए प्रजा दुःख से सुखी न थी। राजा के विपदाय अपने भोग-विनाश के लिए बनता था सीपल करते थे।

राज-सत्ता और विनाश की घातकों के मध्य संबंध ही बँध रहा है। विशेषतः निर्दुष्क एवम् राज-सत्ता को देखे ही नष्ट कर देती है जैसे बीमक काष्ठ को कर देती है। असीरियन साम्राज्य के साथ भी ऐसा ही हुआ। अन्न-संस्कृति के बाव साम्राज्य की शक्ति का पवन आरम्भ हो गया। छोटी मछली को बड़ी बछली निगलती है। शक्ति-हीन अन्न-साम्राज्य को ६१२ ई० पू० में मिडिया (मध्य) एवं चाल्ड (Chaldean) लोगों की संयुक्त शक्ति ने नष्ट कर दिया।

चाल्ड (Chaldean) सम्प्रदाय—ऊपर बर्णन किया जा चुका है कि ६१२ ई० पू० में मिडिया एवं चाल्ड की संयुक्त शक्ति ने असीरियन साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। इन लोगों ने निर्धन को पूणतया मिटा दिया। इस संयुक्त सेना का अनुष्ठान जालि के मेमोरोसियर में किया जा। इससे चार वर्ष पूर्व ६१६ ई०

सबसे अधिक उपतिथीय नगर हो गया। सम्राट शान्ति और सुरक्षा के महत्त्व को जानता था। उसने अपने पड़ोसी मिथ मिडिया फारम आदि राष्ट्रा से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे ताकि उसका देश प्रबलित कर सके। उसके समय में बैबिलोन में बजाहुरस्त बड़ी मस्जिदों के नाश किये जाने थे। कीमती और सुन्दर कालीन बनाये जाते थे। सोने और चांदी के काम में भी बैबिलोनवासियों ने बड़ी उत्पत्ति की थी। घामुपाय और ब्रवाहगत के काम के लिए बैबिलोन बहुत प्रसिद्ध हो गया था। यहाँ की मजदूरों और बरतन पूर्व में बड़े लोकप्रिय थे।

विज्ञान एवं परित्त के क्षेत्र में भी सन्द सोना ने अनेक उपलब्धताएँ प्राप्त की थी। उहाँ की स्थिति के आधार पर वे अधिकवासी करते थे और बहुला का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। उन्होंने सारे को १२ समूहों में विभक्त कर दिया था। ये बारह समूह बहो हैं जिन्हें अब पाश्चात्य संसार Twelve Signs of Zodiac के नाम से पुकारता है। इन्होंने मुख्य-मुख्य ग्रहों के नाम भी रसे। ये संख्या में सात थे। प्रत्येक दिन का नाम उमी बह-बैरना के नाम के अनुसार हो गया जिसकी उस दिन पूजा होती थी। बाब में इरानी और रोमन लोगों ने बड़ी नाम अपने देवों और देवताओं के अनुसार रख लिए। तभी से सप्ताह के वर्तमान सप्ताह दिन बने जा रहे हैं। इस विषय में पश्चिम सन्द लोगों का प्रसिद्धि है। मेसोपोटामिया स्वयं एक कला-श्रेणी और सुसंस्कृत व्यक्ति था। अत्यन्त उसने अपना अधिकार समय-काल संस्कृति के विकास के हेतु समित कर दिया था। उसने प्रमाणित शान्ति की नीति का ही अनुसरण किया यद्यपि उसे महदियों के विरोध का समन करने के हेतु को बार बहा (Judah) पर पाश्चात्य करना पड़ा। दूसरी बार उसने महदियों का पूरी तरह से समन किया और अधिकार विरोधी महदियों को बड़ी बहाकर बैबिलोन में धावा।

मेसोपोटामिया की मृत्यु के १ वर्ष पश्चात् लगभग १२१ ई० पू० में मेसोपोटामिया राज्य (Chaldea) नाम का राजा हुआ। वह एक उदार और दयालु शासक था। आगार्थन और पुराण सम्बन्धी लोगों में उसकी विशेष शक्ति थी। उसने अपने समय में बैबिलोन में अनेक जगह नुशाने बनवाई थी। इन और उसकी इतनी शक्ति थी कि उसे राज-कार्य भी नीरव प्रतीत होता था। उसने मिथ के असेनाशन की शक्ति बैबिलोन में धार्मिक सुधार करने की भी चेष्टा की थी। इसके बैबिलोनवासी—विरोधित पुरोहित वर्ग उससे असन्तुष्ट हो गया। इसने उसका मन राज-कार्य की ओर से और भी अधिक विरक्त

हो गया और उसने राज्य अपने पुत्र बेल्शेजार (Belshazzar) को सौंप दिया।

बेल्शेजार मयोग्य शासक था। जगता में उसके प्रति ठीक भी क्या न थी। वह बड़ा धनुरदर्शी था। फलतः फारस के सम्राट कुव्व (Cyrus) के शासनकाल के समय से उसने मिस्र एशिया माईनर के सीरिया और सुनाम के सैर्या राज्यों से सम्बन्ध कर ली। परन्तु कुव्व ने उत्काव ही सीरिया पर शासनकाल करके उसे पराजित किया और उसके बाद बेबिलोन की ओर प्रसरण हुआ। बेबिलोनवासी बेल्शेजार ने पहले ही असमर्थता से उन्होंने राजा का साथ नहीं दिया। इस प्रकार कुव्व ने ५३८ ई० पू० में सत्त्व साम्राज्य का अन्त कर दिया। सत्त्व साम्राज्य के अन्त के साथ ही हजारों वर्षों से चला आ रहा सैमेटिक जातियों (सुमेरवासी बेबिलोनवासी असीरियावासी और सत्त्व—चारों ही सैमेटिक जाति के थे) का साम्राज्य भी समाप्त हो गया। इसके पश्चात् अर्य जाति के लोगों का प्रमुख स्थापित हुआ। इनमें प्रथम थे ईरानवासी।

चीन—चीन भी संसार की प्रारंभिक सभ्यताओं के निवास-स्वत के रूप में गिना जा सकता है। पुरातत्वविदों ने अनेक प्राचीन पापाखों की खोज की है। प्राद्विन चीनी गाँवों में खूबे से और सुधर पावते थे। वे कुम्हाड़ों और पत्थर के वास्तुओं का प्रयोग करते थे। वे बुनना जानते थे और मिट्टी के बर्तन भी बनाते थे। वैज्ञानिकों ने लिखा है कि लगभग २७०० से २४०० ईस्वी पूर्व चीन में सम्राटों का शासन था।

जॉन वैन ड्यून सातमवर्ष के अनुसार चीन की प्राचीन सभ्यता भी महियों के किनारे ही विकसित हुई थी। राजा और फारस से लगभग ५००० मील दूर की भूमि चीन है। वहाँ की बरखी उपजाऊ है। किन्तु चीन की प्राचीनता के प्रमाणों का अभाव अनुपलब्ध है। लगभग २२१ ईस्वी पूर्व में चीन-ज्वांग भी नामक एक चीनी सम्राट को अपने ऊपर इतना गर्व हो गया कि उसने अपने समय में सारे ऐतिहासिक प्रमाण नष्ट करवा दिये ताकि प्राये की पीढ़ियाँ उसी से इतिहास का प्रारंभ जान सकें। यद्यपि प्राये की पीढ़ियाँ इस बात को नहीं मानती किन्तु इतिहासकों का कार्य निरन्तर ही जारी रहता है।

चीन में मनुष्य की उपस्थिति बहुत ही प्राचीन काल में मिलती है। उसे 'पेकिंग का मनुष्य' कहते हैं। वह निष्पक्षराल मानव से भी प्राचीन था।

मद्यपि इसके प्रमाण नहीं मिलते कि वहाँ मनुष्य तब से निरंतर रहा परन्तु चीन की पुरानी कथाएँ बताती हैं कि लगभग ३० • ईस्वी पूर्व में कुछ सर्व सम्म जातिवाँ पश्चिम से बसकर यांग्सी नदी की घाटी में बस गई थी। यह लोग रब के पीले रंग की और मंगोल थे। इनके पास पशु थे और वे खेती भी करना जानते थे। उनके यांग्सी घाटी में बसने पर एक राज्य स्थापित हुआ। ३००० ईस्वी पूर्व मद्यपि पुरानी सिमि है, किन्तु संभवतः यह बटना और भी प्राचीन हो सकती है।

लगभग २२ ५ ईस्वी पूर्व में यु नामक चीनी नेता सम्राट बन गया। वह बड़ा प्रणय शासक था। उसने कहा जाता है की पर्वत काटकर नौ नदियों बनाई। उसने घनेक परम्युत कार्य किये। उसने घोषी पैमिस्तान की ओर पश्चिम में भी विजय प्राप्त की और बसिहा को कुछ आदिम जातियों को भी पराजित किया। यु के बंधन हूँसिया मर्वात सम्म कहलाये। उन्होंने २२०५ से १७७५ ईस्वी पूर्व तक शासन किया। पश्चिम शासक निन्दुर प्रमाणित हुआ और १७७५ ई० यु को क्षमति के समय यह मान गया।

कांति का नेता तांग था। उसके नाम से छांग बंध का राज्य स्थापित हुआ। इस बंध में ११२२ ई० यु तक राज्य किया। इस बंध का पश्चिम शासक भी अत्याचारी हो गया और जाठ प्रांत के लोगों ने विद्रोह कर दिया। छांग सम्राट ने आत्महत्या कर ली और जाठ बंध सख्त हुआ।

हूँसिया और छांग बंधों के राज्य-काल में चीनियों में बीरेबीरे सम्मता विकास करती गई। उन्होंने खेती के लिए बोझों का प्रयोग प्रारंभ किया। वे बोझों को यातायात के काम में भी खाने लये और बुद्ध में भी उनमें काम लेते थे। बाहु प्रयोग प्रचलित था। वे ताँबा काँसा लोहा और चाँदी का प्रयोग करते थे। रेशम के कीड़े पालना रेशम बुनना इत्यादि कार्य चीनियों में प्रचलित थे। चीन की सम्मता का विकास एकांत हो रहा। सम्म जातियों से उसका संपर्क बहुत दिन बाद हुआ। मिथ सुमेर के विषय में तो संभवतः वे जानते भी न थे। संभवतः भारत से उनका संपर्क था क्योंकि ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि ३५०० ई० यु के लगभग भारत और चीन में कुछ संबंध था। बास्पीकि रामायण जैसे पाश्चात्य निदान लगभग २ • ई० यु० की रचना मानते हैं उसमें भी चीन से खाने वाले रेशम का उल्लेख मिलता है। यदि खान से बाँस ली बर्र पहुँच भारत में चीन से रेशम जाता था। तो इने मानने में अत्युक्ति नहीं होगी कि संपर्क और भी पुराना संभवतः रहा होगा।

प्रायःकाल भारतीय इतिहास के नाम पर पहले तो सिंधु घाटी की सभ्यता का उल्लेख होता है। और फिर यह कहा जाता है कि ई० पू० १२०० में आर्य भारत में आ गये। एक मत के लोग कहते हैं आर्य भारतीय ही थे। वे कहीं से नहीं आये। बल्कि किसी सुमेरुवासी एस्टक इन्का और पशु (फारसी लोग) सब यहीं से बाहर गये। जैसे सचमुच ही भारतीय संस्कृति का इनमें काफी प्रभाव मिलता भी है। पर हम निश्चय से तो नहीं कह सकते। मैक्समूलर ने प्रतिपादित किया था कि आर्य बाहर से आये। बिन्टरनिस्स के समय तक उनका आगमन २५०० ई० पू तक का विमान तक आते-आते १५०० ई० पू यह मया, बल्कि और लोग तो १००० ई० पू० तक उतार आते हैं।

पहले मैं विवेका से भारत के कुछ साम्य बता दूँ।

मिथुन में नाब गच्छ पूजा प्रचलित थी वृषभ पूजा भी थी। सुमेर में हीमात आदि की उपासना थी। इन्का का धर्म ससृष्ट में सूर्यचिन्पी होता है। माया सभ्यता की स्थिति छाड़ी पहनती थी। यूनानी तथा फारस के लोग और निकटवर्ती लोग के देवता भी अग्नि, इन्द्र इत्यादि हैं। मिलते जुलते हैं। यह सांस्कृतिक संतुष्टि का फल हो सकता है। यह भी हो सकता है कि विभिन्न समयों में भारतीय जातिवाँ बाहर जाती रही है। आर्य बाहर से आये वे इसका कोई पक्का प्रमाण नहीं मिला है। एक बर्णन महाभारत में सरस्वती तीर्थ के बारे में आता है कि एक बार ऋषि लोग वैमिपारम्भ में एकत्र हुए। सब वे वहाँ समा न सकें तो पूर्व की ओर बढ़े। यह भी उल्लेख है कि मिथि जनक ने मिथिला बसाई थी। यह भी उल्लेख आता है कि अयस्थ और बंद बहिरा ने मये थे। पर इससे यह तो निश्चित नहीं हुआ कि वे बाहर से आये थे। उपर्युक्त का कहना है कि अश्वमेध में एक वर्ष वेद्य का सा भी उल्लेख है, यह नहीं कहा जा सकता कि आर्य ठीक वेद्य के वासी थे। विलक का कहना है कि वे उत्तरी द्रुम से आये थे। पाश्चात्यो का कहना था कि अश्वमेध के इससे मंडल में ही गंगा का वर्णन है। अतः आर्य बाह में नहीं पहुँचे थे। पर अश्वमेध में भीते का भी उल्लेख नहीं है। परन्तु हरप्पा में भीते की मान्यता थी, ऐसा बड़ा एक सील से प्रकट हुआ है। हरप्पा को पाश्चात्य आर्यों से पुराना मानते हैं कि हरप्पा ही को आर्यों ने नष्ट किया था और हरप्पा को ही अश्वमेध में हरषुपीय कहा गया है। (अर्थात् इस हरषुपीय नगर का पुराणों का महाभारत—इही भी और उल्लेख नहीं मिलता।) तब तो आर्यों को भी

जाते की जानकारी होगी चाहिये थी। हरप्पा की धनायों का कहने का एक कारण था कि वहाँ घोड़ा नहीं मिला था और घोड़ा धार्यों के पास था। परन्तु हरप्पा सभ्यता का परवर्ती काल सोपस में निकला है, और वहाँ घोड़ा भी मिला है। यद्यपि यह भी कुछ स्पष्ट नहीं रहा। पिस्तई का मत है कि घरा सभ्य से धार्य निकला है। सेती करने वाल धार्य थे। द्राविड और शरीन तथा मुंडा लोगों की भारतीय सभ्यता (racial assimilation) से धार्यों का जन्म हुआ था। वे बाहर के नहीं थे। वहीं से बाहर गये थे। पर पुरानी जातियों की सभ्यता से एक वैदिक संस्कृति का निकलना ठीक संभव नहीं लगता। फिर स्पष्ट ही इसका उत्प्रेषण है कि धार्य किसी से लड़ कर बड़े ने जीते थे। यदि वे वहीं के होते तो वे किस धरावासी (विना नाक वालों) से लड़ेंगे? इतर के एम शास्त्री ने बहुत ही तर्कसंगत ढंग से बताया है मोघन-जो-बड़ो और हरप्पावासी वास्तव में पीपल वृक्ष को महत्त्व देते थे। मोघन-जो-बड़ो ने जो दो घोषों वाले देवता की ध्यानमग्न मोघ-मुद्रा में बैठे साकृति निरूपी है वस्तुतः वह मनुष्य नहीं है। वह एक भैरव का चित्र है। उसके हाथ काँठर हैं और पाँव छाप हैं। अनेक पशुओं को भिंसाकर वह एक देवता बनाया गया है। मोघन-जो-बड़ो में वृक्ष में भी एक देवता बनाया गया है।

हमारे मतानुसार ऋग्वेद में वृक्ष में बसा बताया गया है। क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मोघन-जो-बड़ो और हरप्पा में वसत और नाप धारि जातियाँ थीं? वास्मीकि रामायण में उल्लेख है कि राम के भाई भरत के पुत्रों ने विष प्रदेश में मयसों की समूह बस्ती को जीता था। एरस्वती नदी के तट पर महाभारत में उल्लेख है, बलराम को समूह भागों की बस्तिवाँ मिली थी जिन्हें समीरा ने उजाड़ा था। यह सब विषय फिर से सोचने को बाध्य करने लायक तथ्य हैं।

डॉन और इब्रहम ने खोज से प्रमाणित किया है कि ११ ०० वर्ष पूर्व उत्तरी पृथ्व प्रक्ष का जलबानु नम था और उन दिनों धरतीका क सहाय रेगिस्तान की भूमि में घन जंगल थे। तहारा में वे पुष्पाएँ भी मिल गई हैं जिनमें बिज बने हैं और पत्ते वन के जनुषा के ही के बिज हैं। यदि हम मान लें कि धार्य तब थे दक्षिण की जले और क्रमशः धराधियों में उत्तर कुप्य पार करके भारत धार्य तो विचार के लिय गया प्रदेश गुप्त जाता है। इससे पुन कि हम इस प्रकार के किसी निष्कर्ष पर पहुँचें, वर्तमान काल

में जो मान लिया गया है कि धार्य ११०० ई० पू० में धार्य और वैदिक काल १२०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक था, इसका विवेचन करें।

कन्यायाताल भाषिकसाल मुन्शी ने इसे मान लिया है।

विज्ञान को कोई चुनौती कैसे दे? धारकस रेडियो कार्बन डेटिंग (रेडियो कार्बन की जाँच से तिथि निर्णय) होता है। उसे सब चुनौती देते रहते हैं। परन्तु क्या वह पक्का तरीका है? मैन्सिस्टर विश्वविद्यालय के एच एच राउले नामक सेमेटिक विज्ञान में पी ई राइट को उद्धृत किया है, जिन्होंने इस पर जाँच की और कार्बन १४ टेस्ट के एक ही सक्की के टुकड़े पर तीन प्रयोगात्मक परीक्षण किये गये तो उसी एक टुकड़े को तीन बार के भ्रम्य प्रसंग प्रयोगों में तीन तिथियाँ निकली—७४६ ई० पू० ६६५ ई० पू० और २८२ ई० पू० और तीनों तिथियों के बारे में यह भी कहा गया है कि हर तिथि के इधर या उधर २७० वर्ष घटायें बढ़ाये जा सकते हैं। यानी जो वस्तु ७४६ ई० पू० की थी वह ७४६—२७०=४७६ ई० पू० की भी हो सकती है, और ७४६+२७०=१०१६ ई० पू० की भी हो सकती है।^१

इससे यही बात होता है कि सभी स्वयं रेडियो कार्बन डेटिंग भी पूरी तरह से अतिम निर्लभ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह धीरे धीरे ही विस्तृत ठीक तिथि बताने में समर्थ हो सकेगा। धार्य जो ११०० ई० पू० बताया गया है वह $११०० + २७० = १३७०$ भी हो सकता है और $११०० - २७० = ८३०$ भी।

यह ता रहो तिथि-निर्लभ्य के इस वैज्ञानिक पथ की बात। रही यह कि वा इस आधार पर भारत में हस्तिनापुर की प्राप्त वस्तुया का महामार्य-कालीन ही मान लिया गया है उसका कोई प्रमाण तो मिला नहीं है। रेडियो कार्बन डेटिंग से धार्य यह हो सकता है कि हम बता सकें कि कितने हजार वर्ष की वस्तु हो सकती है परन्तु यह नहीं कि वह १२०० की है या १३०० की है। और फिर यदि यह भी समझ हो तो यह किस तरह कह सकते हैं कि यह धमुक वस्तु है, धमुक काल की है। प्रमाण में कहा गया

1 'The meaning of the dead sea scroll—A Powell Davies Signetkey Book U S America June 1956, pp. 41

है कि हस्तिनापुर में बाढ़ आई थी और यहाँ भी बाढ़ के बिना है। परन्तु प्रश्न है कि क्या किसी नदी में एक ही बार बाढ़ आयी है? इसके घातिरिक्त कुछ विज्ञान लोगों ने पुराणों के भी साक्ष्य देने की चेष्टा की है। ऊपर हमने मुन्नी की का नाम बताया है यहाँ हम मुन्नी की के प्रमाणों का विवेकन करते हैं।

यदि हम स्वीकार कर लें कि हरप्पा संस्कृति की शीट नष्ट हो गई और जिस धरे पावों (painted grey ware) नाम लोगों ने ११३० ई० पू० के लगभग यहाँ विकास किया था वो भी हमारी समस्या नहीं सुसम्पत्ती। यदि वह धार्य हो जाये तो और यहाँ से इस नये से तो भाषा की समस्या निश्चित नहीं सुसम्पत्ती। भारत में कई बिदेसी जाये हैं—यूनानी एक कुषाण तुर्क मुगल और एक अंगरेज। न तो इन बिदेसी भाषा की भाषा जनता से उठती न उनका भाषा की संस्कृति की भाँति विकास ही हुआ। यदि धार्य तभी भारत में जाये तो वे इतनी शोधिता न अपनी भाषा जमा करके भारत की मूल भाषाओं को कैसे हटा सके? ६०० ई० पू० में पाणिनि ने लौकिक संस्कृत के व्याकरण की रचना की है, जिसका धर्म है कि वह एक वैदिक भाषा विकसित होये-होये लौकिक भाषा का एक कारण कर चुकी थी जो बोलचाल से भी काम आयी थी। परन्तु अनार्य भाषाओं का क्या हुआ? क्या वे कुछ हो गईं? इसकी धीम्र तो गई? या उस समय भाषा के अन्तिम रूप का आक्रमण हुआ था? संस्कृत भाषा का जनता तक उतर जाना तो वह प्रमाणित करता है कि धार्यों और धनायों का संपर्क काशी जैसे समय तक चला उनका सह-अस्तित्व रहा और इससे प्रबल होता है कि धार्य जातियाँ भारत में एक बार नहीं घनक बार घाँ होयीं। यदि हम धार्मिकानिक ढंग से कहें कि लौकिक संस्कृत तो कभी जनभाषा था ही नहीं वह भी लगभग ६०० ई० पू० में पावों जनभाषा को जिसका वैदिक प्राकृत से विकास हुआ था। ७०० ई० पू० में मास्क ने वैदिक भाषाओं को बुराह कहा है क्योंकि उनका अनुष्ठान वैदिक भाषा बहुत प्राचीन हो चुकी थी। क्या हम मान सकते हैं कि ४० वर्ष में ही भाषा बुराह हो जाती है?

धार्यों के धायमन का काल का हस्तिनापुर का कुदाई पर निर्णय किया गया है। रेडियो कार्बन डेटिंग हुआ है। यह वह प्रामाणिक काल माना गया है कि समय १००० ई० पू० ही था जब हस्तिनापुर नष्ट हुआ था। परन्तु रेडियो कार्बन डेटिंग से यह भी पता चलता है कि यहाँ धार्य हो रहते थे?

हस्तिनापुर के प्रथम दो आवासों में लोहा नहीं मिला है, तीसरे में अवश्य मिला है। भारत में लोहा कब आया यह भी एक विवादास्पद विषय है। मुन्शी जी के अनुसार यदि हम स्वीकार कर लें कि—

(१) महाभारत युद्ध ४७ ई० पू० में हुआ था

(२) उस अवकाल में वैशम्पायन को मूल महाभारत सुनते सुना था जब कि उत्पत्ति में जनमेजय ने मागधक किया था

(३) जनमेजय अश्वमेध का नाशी था उस समय व्यास वहाँ मौजूद थे।

(४) और व्यास तथा जनमेजय की मृत्यु ८१० ई० पू० में या उसी का सख्ती है कि व्यास पाराशर पुत्र जिनका संहिता में उल्लेख है ६१० ई० पू० में पैदा हुए थे—

तब भी हमारे सामने यह प्रश्न आती है। हमें वह भी मानना पड़ता है कि संहिता (वैदिक) की भाषा और महाभारत (सौकिण्ड) की भाषा दोनों ही सम सामयिक थीं जब कि प्रथमविश्व और उपनिषदों में वैदिक भाषा का क्रम विकास दृष्टिगत होता है। इसकी हम व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं? इसका प्रश्न तो होता है कि मार्ग्य को बोधनाम की भाषाएँ लेकर आये थे— एक वैदिक दूसरी सौकिण्ड? यह बात समझ में नहीं आती। या तो तब भाषाएँ बड़ी तेजी से बदलती थी या पसक भारत जनता में उठर आती थी। या तो सारे उत्तर भारत में तब कोई नहीं रहता था, हर जगह हरप्पा-सम्यता अपना आप घुस हो जाती थी उसका कहीं चिन्ह भी नहीं बचा था या यहाँ के मूल निवासी नयी भाषा सीखने के इतना चौकीन थे कि वे किसी विदेशी के आकर नयी भाषा केन की प्रतीक्षा कर रहे थे। और सारांश तो यह है कि यह भूरे पानी के साग भी कैसे विचित्र है कि हस्तिनापुर तो उन्होंने बाढ़ के कारण छोड़ा परन्तु कपड़ का बिना बाढ़ के ही परित्याग कर गये।

यदि हम यह मान लें कि वैदिक भाषा बलाजकरी के मैसूरों की भाषा से विकसित हुई अथवा १४० ई० पू० के समकालीन ॥ और संहिताओं की रचना १००० ई० पू० से ८३० ई० पू० में हुई तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि ८३० ई० १००० ई० पू० के २०० वर्षों में ही वैदिक भाषा की जनक सौकिण्ड ने जो और वास्तुनि भाषा के पूर्ण विकास के पहले ही उसका इतना अच्छा व्याकरण भी लिख दिया था? जब वैदिक ऋषि ने 'पुरु' भर्षा

प्राचीनकाल का वर्णन किया है तब हमें यही मानना होगा कि वह ज्यादा से ज्यादा १०० या २०० बरस की बात कह रहे हैं। क्या उस समय लोगों की माँ इतनी कमबोर थी।

यह प्रश्न हमारे सामने आते हैं और हमें इन्हें देखना होगा और अपने पूर्वजों का स्वयं धारणक है। यदि हरप्पा ईस्ट बार्नार्थ है और चित्रित से पात्र ईस्ट बार्नार्थ के अंतिम धारणक का प्रतीक है तो हमें उन बार्नार्थ को ईस्टना पड़ेगा जो हस्तिनापुर में नहीं बसे बल्कि प्रयोध्या और अन्य स्थानों में बने हस्तियाँ के साथ रहे और हस्तिनापुर में ही उनकी यात्रा इतनी उतर सकी। यदि हम मान लें कि पीले पार्थों वाले (ochre coloured ware) भी कोई बार्नार्थ में पुराने सोव से निकल बंधन कर्म और ब्रह्मण्य से और यह सोच २० वर्ष रहे (समय १४० से १२० ई पू तक) तो हम यह याद रखना पड़ेगा कि कंस कृष्ण की जाति का था और कृष्ण यदुवंश के थे जोकि कुरुवंश के एक पूर्वज थे। तो क्या उन्हें बार्नार्थ-पूर्व कहा जा सकता है?

परंपरा पुरु से पाण्डवा तक ३८ पीढ़ियाँ बतायी हैं और यदि प्रथम एक पीढ़ी बीस वर्ष की मानी जाय तो $38 \times 20 = 760$ वर्ष होते हैं। यदि महाभारत युद्ध ८४० ई पू में माना जाता है तो पुरु का समय १६१० ई० होना है और यह ब्रह्मण्यकोई के लेखों के समय से पहले पहुँच जाता है। हम ऐसा तो नहीं कर सकते कि अपनी सभ्यता के लिये परंपरा से थोड़ा भाग ले लें और थोड़ा सा छोड़ दें। यदि ११२० ई पू में बार्नार्थ हस्तिनापुर पहुँचे थे तो वह समय हस्तिना का होना चाहिये जो पाण्डवों से १६ पीढ़ी पहले हुआ था। उसका समय १११० ई० पू होना चाहिए उनके जो २२ पूर्वज विनाये गये हैं उनकी व्याख्या हम कैसे कर सकेंगे?

मैं तबिक इस परंपरा पर और भी विचार करना चाहता हूँ।

श्रमेर में मनु इसा पुरुषों धातु गुरुव और यथाति की (पुरु) प्राचीनकाल के व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है। इसका अर्थ है कि जब इन व्यक्तियों की रचना की गई थी तब तक उनके पीढ़ियाँ पुत्रर पुत्री थी। यदि इसकी हरप्पा निवासियों से सड़ने वाला पुरंदर माना जाये तो वह सर्व श्रमेर में सभ्यता के व्यक्ति के रूप में उल्लिखित है। फिर पुरु के भाई ने यदु, पूर्वपु, द्रुह्य और मनु। यदु की सज्जन यादव से और द्रुह्य भी इन्हीं में अन्य थे। पीरव या बाद में पीरव कहलाने वाले पुरु की संज्ञान थे। द्रुह्य भोज की संज्ञान से और यदु श्रमेर की। यदि (पीरव यादव के रूप में)

ब्रह्म और स्मिन्ध्व भारत में बाह्र में बाये वे तो उन्हें प्राचीन परम्परा में वर्णित करने की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं थी। पौराणिक परम्परा यह स्पष्ट कहती है कि यवन तो भार्यों में से ही जन्मे थे। महाभारत में जब कर्ण भुविष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने की सलाह देते हैं तब उन्होंने स्वीकार किया है कि उनकी जाति के लोग यदु की संतान थे और उनका सम्मान उतना नहीं था जितना पुरुवंश का। उन्होंने कहा है कि परशुराम के युग के ब्राह्मण क्षत्रियों-युद्धों में क्षत्रियों का बहुत ध्वंस हो चुका था। तत्कालीन अभिक्रांति क्षत्रिय अपने को इसा और हस्तिना की संतान कहते थे। उन्होंने युवनाश्व मांभला भागीरथ कातिवीर्य मरुत और मरुत को प्राचीन राज के सासकों के रूप में विभागा है।

हम सोया का अपना एक भार्य सुगोस था। युद्ध के लक्ष्य प्रवीर का धूरसन देस की एक राजकुमारी से विवाह हुआ था। उसके पुत्र मनसु का सीबीर राजकुमारी से विवाह हुआ। संकट घाने पर कुब के पिता संबरण सिन्धु देस को गये थे। उनके पितृव्य पुष्यत के समय में पांचासों ने अपनी सत्ता झगग कर ली थी। जयतसेन का शुभचर से विवाह हुआ था। यह विषय की खाने वाली थी। विषय विष्णुपत्त से हसिए में था। पाणिनि (६०० ई० पू०) ने इसका उल्लेख किया है और ब्राह्मण ग्रंथों में भी उसका नाम आया है। अंगदेस की राजकुमारी से अश्वि ने विदेह कुमारी से देवातिथि ने उसक (नाम^१) की पुत्री से अहस ने और कासीराज की पुत्री से पुष्यत के पुत्र भरत ने विवाह किया था।

इस प्रकार से पांच देस की प्योरी तो फिट नहीं बैठती दिखाई देती।

इन विषय पर श्री के एन० शास्त्री ने अपनी 'न्यू साइट ऑन दी इन्डस सिविलिजेशन' में अच्छा विवेचन दिया है।^२ हरितनापुर में मनुष्या के आवास के पाँच स्तर मिले हैं। बार बार बीच में बस्ती बीछन में है।

प्राचीन बस्ती—गमय ११०० ई० में १२०० ई०

१ कौरव नाम भीम का नाम था—महाभारत में उल्लेख है।

२ New light on the Indus civilization Atma Ram & Sons Delhi p p. 109

बीया बीरामा । इसके नीचे बीरामा मिला है ।
इसके नीचे ४थी बस्ती है । समय २०० ई० पू० से १०० ई० पू०

तीसरा बीरामा । फिर बीरामा मिला है ।
तीसरी बस्ती इसके नीचे है । समय १०० ई० पू० से १०० ई० पू०

दूसरा बीरामा । फिर बीरामा मिला है । बाढ़ से विनाश ।
फिर नीचे दूसरी बस्ती है । ११०० ई० पू० से ८०० ई० पू०

प्रथम बीरामा । फिर पहला बीरामा है ।
इसके नीचे पहली बस्ती है । समय ११०० ई० पू०

इसके नीचे प्राकृतिक घरातम है ।
पुरावस्तुविद बीरामा ने दूसरी बस्ती के निवासियों को चित्रित प पात्रों

बासा वैदिक धर्म कहा है । उसका समय ११०० ई० पू० से ८०० ई० पू० मिला है । यह लोथ महाभारत-काल में हस्तिनापुर में रहते थे । हम ऊपर राजवंश का उल्लेख कर आये हैं । श्री चारुमी भी कहते हैं कि हम हिसार से बाढ़ सड़मन से १८ फीट की गहरी निचलू के समय में आई थी । १८ बर्ष की घोरत से बाढ़ लाग के मरानुसार करीब ८० ई० पू० में मानी गई है । यह माटी की पर्व ७ फुट है । सास ने इसे १०० बर्ष का भाषाण माना है । यों निचली सड़ह ११०० ई० पू० मानी है । किन्तु राजवंश के धनुवार हस्तिन से निचलू तक लगभग ५५ राजा हुए थे । यदि २५ से १८ का गुणा करें तो लगभग ९९० बर्ष होने हैं । इस बस्ती का समय इस प्रकार १०० न होकर हजार बर्ष होना चाहिये । सबसे विशेष बात तो यह है कि दूसरी तीसरी और चौथी बस्ती के धावाओं की माटी की पत्तों की मोटाई लगभग साठ-साठ फुट की है, और इन प्रकार हर एक की हजार हजार साल होना चाहिये । इस सबसे भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह जयह हस्तिन का हस्तिनापुर हो है इसका भी कोई प्रमाण नहीं है । हम दूसरी बस्ती की खुदाई में बहुत ही साधारण क्रिम की चीजें मिली हैं । मगवा है कि यहाँ सम्मता का कोई विशेष स्तर भी नहीं था । महाभारत काल में लोहितामय (लोहा) और कृष्णामय (लोहा) था । परन्तु हम हस्तिनापुर में सोहा नहीं मिला है । चारुमी ने स्पष्ट किया है कि चित्रित प पात्रों का धाव्यों से सम्बन्ध जोड़ने का कोई प्रमाण नहीं है ।

बन्धुता सब इस विचार-मूल की धड़ की ऐसगी आवश्यक है। स्टुमर्ट पिपट ने अपनी प्रिहिस्टोरिक इंडिया^१ में वैदिक ऋषों और पुरातत्त्वान्वेषकों का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

पश्चिमी एशिया में कास्पिय की बस्तियों ने कई संस्कृतियों से हमारा परिचय कराया है—नबेटापात्र ज़हीर संस्कृति घामरी संस्कृति कुस्मी संस्कृति मास मुबारक संस्कृति शाही तुम्ब संस्कृति। इन संस्कृतियों के निवासियों को अभी तक पहचाना नहीं जा सका है। मंगर और मुकर में प्राप्त संस्कृतियों के बारे में भी कुछ स्पष्ट नहीं है। वहाँ के काने सूरे प्रसंग पात्र भी ईसा से कुछ पहले की उतावियों में ही रक्त जा सकते हैं। पिपट ने मतानुसार IIR एरिया के एक वर के नूने घासन के खंडहर में बने मोघन जो-इको के कब्रिस्तान में (जो कि मूल निवासियों की अपेक्षा आक्रमणकारियों का ही सगता है) एक मनुष्य की खोपड़ी मिली है। यह खोपड़ी मंत्रोमियन युग में रखी जा सकती है और आधुनिक नागा टाइप से तुलनीय है (पृ. २२६) पिपट को आक्रमणकारी के बारे में तो निश्चय नहीं है, पर वे कहते हैं—उससे ऐसा लगता है कि आक्रमण करने वाले लोग में बड़ा जातीय मिश्रण था हो सकता है कि वैदिक लोग भर्ती कर लिये गये हों? क्या ऐसा हो सकता है कि उस खोपड़ी वाला व्यक्ति कोई पुरखा था? पिपट का मत वास्तव में बड़ा विचलित है 'पश्चिम से आता आर्य इस पहले नेपास बना होया वहाँ से हूरपावासियों पर हमला करने की पंजाब की ओर फिर एक पुरखा लाया होया'।

पृ. २३२ पर II कब्रिस्तान के दो स्तरों की हूरपा में तुलना करते हुए पिपट ने कहा है—'बधापि ऊपरी और नीचे के स्तर में बमसा बिनाप आकृतियों पर भिन्न अवयवी लगता है, सांस्कृतिक नहीं और पात्र निर्माण और रंगने के टैक्नीक में दोनों में समानता मिलती है। इस प्रकार स्वयं ही पिपट ने अपनी बात को काट दिया है। साथ पिपट ने कहा है—'ऐसा संकेत करने को कुछ नहीं मिलता कि किसी अन्य जाति ने आक्रमण किया हो ताकि हम यह सकें कि कोई पश्चिम से आया था। (पृ. २२३) क्या पिपट का तात्पर्य यही यह कहने का है कि हूरपा संस्कृति वहाँ यही रहने वाली जाति ने गूँट दिया था?

पृ. २२६ पर पिपट कहते हैं—यह आर्य आक्रमण, यह जातियों का

यदिमान होना यह प्राचीन नगरों का बर्बरों द्वारा विध्वस्त होना २ • ई० पू० के तुरन्त बाद ही ... इस बात से निकासे गये निष्कर्ष हैं कि ध्वकाय के धरुन का मैसेपोटामिया का साम्राज्य सीमा निर्धारित और निश्चित हो गया जब कि सुदी तथा अन्य जातियाँ इस भूमि पर टूट पड़ीं। कुछ शास्त्रियों बाद बर्बरों के आक्रमण बड़ पड़े। हिताय साम्राज्य के एशिया मानर में तबय के साथ ही हमें सीरिया और उत्तरी फारस में अन्य पुरातत्व मन्त्री प्रमाणा द्वारा जातियों का यदिमान होना बोल पड़ता है। और 'बैलियन मे यह मोटाघों और स्थानान्तरकारी लोगों का आन्दोलन अभी तुर्किस्तान के अनाड नामक स्थान तक पूर्व में देखा जा सकता है जहाँ आशान के तौमरे स्तर में हिंसार III और कुछ-कुछ हरणा से भी संपर्क क बिह्न दिखाई देने हैं। २० • ई पू तथा अगली कुछ शास्त्रियों में आतीय स्थानान्तरण के संदर्भ में (पृ० २४०) उन्होंने बभुचोघामों और हरणा के नगरों को रक्त किया है और वे स्वीकार करते हैं कि 'इसके प्रमाण मिलते हैं कि बिनेताघों की दूसरी बार या उपनिवेश निर्माण लगभग १००० वर्ष बाद पश्चिम से आये और उन्होंने बभुचिस्तान में अपने निधान छोड़ है (पृ २४०) जिसे यह स्पष्ट होता है आर्य बार-बार इस बनाकर आये थे। इस हिसाब से आर्य २०० ई० पू० ॥ १००० ई पू० तक बभुचिस्तान में ही पहुँच सके थे।

पिपट के पुरातत्व के प्रमाण इतने ही हैं और फिर वे माया विज्ञान और साहित्य का आभाव लेकर चलते हैं। (पृ० २४१)

कहते हैं—'ऐसा सगता है कि लगभग २००० ई० पू में अनेक जातियों का एक पिपित सा एक सभ्य या ओ बलियन इस से तुर्किस्तान तक फैला हुआ था जिसमें सांस्कृतिक तत्व मिश्रित-जुगत थे और अपनी धातु-बस्तुओं के निर्माण तकनीक के लिए सम्मता के विरोध केन्द्रों पर निर्भर थे। वे 'ओ-यूरोपियन बोलियाँ बोलते थे। (पृ० २४१) हिताय साम्राज्य के लेखों और हस्तावेजों में जो कि २०० ई० पू के हैं, नसीसी बोलो इडापियन परिवार की मिलती है' (पृ २४१)। दूसरा आक्रमण १६०० ई पू० में हुआ और 'आक्रमणकारी उत्तर या उत्तर पूर्व में आये हान और ओयूरोपियन भाषा मापियों के पूर्व की ओर संचित करते हैं। पाँच सौ वर्षों से अविन वन रहने वाले राइबेय के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता पर हम समय हमें एक और इओयूरोपियन धुप का बैसाइट (कस्ती) साम्राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा

प्रस्तुत सब इस निबन्ध-ग्रन्थ की ओर की देखना आवश्यक है। स्टुअर्ट पिगट ने अपनी 'प्रीहिस्टोरिक इंडिया' में वैदिक संघों और पुरातत्वात्मेयता का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

पश्चिमी एशिया में कांस्ययुग की वस्तुओं ने कई संस्कृतियों से हमारा परिचय कराया है—मेटापात्र, बर्तन, संस्कृति, घाटी, संस्कृति, कुम्भी संस्कृति नाम मुख्य संस्कृति, चाही, तुम्ब, संस्कृति। इन संस्कृतियों ने निवासियों को अभी तक पहचाना नहीं जा सका है। मरु और भुनर भ प्राप्त संस्कृतियों के बारे में तो कुछ स्पष्ट नहीं है। वहाँ के बाले, घरे, घरे, घरे भी ईसा से कुछ पहले की उठावियों में ही रहे जा सकते हैं। पिगट के मतानुसार H.R. एरिया के एक घर के सुने, बागन के बाहर में बने मोहन जो-बड़ों के कब्रिस्तान में (जो कि मुस निवासियों की अपेक्षा आक्रमणकारियों का ही समता है) एक भव्य की खोपड़ी मिली है। वह खोपड़ी मर्बोसियन युग में रखी जा सकती है और आधुनिक भाषा टाइप से तुलनीय है (पृ. २२६) पिगट की आक्रमणकारी के बारे में तो निश्चय नहीं है, पर वे कहते हैं—उससे ऐसा समता है कि आक्रमण करने वाले लोगों में बड़ा भारतीय मिश्रण हो सकता है कि वैदिक योद्धा नहीं कर लिये गये हों? क्या ऐसा हो सकता है कि उस खोपड़ी वाला व्यक्ति कोई पुरखा था? पिगट का मत वास्तव में बड़ा विचलित है। 'पश्चिम से आया आर्य इस पहले नेपाल गया होना वहाँ से हुरप्पावासियों पर हमला करने की संभावना की ओर फिर एक सुरक्षा लाया होना !!'

पृ. २१२ पर H. कब्रिस्तान के दो स्तरों की हुरप्पा में तुलना करते हुए पिगट ने कहा है—यद्यपि ऊपरी और नीचे के स्तर में क्रमशः विषय आकृतियों पर भेद अवश्यी समता है, सांस्कृतिक नहीं और पात्र निर्माता और रंगों के टैक्नीक में दोनों में समानता मिलती है। इस प्रकार स्वयं पिगट ने अपनी बात को काट दिया है। भाव पिगट ने कहा है—'ऐसा संकेत करने की कुछ नहीं मिलता कि किसी अन्य जाति ने आक्रमण किया हो ताकि हम कह सकें कि कोई पश्चिम से आया था। (पृ. २२१) क्या पिगट का तात्पर्य यहाँ यह कहने का है कि हुरप्पा संस्कृति को वहीं रहने वाली जाति ने नष्ट किया था?

पृ. २२६ पर पिगट कहते हैं—'यह आर्य आक्रमण, यह जातियों का

गठितमान होना यह प्राचीन नगरों का बर्बरों द्वारा विध्वस्त होना २००० ई. पू० के पुरातन बाव ही इस बात से निश्चित हो गये निष्कर्ष है कि मरुकाव के सरजन का मीसोपोटामिया का साम्राज्य भीषण विघटित और विच्छिन्न हो गया जब कि कुटी तथा अन्य जातियाँ इस भूमि पर दृष्ट पड़ीं। कुछ सभ्यताओं बाव बर्बरों के आक्रमण बड़ गये। हिताइत साम्राज्य के पश्चिमा माइनर में उदय के साथ ही हमें सीरिया और उत्तरी फारस में अन्य पुरातनत्व संबंधी प्रमाणों द्वारा जातियों का गठितमान होना बोध पड़ता है। और कैसियन में यह मोटाओं और स्वामान्तरकारी लोगो का आन्दोलन कनी तुकिस्तान के अनाऊ नामक स्थान तक पूर्व में बढ़ा जा सकता है जहाँ प्राचिन के सोधरे स्तर में हिंसा III और कुछ-कुछ हरप्पा से भी संबंध के चिह्न दिखाई देने हैं। २००० ई० पू० तथा अथवा कुछ सभ्यताओं में जातीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में (पृ २४०) उन्होंने बभ्रुचोषामों और हरप्पा के नगरों को रक्त लिया है और वे स्वीकार करते हैं कि 'इसके प्रमाण मिलते हैं कि विजेताओं की कुलटी धार या उपनिवेश निर्माण लगभग १००० वर्ष (पृ० २४) जिससे यह स्पष्ट होता है धार्य बार-बार रक्त बनाकर भाग थे। इस हिंसा से धार्य २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक बभ्रुचिस्तान में ही पहुँच सके थे।

पिपट के पुरातन के प्रमाण इतने ही हैं और फिर वे माया विज्ञान और साहित्य का आचार लेकर चलते हैं। (पृ० २४१)

कहते हैं— ऐसा समझा है कि लगभग २००० ई. पू० में अनेक जातियाँ का एक विपिन सा संघ संभव था जो बहिन कुछ से तुकिस्तान तक फैला हुआ था जिसमें सांस्कृतिक तत्त्व मिलने-जुलने थे और अपनी भाषा बस्तुओं के निर्माण तकनीक के लिए सभ्यता के विषय क्षेत्रों पर निर्भर थे। वे इंडो युरोपियन बोसिया बोसते थे। (पृ० २४६) हिताइत साम्राज्य के सेवों और दस्तावेजों में जो कि २००० ई. पू० क हैं मसीली बोली इंडोपियन परिवार की मितवी है (पृ० २४)। दूसरा आक्रमण १९०० ई. पू० में हुआ और 'आक्रमणकारी उत्तर या उत्तर पूर्व में घाये हाये और इंडोयुरोपियन भाषा भाषियों के पूर्व को और संबंध करते हैं। पाँच सौ वर्षों से अधिक वर्ष रहने वाले राजवंश के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता पर इस समय हमें एक और इंडोयुरोपियन युग का कैसाइट (कस्मो) साम्राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा

पर परिचय मिलता है जो गितानी या जिसने खजूर नदी के मुख्य प्रवाह के समीप की भूमि बेर रबी की और उनका उत्तर सीरिया के दक्षिण-पूर-भाग पर साधन था। (पृ० २३०) १३८० ई० पू० के लगभग 'हमें वह महत्त्वपूर्ण मध्य मिलता है... सुबीनुभीज्या हिताइत राजा और गति सम्राट मिलनी राजा कुसरत के पुत्र के बीच हुई संधि का वर्णन ... (पृ० २३) जिसमें श्रुतवेद में उल्लिखित मित्र वरुण और इन्द्र का नाम आया है, पिण्ड कहते हैं— इस हिताइत संधि का यह अर्थ नहीं कि उस समय मितमी साम्राज्य में भारतीय के पर इससे हम उस मितमी-शुसती पुत्रण कबा की भूमि तक पहुँचते हैं वहाँ इंडोयूरोपियन जातियों का एक सङ्घम था और भाषा से लगता है कि महान इंडोयूरोपियन परिवार की पूर्वी शाखा के भी वही देखा जाये जो कि मितमियों के थे। लगता है १४वीं सदी ई० पू० तक संस्कृत और मितमियन भाषाएँ बहुत दूर नहीं हुई थीं। (पृ० २३ २१) क्योंकि ऐकवर्तन तेरवर्तन पञ्चवर्तन इत्यादि संस्कृत के वर्तनम् की भाँति हैं। वे कहते हैं— पुरातत्त्व और भाषाशास्त्र के आधार पर ९००० ई० पू० के समयम इंडोयूरोपियन भाषा भाषियों को हम भारत के सबसे अधिक निकट से पाते हैं। जब हम मितमी साम्राज्य से फारस और आगे बढ़ते हैं तब शिक्षित समाज छूट जाते हैं और ऐसे संसार में कुसते हैं, वहाँ मैसन या बिच सिपि या पापाणादि साधन नहीं मिलते। फारस में अवेस्ता और भारत में श्रुतवेद जो इंडोयूरोपियन धर्म ग्रंथ हैं जो भाषा शास्त्र के दृष्टिकोण से इसी रूप के अंतर्गत आ सकते हैं पर इसके सिने हमें अंतरसाधन की ओर जाना आवश्यक है। (पृ० २३१)

अब हम इस सचते हैं कि—

(१) यद्यपि पिण्ड न तो विभिन्न प्राप्त संस्कृतियों को पहचान ही सके हैं—

(२) यद्यपि ये पात्र और नाम पात्र बहुत पुराने नहीं माने जा सकते—

(३) यद्यपि भंगर और भुंगर संस्कृतियों की समरथा भी नहीं सुमझी है—

(४) यद्यपि विदेशियों ने भाषा टाइप की गोपङ्गी छोड़ी है जिनमें यह प्रमा

गित होता है कि धर्म ने सुरक्षा कुसा लिया था—

(५) यद्यपि स्तर भेद है परन्तु विवेक अवश्यही है, मार्कनिक नहीं—

(६) यद्यपि साहचर्य जाति समन की यह भी परिचय से घाटी किसी जाति से नहीं ओढ़ा जा सकता—

(७) यद्यपि केवल मैसेडोपोटामिया साम्राज्य के विच्छिन्न होने से ही प्राकृतिक सिद्धांत को निष्कर्ष रूप में निकाला गया है—

(८) यद्यपि प्राकृतिकों की एक और सहर भी स्वीकार कर ली गई है—

(९) यद्यपि यह केवल एक अनुमान है कि वे उत्तर या उत्तर पूर्व से आये होंगे—

(१०) यद्यपि कोई राजपूत ऐसा नहीं मिला है जिसने १०० वर्ष राज्य किया हो—

फिर भी एक बुरी 'घोरी' बना ली गई है, जब कि प्रमाण यही बताते हैं कि संवेत्तायक प्रयोग के कारण यति की पूर्व से पश्चिम की ओर रचना प्राकृतिक उचित है।

हितास्य और पितृस्य धर्म थे। जिससे कुलते देवता और सब एक स्रोत हैं। प्राग् थे। यहाँ मैं कहूँ कि भारत की सीमाओं के ऐसे संबंध के विषय में परिचित या पालिनि भी जानता था। पिछले को कोई भारतीय प्रमाण नहीं मिला है। अग्नेय के आचार पर सपता है कि धर्मों ने प्राकृतिक किया था। परन्तु जब ? जब हीकों ने भारत पर हमला किया था तब उन्हें पकड़ कहा गया था। क्यों ? भारत के उत्तर में सिकन्दर से पहले ही 'बेल' नामक जाति विद्यमान थी। संभवतः योन का बहन सम लोगों के सिद्धे प्रचलित होने वाला पद था जो कि यज्ञादि नहीं करते थे परन्तु फिर भी जिसमें परम्पराओं की समानता थी। अनुस्मृति में उल्लेख है कि—इसी देश से घनेरु देशों में लोग बने और उन्होंने शिक्षा दी—

एतद्वागप्रमुखात् सवासाद्यधाम्भनः ।

स्वस्वं करिषं पिधेरन् पुत्रिकां सर्वमानवाः ॥

इन वरंपर से स्पष्ट होता है कि कई कबीले या जातिमाँ ऐसी थीं जो भारत के पश्चिम की ओर भारत से गई थीं। भारत से जातिमाँ बहुत बाद तक जाया गुमिना इत्यादि गई, इसके प्रमाण हमें काफी मिलने हैं।

इसके प्रतिष्ठित साक्ष्य ने स्पष्ट बताया है, मित्तरी 'एतम पुत्र आया-बापी' के और ईजिप्टियन की पूर्वी भाषा (किन्तुम पुत्र आयाभापी) की। इनमें बोयजकोई सचि के साथक लोग ईजिप्टियनों की पूर्वी साया के उत्तरी ईरान से पश्चिम गमन को प्रमाणित करते हैं। या पाकिस्तान के मतानुसार १६०० ई० पू० के लगभग भारत के दूतों बाहर गये थे जिन्होंने पश्चिम में भारतीय संस्कृति पहचानि और बोयजकोई साथ लई के हैं।

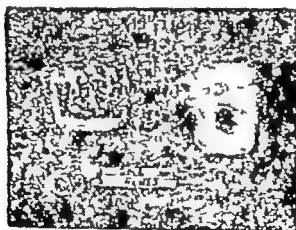
इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वास्तव्य विद्वानों द्वारा जो तथ्य—बोगज कोई मन्त्राधार का निष्कर्ष और इतिहासपुर कुर्बाई का निष्कर्ष जिनको तमाम तुल्य बेकर एक सिखात बना लिया गया है, निमू स है। अब हम पिण्ड के प्राये के तर्क का अध्ययन करते हैं।

पिण्ड के अनुसार भारत में प्राचीन संस्कृतियों का ज्वंस इन्द्र ने किया था। यह हो ही नहीं सकता। यदि उन्ही के तर्क को लिया जाय कि मित्राणी घाणा से इंडोयूरोपियनों में जो भेद हो गये जिनमें एक संस्कृत भाषा दल भारत घाणा और ब्रुसरा फारसी भाषा ईरान में रहा तो भी मित्राणी हिताइत संधि में इन्द्र का उल्लेख है। और इस प्रकार इन्द्र को भारत में धनेक पहले ही धार्य भाग देवता मानते थे। इन्द्र को धमुर भी कहा गया है। धार म धमुर पुत्रा (धमुरमन्त्रा) धमग हुई है। इसका धर्म हुआ कि वृष का वध करने वाला इन्द्र जो कि धमुर-नासक या मित्राणी-हिताइत संधि के पहले ही वृष को मार चुका था। इस हिसाब से १४०० ई० पू० के बोधकोई संधि काल में पहले इन्द्र हो चुका था। उसका भारत में धाने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे ऋग्वेद में इन्द्र देवता है मनु धादि प्राचीन काल के मनुष्य हैं और ऋग्वेद के रचना-काल में मनु धादि भी काफी पुराने हो चुके थे। ऋग्वेद के रचना-काल में ऋषि और धार्य भारतीय धनार्योसि सङ्ग रहे थे। मनु उनके लिये प्राचीन थे और इन्द्र और भी प्राचीन। धार्यों के पुराने देवता थे वरुण धरिति धर्ममा भय धावा पृथिवी धानि मम मरुदगल इत्यादि। वरुण को धमुर भी कहा गया है। इन्द्र का उत्थान वरुण के बाध धमुर विरोध में हुआ है, यही धुन-रोप कहा है भी स्पष्ट होता है कि इन्द्र ने वरुण के विरुद्ध मर-भानि प्रथा रोक कर स्वर उठाया था। फिर इन्द्र की धर्माति चौस और विवस्मिनर (वय्यवर) की कथा इतनी पुरानी थी कि वह सीकों में प्रियस और रोमनों में कूपीटर के रूप में विद्यमान थी। ये लोग पूर्व से ही पश्चिम की गये होये क्योंकि यदि वे पूर्व में नहीं गये थे तो इन्द्र को और भी प्राचीन मानना होगा।

पिण्ड को बाह्यणी लिपि सिमान् लिपि से निजसी हुई मान्य देती है। उन का विचार है कि वैदिक लोगों के पास लिपि नहीं थी। वे यह तो मानते हैं कि हरप्पा संस्कृति से धार्यों में सीखा था पर हरप्पा माधम जो-बड़ों में लिपि थी। फिर भी पिण्ड यह नहीं मानते कि वैदिक धार्यों में लिपि सीनी हुकी। विद्वानों में स्वीकार किया है बाह्यी लिपि का जो रपीतर है दक्षिण भारत की सिपियों

में। वहन या यह समझा है कि मोघन-जो-दको की सिपि का ही भारत की सब सिपियों के रूप में विकास हुआ होगा। लेकिन पिछट कैसे मानें कि भारत में भी सिपि हो सकती है? शोम्स ने प्रमाणित किया है धनबन्ध में रूप के हिसाब सिपि होते हैं। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि हिन्द से ही एक बार में हिबसे बनकर पहुँचे थे जिनसे यूरोप ने सील। हिन्द ने ही पहल पहल * (बीरो) का प्रयोग प्रारंभ किया। अभी तक कोई छिनामल नहीं मिला है। पर पिछट कह क्यों नहीं देखते की मोघन-जो-दको में सिपि मौजूद है। भारत में वास्तव में अभी खुदाई हुई ही जितनी है? हरप्पा की खुदाई ने पहले भारत का इतिहास प्रीको से शुरू होता था। भारत पर निरंतर विदेशी आक्रमण होते रहे हैं इसलिए यहाँ बोर बिनाप हुआ है। दूसरे बात यह भी है कि यहाँ का इतिहास इतना प्राचीन है कि लोपो व वसि की बक (Clock) को सही मान लिया जा। भारत में सिपि का विकास हुआ है। बेट (मरतपुर जिल) में एक टैपकोटा सील मिली है जिस पर सिपि है। कम्प्रीन पुरातत्त्वविद बिजयज उस पर मनन कर रहे हैं। यह सिपि बाह्यी का कोई पुराना रूप है।

(२५०० वर्ष पुरानी बर की सील)



चित्र ३३— (मायरा पुरातत्त्व विभाग के सौजन्य से)

इस सिपि को सील उस टीले में मिली है जहाँ कुछ वर्ष पानी के अवशेष भी मिले हैं। यदि ये पानी के व्यापार पर इसकी सिपि का अनुमान किया जाये तो यह कुछ से प्राचीन होनी चाहिये। इसके समीप ही कुछ अन्धकृत-कम्प्रीन उत्तरी बमरदार नामे पान का अवशेष (N. B. Puzos) भी मिला है। यह हिसाब से

भी यह कुछ-कामीन होनी चाहिये। और की छील प्रमाणित करती है कि कुछ से पूर्व भारत में लिपि थी।

वेद का मौखिक रूप से याद किया जाना भारतीय और बर्गीय युग पर आधारित था। जब कुछ वर्षों में व्यास ने वेद का संपादन किया था तब उस विद्यालय साहित्य का सम्पादन क्या बिना किसी लिखावट के हो सका होगा? पिण्ड ने बिन दृष्टि की मौखिक गीतस्मरण परंपरा का उल्लेख किया है, उनके पास थोड़ा-बोझ के धर्मों की भाँति उनके पास इतना गणना नहीं था। बार-बार विवेची प्राक्रमणों के भय के कारण उच्चारण की पवित्रता बनाये रखने की माससा के कारण ही वेद रटे जाते थे। जब तक हम इस ऐतिहासिक परिपार्श्व को याद नहीं रखेंगे तब तक इस समस्या को नहीं सुसम्भल सकेंगे। वैदिक ब्राह्मण को वेद का गर्भ था। (वेदों की स्तुति उसके पीरोहित्य का युग था) वह अपनी सम्पत्ति दूसरे को नहीं देना चाहता था। बर्ण विभाग के लिए यह आवश्यक भी था। वह एक-एक स्वर को ठीक बोलता था। पाश्चात्य विद्वान् त्वष्टा की कथा बार-बार उद्धृत कर दिया करते हैं। पिण्ड ने उसे डैमन (Demon) लिखा है। वह डैमन नहीं था असुर था। और असुर विद्वान् होते थे। त्वष्टा की मसली का उल्लेख इसीलिए मिलता है। उच्चारण की शुद्धता रखना यज्ञ का प्रतीक था न कि जानू का। वेद नहीं लिखे गए तो इस के दो ही कारण थे—अपनी बिना धूर्तों को न देन के लिए तथा विदेशियों के प्राक्रमण में सग्न बचाने के लिए। लिपि का अभाव हम का कारण नहीं माना जा सकता। कब तो स्वयं पिण्ड ने माना है १८ की छरी में लिख गए। तो क्या हम यह मानें कि भारत में ईस्वी १८ की छरी तक लिपि नहीं थी? लिपि के रहत हुए भी यज्ञ का न लिखा जाना हमारी बात को प्रमाणित करता है।

पिण्ड कहते हैं—अब यह वेद की रचना का समय लगभग १४ १५०० ई० पू० माना जाता है, पर इसके कोई पक्के प्रमाण नहीं हैं। (२२२ पृ०) पता नहीं बिना पक्के प्रमाण के पुरो ध्योरी' कहे बना सी जाती हैं। और हम उन की पुरातत्व-महत्वा भी प्रस्तुत कर चुके हैं। फिर कैसे कोई बात मानी जा सकती है?

हम निश्चय से नहीं कह सकते कि इन्द्र और वृष का कुछ पञ्चाव में हुआ था और कि पिण्ड की कल्पना है। अन्वेष में कीत का वर्णन नहीं है, पर सर्ववैदिक म

है और हरप्पा की सील बताती है कि तत्कालीन पंजाब के लोग चीतों को जानते थे। प्रायों ने उनसे क्यों नहीं सीखा? या प्रायों के जाने एक चीतों का ज्ञान कुप्त हो चुका था?

ऋग्वेद में पहले बेबी, ऋग्वेदों और मानवों का उल्लेख हुआ है। बाद में ही बर्णों का नाम आता है। यजुर्वेद में बृह को भी एक बर्ण के रूप में स्वीकार किया गया है। निपाका को भी पश्चिम बर्ण के रूप में माना गया है। जाति का उल्लेख परबर्णों बाह्य साहित्य में हुआ है। पितृ के मतानुसार (पृ० २६) ऋचाओं के प्रणेता ऋषि ज्ञानियों के आधीन थे। यह गम्य है। अग्नि तो बाह्यलों में से ही निकल वे। बाह्यलों का सर्वाधिकार महाभाऊ बुद्ध के बाद हो टूटा था। अग्नि ने बाह्यलों से कई बार अधिकार छीनने की कोशिश की थी।

पितृ के मतानुसार इन्द्र ने हरप्पा के जिन निवासियों को जीता था व प्रा-नेय (Proto Aharoloid) थे। उनका कहना है कि ऋग्वेदिक धर्म नगर नामक चीज को नहीं जानता था। पर ऋग्वेद में नगर का उल्लेख है (१०६४१)। इन्द्र धसुरों से लड़ा था और वह स्वयं भी धसुर कहा गया है। क्या इन्द्र प्रोटो प्रोटोसोसोस था? वृष को सर्वत्र कुप्य से संबंधित बताया गया है किता से नहीं। वरुण भी धनु-धुनों को मष्ट करता था (ऋ वे ११३०३)। इन्द्र ने निपाकर धसुरों से युद्ध किया है—धुप्य वृष वरुण धसुरि वासिष्ठ करव्य पर्यय इत्यादि और यह लोग प्रमास नहीं कहे गये हैं। वास्तव में इन्द्र ने प्रवेस्ता के धसुर से युद्ध किया था।

ऋग्वेदिक धर्म ने इन्द्र का देवता के रूप में गढ़ किया है। उनके अनुसार वह बहुत प्राचीन काम में था मनु इत्यादि भी तब नहीं थे। वरुण (२४१४) सूर्यरश्मि (३२७) अग्नि (३२१०) इन्द्र (२४३) मरुत (६४२) अश्विन (१०६) और त्वष्टा (११०३) इत्यादि को ऋग्वेद (म० १) में धसुर कहा गया है। धसुरों के पास बुद्ध भी थे और इन्द्र ने उन्हें मष्ट किया था पर हृदय पञ्चांग का ही है यह तो प्रमाणित नहीं होता। प्रवेस्ता की सारी इन्द्र के विरुद्ध है और यह इन्द्रोपनिषद् जातियों की ही सामी है।

ऋग्वेदिक धर्म को कि इन्द्र का बहुत गढ़ आता है, वह पंजाब में प्रमास और राखर्षा से लड़ता मिलता है। यह ऋग्वेदिक धर्म धर्म सुबंभु और धनु का समझाती था। इसके लिये इन्द्र धसुर का व्यक्ति था। इस प्रवेस्ता धसुर को अपनी लक्ष्मण के लिये उपेक्षा नहीं कर सकते। पितर पूजा (ancestor worship) में समय की कुरी ने ही इन्द्र को देवता का पद दिला दिया था।

क्या हम यह मान सकते हैं कि हरप्पा में घसुर रहते थे ? तब हम अवेस्ता की भाषा की समस्या कैसे सुलझा सकते हैं ? हम जाति प्रवसुक्ति (racial assimilation) की बात महाकाव्यों और पुराणों में तो मान सकते हैं परन्तु ऋग्वेद में इस रूप में नहीं मान सकते कि इन्द्र की ही घसुर कहा जाये जो कि इस प्रकार घनास घबू बन जायेगा ।

पिगट ने धार्यों को अस्त्र से तो परिचित माना है पर उनके मतानुसार वे चाके (चपूण्ड) को नहीं जानते थे । पर वैदिक इन्डस (I पृ १४) में कीक और मैकडोगन ने चाके का उल्लेख भी दिया है ।

अन्त में पिगट कहते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य बिदेसी नहीं था वह भारतीय जनता पर अपनी इच्छा साधने वाल उत्तर-पश्चिम से आने वाले हर्ष और बाबर जैसा कोई आक्रमणकारी नहीं था । (पृ० २२८)¹ में समझता है यह बहुत काफ़ी है । भारतीय इतिहास को अभी तक तो पता नहीं है कि किसी हर्ष बिदेसी ने उत्तर पश्चिम से भारत पर आक्रमण किया था ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हितावृत्त मिलिन्नी कैसाइट, मीडोव (मद) और बोपबकोर्ड मेक—कोई भी समस्या का अन्ध हम नहीं करते । न हस्तिनापुर की कुर्बाई को ही प्रामाणिक माना जा सकता है । जिस प्रकार मूल बटनार्यों के बीच आने के बहुत दिन बाद ऋग्वेद की रचना हुई थी उसी प्रकार जैबावस्ता की भी हुई थी । यह कोसिस क्यों की जाने कि उसकी तारीख बाद में आने के लिये हम यह सोचें कि जब ईरान की भाषा ब्रह्म मई की तक जानबूझ कर जैबावस्ता प्राचीनकाल की भाषा में लिखा गया था । पैगम्बर सबैब वक्त मान भाषा में रचा करते हैं । प्रतीत की भाषा में जोरोस्टर ने ही क्यों कर ऐसा प्रयत्न रचा होगा ? मीडोव की तारीख भी कोई बटनारक्रम ध्यान वाली तारीख नहीं है । पीले पात्र (ochre coloured pottery) भी परम्परा की व्याख्या नहीं करते न ग्रे पात्र (grey ware) ही मरह करती हैं । हमें फिर से सारे तथ्यों को लेकर, पूर्वाग्रह छोड़कर जाँच करनी होगी । हम यह पहले से क्यों तय कर सके हैं

1 'Chandragupta Maurya was not a foreigner no invader such as Hara or Babur coming in from the North-West to impose his will on the Indian people. p. 200 Prehistoric India.

कि धार्यों ने रास्ते के हर सघट्ट धनु को पराजित ही किया। यह भी तो हो सकता है कि धार्यों में बुद्धि भी थी और वह यीका देकर सघट्ट सोंपों को दाल कर कमजोरों को बचाता बढ़ता था जैसे महमूद गजनवी ने मालवा के मोर को सघट्ट देकर उस रास्ते को छाड़कर रेमिस्तान से होकर सोमनाथ पर हमला किया था। उन बिना भारत की छात्र की सी सीमा तो भी नहीं।

वास्तवीक समायण (उ का १०० घ) में स्पष्ट है कि रोम के मार्स भारत के पुर्नों में सिंधु प्रदेश में गर्भव बेर पर शाक्रमण किया था। राजस धार्यों के रसक मरुभवार के लषी उनका नाम राशस पड़ा था। हम बता चुके हैं कि नाथ और गर्भव पंजाब में सरस्वती तीर पर रहते थे जिन्हें धार्यों ने नष्ट किया था। यह गर्भव बड़े सम्म लोग थे। परम्परा उनका मूलस्थान हियालय में बताती है। गया के संयोलॉमिज के जो पश्चिम माछ में था गये के ?

प्रसन्न धनेक है।

हरप्पा संस्कृति के के कौन लोग थे जो सिंधु घाटी से दक्षिण पश्चिम की ओर राजस्थान सीराप्ट और गुजरात होने हुए पोहाचरी घाटी की ओर बढ़ रहे थे ?

के कौन थे जो कमजदार परवर के कुहवाड़ो का प्रयोग करते थे और तब उत्तर भारत से सम्राज पोहाचरी के दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे।

के कौन थे जो पीले पारों का प्रयोग करत थे और गया के प्रदेश से दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर जा रहे थे ?

मूरे पात्र की बीस्ट वाले लोग कौन थे ?

हरप्पा की यदि नष्ट भी किया गया था माधन-जो-बड़ो सम्पत्ता कैसे अपने धाव नष्ट हो गई ?

सोयल में हरप्पा संस्कृति न कैसे बिकाग किया ?

कोटरोजी में प्राप्त लुवाई को बीजा में हरप्पा संस्कृति का उदय दिखाया है, हरप्पा धार्यों से पहले कौन रहते थे ?

यदि मूरे (Grey) धार्यों वाले आग्नेयिक धार्यों के और हृष्ण भी लषी के तो हृष्ण तो डारका गये के फिर आग्नेय में इसका जल्लेख क्यों नहीं है ?

इसमिसे आवश्यकता यह है कि हम फिर से अध्ययन प्रारम्भ करें।

हमें पहले अन्तराष्ट्रीय और परम्परा का अध्ययन करना होगा।

इसके बाद एक और समस्या है। १०० ई० पू० तक मागध काल में हमें चारों पंथा प्रवेश में लोभ के भीमार मिलते हैं, जबकि उत्तरी जमकदार कासे पात्र मिलते हैं। इस युग में इतिहास किसी विदेशी आक्रमण का संकेत नहीं करता। यह परिवर्तन कैसे आया? नये पात्र पुरानी संस्कृतियों के विकास में निकल या किसी नये उत्पन्न के कारण यहाँ आये? इस समय हमें परंपरा में देख राखस यक्ष नाभ, यक्षर्ष इत्यादि सब पुरानी जातियाँ बेवठा मानी गई मिलती हैं।

यद्यपि जातियों में अंतर्मुखि (assimilation) की फिर भी भारत में पुरानी जातियों के बिन्दु अवशिष्ट है। वैदिक मानव भाषा की मातृभाषाओं में मिलते हैं। वैदिक काल की अपनी जातियाँ बरबर (brutes) की। महाभारत में (सावित्र २०७४०४६) मरुवर, अंधक गुह, पुलिह चंवर, बृहद और मरुत वसिष्ठी जातियाँ हैं और योन काम्बोज, गंधार किरात और बर्बर उत्तर की हैं। इस युग के बाद राखस यक्ष गंधर्व नाय इत्यादि इत्ये से उत्पन्न हो पाते हैं। नंद से हर्ष तक दूसरी ही जातियाँ मिलती हैं और हर्ष के बाद से अन्य ही जातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

वेद महाभारत तथा पुराणों में अनेक जातियाँ मिलती हैं। काम्बोज गांधार, कुष पंचाल दूरधेन वेदि मरु मासक सास्त्र उखीनर, बाहसीक विगत योवेय केकय आभीर सिंधि इत्ये काश्यप कुसुत कुलिह बर्बर मल्ल अश्वनाभ आश्वनाभ अम्बष्ठ निपाह नियम काशी कोसल, बल्ल बटवान आनेय, भारद्वाज जम्पाक योन कलिग धात्र क्षत्रि क्षत्र कुलिह, पुलिह कुसुम राष्ट्रिक नासिक्य अस्मक मुसक बोल, पाण्डव केरस या केर, मागध बिबेह आशुक घाक मल्ल बंग यौह, मुम्ह, पुण्ड्र किरात प्राग्मोतिष कुसि कोसिय मोरिय भम्भ काशाम, लिच्छवि उत्कल उह अश्वन्ति सिंधु-सोबार गुराष्ट्र शूद्र साह्य धूर्धारक धीरुधर काक खारिक, समकामीक मल्लय रमठ पारव मोत्र मैकल बघार्ण पारियात्र पटनिक बोसांगुल धीरूप कुसुम नायनामक आधक्य बग्नक पोरिक अश्वक्य अश्वकिय मोलिक मुषिक कुलिह कंकल तागस बीरध तुष्टिदार, माहिरक कीकट प्रवरंग रोपय मानव सप्त रंगल मुबकर, अश्वर्ष बहिरिग, अश्व, कुसुर धूर्धारक, शूद्र हारमूकिक माठर जापुर, बहोवर

भूगोल, मातृय भोज अपरान्त है। भोज भोजन सरस औरहीन विषय
मीसेय बाजस भ्रष्टकर कुरुक, पुस्तक कीन तुयार सारस्वत प्रसक्त
कुस्य मलक भोज दधमातिक हर्षवर्धन कुमोस्क इसमार्ग कुहक सतपथ
कर्मकाण्डिक यवन सतद्रुष ऊर्ण वरन बहुभय नपुर गमाइवय पर्यवसर,
प्रभुव सत धारदृ इत्यादि।

इसमें स कुछ वैदिक काल में भी हैं कुछ बाद तक मिलती हैं। हर्षवर्धन क
बाद पूर्वर् इत्यादि जातियाँ होती हैं। बाद इत्यादि भी तभी मिलते हैं।
पुराणा हस्य ही बदल जाता है। नाम बदलते हैं। कुछ तो भाषा के परिवर्तन
के कारण ऐसा होता है कुछ अनेक विदेशी जातियों के आकर समाज में
कुल मिल जाने से। इन जातियों के अतिरिक्त अनेक अन्तर्गत जातियाँ भी थी।
द्वितीय जातियाँ अश्विनी की जातियाँ और अन्य जातियाँ हम यहाँ पूरी नहीं
दिना सके हैं। यहाँ जाति का धर्म (Tribe) लेना उचित होगा।

परन्तु इनके अतिरिक्त भारतीय साहित्य और संस्कृति पर यही व्याप डालने
वाली कुछ और जातियों का भी उल्लेख है जिन्हें Race क अन्तर्गत लेना
ठीक दिखाई देता है। कुछ यह हैं

- (१) धनुर—धुर [आदिमाता अश्विनी]
- (२) नाव [आदिमाता कद्रू]
- (३) यक्ष
- (४) गच्छ [आदिमाता विनता]
- (५) विद्या
- (६) यक्ष राजस [आदिमाता पुनस्त्य]
- (७) हैर [आदिमाता दिशि]
- (८) दानव [आदिमाता दनु]

इन लोगों की उत्पत्ति के समय समय मान्य बताया गये हैं। इन लोगों
के रहन-सहन और बिनाह आदि क नियमों में भी भेद कह गये हैं। य लोगों
कोन से? क्या यह सब कल्पना क प्राणी य जो सामाजिक जीवन में
विभिन्न व्यवस्थाओं के रूप क गये? निश्चय ही यह प्राचीन जातियाँ थी और
भारत में संचरत थी।

हमें भारतीय साहित्य में इन लोगों के अलग अलग उल्लेख मिलते हैं
लेकिन बाद में संभवत यह जातियाँ अंतर्गुक्त (assimilate) हो गईं। तब
विचारों में पड़कर हो गईं।

जिस प्रकार यवन और म्नेष्ण राज्य पहले लोक शांति के लिये प्रयुक्त हुए पर बाद में इन्हीं राज्यों का प्रयोग तुर्क, मंगोल और यूरोपीय जातियों के लिये किया गया, उसी तरह असुर और राक्षस राज्यों के साथ भी हुआ।

कार्तिकेय की कथा (महाभारत) में स्पष्ट मिलता है कि राज्यों ने असुरों के विरुद्ध युद्ध की मदद की थी। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में ही (११२५२१-५)

ता महान्ता सवस्वती इन्द्राणी रक्ष उज्ज्वलम् ।

धर्मजा संस्वपिणः ।

अर्थात् वे महान् और सभास्वक इन्द्र और धर्मिराक्षस जाति को दुष्टता-शून्य करें। भस्मक राक्षस लोग निर्विस्तार हों।

कहा है। राज्यों की प्रचीनता स्पष्ट है।

सायण ने असुर का अर्थ 'अग्निष्ट हटाने वाला' किया है। क्षयप्रसन्न असुर प्रवेता राजमैनासि अधिपः कृतानि मे वसु के लिये प्रयुक्त है। असुर राज्य। बाद के युग में असुरों को राक्षस भी कहा गया है। वैश्य शासन असुर, राज्यों के भेद मुला से दिये गये हैं। यहाँ तक कि असासुर को तो मर्य संहिता में नाग कहा गया है। कृष्ण के समय की अनेक टटिम जातिवाँ वेनु-वृषम बक, इत्यादि को भी असुर कह दिया गया है।

इन्हीं कारणों से गड़बड़ बिछाई गयी है। वैसे इन जातियों के अंत में असम समान बताये गये हैं। एक और विशेष बात यह है कि परंपरा के अनुसार इन जातियों का संबंध वेदो (इन्द्रादि) से धार्मिक है। मनु के बाद इनकी शक्ति बढ़ती ही मजबूत होती है। राम के समय में जो राक्षस द्वीप पर रहते हैं, बड़ धनी हैं, जिनकी अपनी भक्तिपटा है, जिनके धर्म वैश्य मर्वादा रहन रहन, धान पान, नियम विशेष हैं वे महाभारत में अयसी में रहने हैं, उनकी हारसत काफी बिगड़ गई है। कुछ काल तक चले पाते इन जातियों का क्रिस नाम मिलता है। कुछ के समय में एक घातक नामक यदा राजा अस्वस्थ था परन्तु वह भी कोई बड़ा राजा नहीं था। यहुन सांख्यशास्त्र के मतानुसार कभी नाम से धनी तक शिमला के पास किन्नर जाति के बसाये हैं।

प्रत्यक्ष जब तक इस सारे विषय को फिर से नहीं देखा जाता ह्याप

सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययन अधुना ही कहा जा सकता है। जैन परंपरा ने परवर्ती काल में नाग यज्ञ यवन कश्मीर राक्षस पिशाच मानर और ऋक्ष इत्यादि को विद्याभर योनि के अन्तर्गत माना है। ब्राह्मण ने देव योनि में। बौद्धों ने भी इन्हें बेवत्ता योनि में ही स्वीकार किया है। यदि यह जातियाँ ऐतिहासिक थीं ही नहीं तो क्या कारण हो सकता है कि उनके इतने बर्णन भारतीय साहित्यों में प्राप्त होते हैं।

एक और बात विशेष है। वह यह कि भारतीय कबीला जातियाँ (Tribes) तो वैदिक से लेकर बाद के युग तक मिलती हैं, बने अंग्र साम्राज्य इत्यादि पर जातीय (Racial) भेद हमें जिस रूप में महाभारत तक मिलते हैं वे बाद में कुछ काल में नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि एक सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर्भुक्ति (assimilation) हुई थी। और हमें विशेषता यह भी है कि महाभारत के बाद हमें समुर राक्षस यज्ञ यवन आदि के देवता हिन्दू धर्म में मिलते हैं। परवर्ती हिन्दू धर्म पौराणिक है और उसमें सब प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मपुराण में निम्नलिखित टिप्पणियाँ हैं—

बेनुक घुकर, पासोटक कोकामुख मत्स्यविन कोटरक बटभुज इत्यादि।
विभिन्न जातियों के मिलन से यह तीर्थ बने हैं—

नागों का प्रयाग नागों का वर्माकर्य यक्षों का सर्वशी राक्षसों का कोटि
द्रुम नागों का पुनाप, गंधर्वों का नाचर्व, नागों का पिण्डरक, बोट्टेन का
गोबर यक्षों का मणिमान, यक्षों का यक्षिणीह्व यक्षों का यक्षराजतीर्थ, मातृ
कामों (यक्ष देवियों) का मातृतीर्थ नागों का नागतीर्थ राक्षसों का कुम्भकर्णह्व
इत्यादि हिन्दू धर्म में यह सब तीर्थ स्वीकृत हैं। हमने अंतर्भुक्ति के अतिरिक्त
और क्या प्रमाणित होता है ?

इतिहासकार और सांस्कृतिक मानवशास्त्री पश्चिम में प्रभावित होकर
सम्प्रदाया ॥ उदय का निम्नलिखित क्रम बताने हैं—

- (१) २००० ई० पू० से २१०० ई० पू० तक मिस्र सुमेर चीन।
- (२) २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक चीन, पीगोटियन यहूदी
हिताइट मित्तरी बुनागी, मय (मोडीज), पमियन छाया
(अमेरिका)
- (३) १००० ई० पू० से २०० ई० पू० तक इनका (अमेरिका)
रोमन।

(४) ६०० ई० से ७५० ई० तक टोस्टीक (अमेरिका) एण्टीक (अमेरिका),
भरत ।

(५) १००० ई० से १२०० ई० तक तुर्क मंगोल ।

(६) १६०० ई० से यूरोपीय आतिथी ।

इसी प्रक्रमित व्यापार पर भारत के प्राचीनकाल की दो भागों में बताया जाया है—

(१) सिन्धु घाटी सभ्यता ।

(२) वैदिक सभ्यता ।

सिन्धु घाटी सभ्यता—सिन्धु प्रांत के सरकाना जिले में मोघन-ओ-बड़ो पञ्जाब में मान्टुमरी जिले में हरप्पा नामक स्थान मिले हैं । अब ये दोनों पाकिस्तान में हैं । इन स्थानों पर खुदाई हुई है और अत्यंत प्राचीन सभ्यताएँ मिली हैं । इसी सभ्यता की सीढ़ी बहुत बड़ी बस्ती, अब भी ए० आर० एच० एच० से सीराप्ट में खोज निकाली है । इसका नाम मोघन है । मोघन राज्य सोम घनाई फर्मा से बनी है । मोघन-ओ-बड़ो सिन्धी राज्य है जिसका अर्थ है मुर्खों का टीला । इस सभ्यता के अंग स्वयं भी अब भारत में धीरे-धीरे मिलते जा रहे हैं । अब यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि उस अत्यंत प्राचीन काल में भी इस सभ्यता का विस्तार भारत में बहुत बड़ा था । मिस्र असीरिया और बैबिलोन की प्राचीन सभ्यताओं की भाँति यह भी अत्यंत प्राचीन थी ।

ऊपर हम सिन्धु घाटी सभ्यता की व्याख्या के बारे में कुछ विवेचन कर चुके हैं । ज़ीसर इत्यादि ने यही प्रयत्न किया है कि हमको परबर्ती ठहराया जाये । इसका कारण हम पहले देख चुके हैं कि पारश्वर्य विद्वानों को प्रायों की सिन्धु निश्चित करने के अपने पूर्वाग्रह पकड़ हुए हैं । दूरे पाषाण की खोदी प्रायों के प्रागमन की खोदी इत्यादि ने मार्ग में बाधाएँ उपस्थित की हैं । के० एन० शास्त्री ने मोघन-ओ-बड़ो हरप्पा मोघन रंगपुर, क्यङ्क बारा और एसीरा का बहुत अध्ययन करके प्रमाणित कर दिया है कि दूरे (Great) पाषाण वाले सोम कभी हरप्पा संस्कृति के साथ से मिलने ही नहीं थे क्योंकि उनकी हर बस्ती असंगत मिली है । इन्होंने यह भी प्रमाणित किया है कि मोघन-ओ-बड़ो सभ्यता मैसेपोटामिया की सभ्यता के बाद की नहीं है । उन्होंने सिन्धु, इलम और नुर्मेरियन सिन्धियों का बड़ा गहरा प्रस्तुत किया है ।

सिन्धु घाटी में कौन रहता था यह अभी तक निश्चय से जाना नहीं जा सका है, क्योंकि यहाँ की सिन्धु अभी तक पढ़ी नहीं गई है । हीनो तथा प्रनेक

भारतीयों ने भी प्रयत्न किये हैं, किन्तु यही इस धोर कुछ ऐसा नहीं हुआ जो



चित्र ३४—मोहन जो-डो का स्नानागार



चित्र ३५—मुबेर में हिज्र के महल के ऊपर सगमन ३५०० ई० पू० प्रागैतिक माना जा सके । न हम वहाँ की राजनीति और इतिहास ही जानने

है। जब तक भूमि की खुदाई के पीछे कोई ठोस परंपरा नहीं मिल जाती तब तक उसके सूत्र बिठाना बहुत कठिन होता है।

कनिष्क म इसे धार्यों से पुराना माना था। उनका मत था कि यहाँ षोड़ा नहीं है यहाँ मातृपूजा विशेष बिछाई देती है मत यह धर्म सम्पत्ता नहीं है।

बीतर का मत है कि धार्यों का भारत में आगमन-कास जब इतना परवर्ती है तो यह स्थान धार्यों का नहीं हो सकता।

शास्त्री का मत है कि मोघन-बो-बड़ो में मातृपूजा नहीं थी पुरुष-पूजा प्रधान थी।

इस अवस्था में हम इस नगर के विषय में नहीं कह सकते कि यहाँ कौन रहता था।

मोघन-बो-बड़ो की खुदाई ने एक विशाल नगर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसमें दो कमरे वाले मकान भी थे और महलों जैसे बड़े-बड़े भवन भी थे जिनका अगला हिस्सा ८५ फीट लंबा और १७ फीट चौड़ा था। बाहर वाली दीवार चार से लेकर पाँच फुट तक मोटी होती थी। सर्मा का मत है कि इन भवनों में सड़क की ओर खिड़कियाँ नहीं होती थी। मोघन-बो-बड़ो में एक भी साबुत मकान नहीं मिला है। पता नहीं सर्मा महोदय ने किस तरह यह ईजाद कर ली।

मकान पकी हुई बड़ी बड़ी ईंटों के बनते थे। हर घर में कुआँ था। इस नगर की विशेषता है इसकी भूमि के भीतर बड़ी नालियाँ। ये नालियाँ सड़क के नीचे की नालियों में मिल जाती थीं। मोघन-बो-बड़ो का स्नानागार विश्वविख्यात है।

छोड़ियों के अवशेषों से पता चलता है कि यहाँ मकान दुर्गमजि भी होने थे। सड़कों समानांतर थी और समानांतर ही उन्हें काटती थी। कुआँ डांसने के लिये स्थान बने थे और मलमूत्र के भिजे घोपक बूँ (Soak pit) बने रहते थे। एक सड़क निकनी है जो १३ फीट चौड़ी थी। वह याथा भीत की दूरी तक निवासी गई है।

इस नगर के सोप, गूहर, भिड़ मछली मुर्य कसुए साठे थे। जेहूँ प्रधान साध था। धौ सजूर, बूँ या भी प्रयोग होता था।

मूर्ती और ठनी दोनों प्रकार के कपड़े काम में लाये जाते थे। पुरुष बाड़ी

है। जब तक भूमि की खुदाई के पीछे कोई ठोस परंपरा नहीं मिल जाती तब तक उसके मूल बिठाना बहुत कठिन होता है।

कनिष्क ने इसे धार्यों से पुराना माना था। उनका मत था कि यहाँ मोड़ा नहीं है। यहाँ मातृभूजा बिसेप दिखाई देती है मत यह धार्य सम्यता नहीं है।

ब्रीहिर का मत है कि धार्यों का भारत में आयमन-कास अब इतना परवर्ती है तो यह स्थान धार्यों का नहीं हो सकता।

सास्त्री का मत है कि मोघन ओ-बड़ो में मातृभूजा नहीं की पुरुष-भूजा प्रधान थी।

इस अवस्था में हम इस नगर के विषय में नहीं कह सकते कि यहाँ कोन रहता था।

मोघन-ओ-बड़ो की खुदाई ने एक निष्ठास नगर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसमें दो कमरे वाले मकान भी थे और महलों जैसे बड़े-बड़े मकान भी थे जिनका भगला हिस्सा ८३ फीट लंबा और १७ फीट चौड़ा था। बाहर वाली दीवार चार से लेकर पाँच फुट तक मोटी होती थी। खर्चा का मत है कि इन भवनों में सड़क की ओर झिड़कियाँ नहीं होती थी। मोघन-ओ-बड़ो में एक भी समुद्र मकान नहीं मिला है। पता नहीं खर्चा महोदय ने किस तरह यह ईबार कर ली।

मकान पकी हुई बड़ी बड़ी ईंटों के बने थे। हर घर में कुआ था। इस नगर की बिसेपता है इसकी भूमि के नीचे बनी नालियाँ। ये नालियाँ सड़क के नीचे की नालियों में मिल जाती थी। मोघन ओ-बड़ो का स्नानागार निम्नविस्मात है।

सीढ़ियों के अवरोधों से पता चलता है कि यहाँ मकान इर्मात्रित भी होते थे। सड़कों समानांतर थी और समानांतर ही उन्हें चाली थी। खुदाई करने के लिये स्नान बने थे और मसमूज के सिने सोपक डूप (Soak pit) बने रहते थे। एक सड़क निकसी है जो १२ फीट चौड़ी थी। यह धाया मौस की दूरी तक निकाली गई है।

इस नगर के लोग भी, गृहर, भेड़ मछली मुर्ग फल्लुर पाते थे। गेहूँ प्रधान खाद्य था। जौ, जहूर वृष का भी प्रयोग होता था।

मूरी और ऊनी दोनों प्रकार के कपड़े काम में लाये जाते थे। पुरुष बाड़ी

रखने से धीरे-धीरे सब चीजों को मुँडवा देने से (बैने सब भी मुमकिनानों में मिलाता है) केसों को पूरा जाता था।

सभी धीरे-धीरे सभी सामग्रियों पहुँचते थे। स्वर्ण धीरे-धीरे हाथी दाँत धीरे-धीरे रत्नों के अनेक किस्मों के सुन्दरतम सामग्रियों मिले हैं। साधारण प्रमत्ता हैं हथियों बोंबों मुरियों सब धीरे-धीरे मिट्टी के गहने धामदार पर बनते थे। यहाँ बोन कंचे धीरे-धीरे पति मिले हैं। खिलौने पहिएदार छोटी-छोटी चीजें मिली हैं। इनसे मनोरंजन के साधन प्रयुक्त होते हैं। पत्थर का प्रयोग कम होता था सम्भवतः वह बाहर से लाया जाता था। लोहा मोमन जो-बड़ों में नहीं मिला है। मिट्टी के बर्तनों को कमकसर भी बनाया जाता था। चीनों से खेती होती थी। इस मगर में बीस की प्रविष्ट सादृष्टि मिली है। यहाँ पीपल वृक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। चिकनता यहाँ बिलोप रूप से विकसित थी। हुरप्पा में सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। मोमन-जो-बड़ों में नर्तकी की वातु-मूर्ति मिली है जो नृत्य है। यहाँ की चीनों से पता चलता है कि व्यापार यहाँ प्रमुख था धीरे-धीरे एशिया तथा दक्षिण भारत से आदान-प्रदान होता था। टीन तथा धीरे-धीरे रत्न बाहर से भी मँगाये जाते थे। मोमन-जो-बड़ों में चायक बाह-रिप्या से मुँह का संस्कार करते थे। हुरप्पा में कश्मिस्तान भी मिला है। मुर्तियाँ बना कर यहाँ बड़ों में उसकी प्रशंसा करने की प्रणाली थी।

धम्ये तक लोगों का वह विचार था कि सिद्ध सम्पत्ता मुमकिनानों में संस्कृति का पूर्ण स्रोत थी परन्तु लोग ने यह भ्रम छोड़ दिया है। अब यह भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि वह अनार्य सम्पत्ता थी। लोग ने तो मन्त्रकुण्ड जैसा धीरे-धीरे प्रयाग का इतिवृत्त मिला है। अब ऐसा लगता है कि सिद्ध सम्पत्ता सिद्ध में ही नहीं भारत में व्यापक पैमाने पर फैली थी। मौल्य में ही हुरप्पा वालों ने वस्तुओं के निधान मिले हैं। उत्खनन होने पर बहुत कुछ ज्ञान होने की सम्भवा है।

प्रायः मोमन-जो-बड़ों के विषय में विभिन्न मत हैं—

- (१) यह धाम्य सम्पत्ता थी। परन्तु अग्नेय के बर्तनों ने इसका कुछ कम मत बैठता है। यहाँ जरापाही जीवन का निधान नहीं है। नागरिक जीवन मिलाता है।
- (२) यह दक्षिण सम्पत्ता थी। इसमें भी दो मत हैं—

(अ) दक्षिण भारत से मुँह के आकर बसे।

प्रथम प्रश्न धाया है भारत से बाहर जाने वाली जातियों का । ईस्व क्रैमटा मुसार १२००० से १००० ईस्वी पूर्व तक होमियोमिथिक मियोलिथिक संस्कृति के साथ संसार में समुद्र पर नावों पर (Canoes) घूमा करते थे । वे भारत चीन के प्रयाण महासागरीय तट से मेक्सिको और पीक तक फैले हुए थे । उनकी यह विशेषतायें मिलती हैं —

(१) बतना प्रथा

(२) काइनेड प्रथा—(बालक के जन्म के समय पिता को बिस्तर में मुलाया)

(३) मालिश करने की प्रथा

(४) मसी बनाने की प्रथा

(५) पत्थर के स्मारक बनाने की प्रथा

(६) बुढ़कों के तिर को कुचिम उपायों से बिहृत बनाने की प्रथा

(७) छरीर पुढवाने की प्रथा

(८) धूर्ध और नाच का सम्मान जोड़ने की प्रथा

(९) कम्पाणकारी समझ कर स्वस्तिक के प्रयोग की प्रथा ।

इतिवट स्त्रिय के अनुसार तत्कालीन कथत ॥ यह एक अेठ संस्कृति थी । इसका जड़म-मूल समझसाधार या उत्तरी अफ्रीका रहा होता । इस संस्कृति का प्रभाव मॅयोली पर नहीं मिलता न नाइकों पर मिलता है । इसका विस्तार विनुवत रेखा के समीपस्थ प्रदेशों में अधिक रहा था । मैनेटेसिया और पोलीनेसिया में इसका प्रभाव था । संभवतः मिस्र तथा बज्जान-क़रात की सम्प्रदायें इसी से उठ खड़ी हुई थी । बरपाही बुज्जु सेनेटिकों में भी इस संस्कृति का प्रभाव था । अफ्रीका की पुष्पनी जातियाँ मॅयोली थी । यहाँ भी बमई की भाषों में बैठकर एशिया और अमेरिका की ओर बॉनिंग स्ट्रेट से यात्रा होती है । बाद में धायर अमेरिका की हुआ नयी जातियाँ गई थी ।

भारत में भी उपर्युक्त प्रथायें मौजूद थी । अमेरिका और मैक्सिको में भारतीय संस्कृति के अनेक उपकरण मिलते हैं । यत्र निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि भारत से कौन क्या गया । परन्तु अमेरिका में माया या मयों का उल्लेख है और भारत में भी मय प्रिन्सिपों का उल्लेख है । मयों का धातु से ताम्र का समय महाभारत कुछ से कुछ पहलू का काम है । पद्य निश्चय से नहीं कहा जा सकता पर यह सम्भव भी नहीं है । परन्तु भारत में भारत से अनेक जातियों के बाहर जाने के बारे में बहुत से लिखा ही है, और कोई कारण नहीं है कि उस

(धा) इबिड़ भारत में बाहर से आये ।

होमों मर्तों में बलूचिस्तान में मिली जाहुई बोसी का आचार बिबा जाता है । कुछ का मत है कि इबिड़ भाषाओं से मिलती जाहुई बिभी भाषाबोलन के कारण ही बलूचिस्तान में मिलती है । पर इबिड़ सभ्य संस्कृत के इबिण से बना है जिसका अर्थ है धन इच्छा इसीसे निकला है । इबिड़ कौन से ?

प्रश्न है कि वेद में इबिड़ कोई जाति नहीं है । फिर इबिड़ कौन हो सकते हैं ? स्वयं आर्य एक जाति थी या यह एक संस्कृति थी ? भारत में मुसलमान आये । पर वे एक जाति (Ethnic group) नहीं थे । मुसलमानों में अरब तुर्क मंगोल पठान आदि प्रमुख रूप से भारत में शासन कर चुके हैं । किन्तु वे अलग अलग जातियों (Races) के लोग थे । क्या आर्य भी ऐसे ही थे ?

इस स्थिति में हरप्पा मोहन-जो-दड़ो और जोखन के निवासियों के बारे में नहीं के बराबर ही ज्ञान है । हम आर्य और इबिड़ जोड़ते हैं । परन्तु हमारी परम्परा की सम्भावना दूसरे ही प्रकार की है । अतः अभी इतना ही कहा जा सकता है कि कुछ नगर निकले हैं जिन के बारे में अभी निश्चय से नहीं कहा जा सकता । एक महत्वपूर्ण बात यह है कि तीनों नगर किसी आक्रमण में लपट नहीं हुए हैं । इनका क्रमशः ह्रास हुआ है । हमारी पौराणिक परंपरा सिन्धु सम्प्रदाय और हरप्पा को बल नभनों के साथ जोड़ती है । जब तक इसके और प्रमाण नहीं मिल जाते तब तक हम इस विषय पर अन्तिम बात नहीं कह सकते । वस मुर्दा बहुत जाते न । उन के भीतर ही दूसरे निचारबाध के लोग राजस थे जिन में सती-श्रवा थी । वस कुछ की पूजा करते थे । वे वृक्ष में देवता माना करते थे । बहुत सी बातें हैं जो यहाँ हमें परंपरा का पोषण करते हुए मिलती हैं ।

आइरक का मत है कि सिन्धु सम्प्रदाय और सुमेरियन सभ्यता में काफी साम्य बिस्तार है । डा० ह्यटर का मत है कि यह साम्य सुमेर के जमदत्तमय काल (३२० ई० पू०) के समय में अधिक बिस्तार है । हमने मोहन जो-दड़ो का समय भी पीछे खिसकाया है । दारजी का मत भी यही है । मोहन-जो-दड़ो का अन्तिम समय ही मीसोपोटामिया का समय माना जा सकता है । उनके मतानुसार ईस्वी ३२०० वर्ष पूर्व में यह सम्प्रदाय और पुरानी ही हो सकती है, परबती नहीं ।

अब प्रश्न बाता है भारत से बाहर जाने वाली जातियों का । वैसे कैमरा मुहार १२००० से १००० ईस्वी पूर्व तक ह्योसियोलिथिक निओलिथिक संस्कृति के सोप सोपार में समुद्र पर नावों पर (Canoes) घूमा करते थे । वे भारत चीन के प्रभाव महासागरीय छट से मैक्सिको और पीक तक चले हुए थे । उनकी महु विमोचतायें मिलती हैं —

(१) जयन्ता प्रवा,

(२) काश्चेक प्रवा—(बालक के जन्म के समय पिता को विस्तर में बुलाना)

(३) मानसि करमे की प्रवा

(४) मयी बनाने की प्रवा

(५) पत्थर के स्मारक बनाने की प्रवा

(६) कुबकों के सिर को हथिय बपानों से विकृत बनाने की प्रवा,

(७) धरीर बुनवाने की प्रवा

(८) सूर्य और नाथ का सम्बन्ध जोड़ने की प्रवा

(९) कम्पाउणकारी समझ कर स्वस्तिक के प्रयोग की प्रवा ।

इतिवट स्विज के अनुसार तत्कालीन जगत् में महु एक ब्रैण्ट संस्कृति थी । इसका कश्म-जबल सुमम्बतापर या जलरी बकरीका रहा होना । इस संस्कृति का प्रभाव मंगोलों पर नहीं मिलता न नाविकों पर मिलता है । इसका विस्तार विजुवत रेखा के समीपस्थ प्रदेशों में जलिक रहा था । मैनेसेधिया और पोलीनेधिया में इसका प्रभाव था । संभवतः मिक तथा बजना-कटव की सम्प्रदायें इन्हीं ने उठ काड़ी हुई थी । जराबाही बुभलु लेमेटिकों में भी इन संस्कृति का प्रभाव था । समरीका की पुरानी जातियाँ मंगोल थी । अब भी बमई की नावों में बैठकर एशिया और अमेरिका की और बॉरिंग स्ट्रैट से जाया होती है । बाद में पायब अमेरिका की कुछ नयी जातियाँ गई थीं ।

भारत में भी उपर्युक्त प्रवायें मौजूद थी । अमेरिका और मैक्सिको में भारतीय संस्कृति के अनेक उपकरण मिलते हैं । अतः निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि भारत से कौन कब गया । परन्तु अमेरिका में जाया या मर्षों का उल्लेख है और भारत में भी मर्ष छिल्लियों का उल्लेख है । जयों का भारत से जान का समय महामारत कुछ से कुछ पहले का काल है । यद्यपि निश्चय से नहीं कहा जा सकता पर वह सम्भव भी नहीं है । परवर्ती काल में भारत से अनेक जातियों के बाहर जाने के बारे में मनु ने लिखा हो है, और कोई कारण नहीं है कि उस

यात्र का विस्तृत ही तिरस्कार कर दिया जाय। भारत के उत्तर पश्चिम में जाने वाले हिन्दुओं का स्पष्ट अस्तेय मिलता है। हो सकता है कि बौद्धों के



चित्र १७—मस्तिष्क की एक मध्यम
महिमा जिसकी वेब युवा हिन्दुओं की है।



चित्र १८—एक मध्यम पुरुष



चित्र १९—मस्तिष्क के माया
(मर्त्य) के बीच बैठता जो
हिन्दुओं के से लगते हैं।



चित्र २०—मर्त्य का हिन्दुओं
की भाँति ११ मास प्रगट
करने वाला व्यासचक्र।

मर्त्यों के प्रलोभा भी ऐसे ही भारतीय रहे हों। कुछकाल से तो यह बात ही है कि भारतीय लोग रोम और मिस्र ही नहीं जाया गुमाना तक जाया करते थे।

अथवा यह भी विकासस्थल है पर धर्म में हम अपना मत लिखने हैं।

(१) हीमिपोलिथिक संस्कृति के काल में भारत से अमेरिका तक लोग घाटे खाते थे। इन कारण बहुत सी बातों में साम्य हुआ। मर्त्यों में परबर्तों काय में मर्त्य की उपासना भारत में प्रचलित थी। मान का महत्त्व मिस्र में भी था। संभवतः माग टॉटम के लोग उस समय विद्यमान थे।

मनोविज्ञान और मानवविकास

हमारे सारे विचार हमारी सीमाओं की उपज हैं। हम सब मनुष्य जिन सत्त्वों के निम्ने जीवित हैं उनका पुष्पी पर रहने वाले अन्य प्राणि-जगत से कोई संबंध दिखाई नहीं देता। जीवन और मृत्यु सबके सत्त्वों हैं पर मृत्यु पर मनुष्य ने ही मनन किया है। मनुष्य मृत्यु के सामने असमर्थ रहा है। इसलिये उसने लोक और परलोक के भय को स्वीकार किया है। उसने मृत्यु का मौरव केवल सामाजिक मूल्यों से अनुभव किया है। व्यक्ति रूप में उसने मृत्यु का आत्म-दुःख का ही पर्याय माना है। आदिम जीवन से बीरे-बीरे विकास होते-होते वह कृता भव एक संस्कार बन गई है। मनुष्य का विचार ठोस नहीं वायव्य है। प्रकृति ही है वह। उसका रूप कबल रूपों (Ideas) में होता है। संसार में मनुष्य आज भी अतीत के दुर्गों की भाँति ही विचारों को महत्त्व देता है। पहले परिस्थिति से विचार जन्म लेता है परन्तु एक विचार का प्रारंभ होने पर वह परिस्थिति पर अपना प्रभाव डालता है। संभवतः अन्य प्राणियों की दृष्टि में मनुष्य केवल एक प्रकार का पशु है। हमारे पूर्वजाने जो जन्म मृत्यु के विषय में पूछ जन्म और पुनर्जन्म की बारम्बार बनावी थी उसमें उन्होंने पशु-पक्षियों के जीवन से अपना संबंध जोड़ लिया था। उनका विचार था कि सर्वभूत मानव होता है। यदि वह पाप पुण्य करते हैं तो उसके अनुसार जन्म मिलता था। उन लोगों ने अपनी सत्ता का सबका केन्द्र बनाकर रखना चाहा था। उन्होंने प्रवाह के रूप में सबको स्वीकार किया था।

ब्रह्म की स्वीकृति वास्तव में सामूहिक जीवन की स्वीकृति है। व्यक्ति का उसमें एक नियत स्थान है। उसमें किसी दुष्टता अपना स्थान नहीं पाती। मध्यकालीन भारतीय संतों ने जब मनुष्य के गर्हकार की निंदा की तो वह वास्तव में वह भी समाज का उपकार करने की ही चेष्टा थी कि व्यक्ति को दूसरों से दूध पीर बर्ब नहीं करना चाहिये। पर संतों का दूसरा आधार मान्य हुआ (Self loathing) थी, इसलिये लोक को उससे शक्ति नहीं मिली। भारत हुआ के कारण समूह और व्यक्ति का सम्यक सम्बन्ध नहीं हो पाया।

समाज के दो अंग रहे हैं एक जनसमाज एक उसके शासक। धार्मिक समाज से लेकर आज तक यह भेद किसी न किसी प्रकार बना रहा है। सब हो शासक-वर्ग अपने शासित-वर्ग की तुलना में (दुर्दिमान न सही) बतुर व्यवस्था रहा है।

इस प्रकार एक दूरी सर्वत्र बनी रही है। इस दूरी के कारणस्वरूप एक इन्द्र समाज में जन्म मिला है।

भौतिक पदार्थ का क्रमशः विकास हुआ। भूतलव चेतन शक्ति प्रकट करणा गया। अब वह मनुष्य बना तो उसने अपने लिये लोक परलोक बनाये, ताकि अपने अस्तित्व की व्याख्या कर सके। अपने को निरंतर विकसित करने के लिये मनुष्य ने समर्थ किया है, केवल दो कारणों से—जिजीविषा और धीरता के लिये। मनुष्य का चेतन परिवर्धित होता है और वह उसे सामाजिक रूप दिया है।

चेतन का निरंतर विकास ही मार्ग का विकास है। मार्ग के इस विकास को अन्य चेतन योगियों में भी स्वीकार किया जा सकता है। वह कहता है कि परलोक की कल्पना मनुष्य के ही साथ है। क्या जीवन के प्रारंभ में एक रंजीत प्राण में जिजीविषा नहीं थी? जिजीविषा ही प्रारम्भ है। वही चेतन है। चेतन भौतिक का ही प्रणालमक परिवर्तन है। भौतिक के अन्तः—वामी रूप परिवर्तन के साथ ही चेतन शक्ति का नाश आवश्यक नहीं है।

भौतिक के प्रणालमक परिवर्तन के रूप में चेतन है और चेतन का विकास है, उसकी विकसित शक्ति है। चेतन भौतिक पदार्थ में जैसे प्रारंभ हुआ, यह अज्ञात है। क्या प्रकृति के अर्थ में चेतन पुनः और भौतिक शक्ति का एक ही सर्वत्र हो सकता है? जिस चेतन में स्मरण शक्ति, परंपरा आदि

प्रकाश का धर्म है ज्योति-किरणों की मात्रा। बहुत बहुत दूर तक किरणें भौतिक जगत में बहती हैं। फिर वे गूट हो जाती हैं यानी रूप-परिवर्तन हो जाता है।

धनि एक ऊर्जा (Energy) है। धीप के बुझने ही किरणें गूट नहीं होती। जो उसमें से निकस चुकती हैं, वे धाये बहती रहती हैं।

मानव मस्तिष्क बहुत ही पुष्ट (Complex) है। उसके समु (feeling) अनुभूति को इन्द्रिय-जन्य क्रियाओं द्वारा किस प्रकार पकड़ते हैं यह धमी तक स्पष्ट नहीं हो सका है।

किसी प्रकार की टकरावट से धब्ब होता है। वह भौतिक जगत में घूमता है। वह बीरे-बीरे धनि बन जाता है। चेतन भी उसी प्रकार धब्ब और प्रकाश की भाँति ऊर्जा के रूप में रहता है। यह धावयक नहीं है कि चेतन का वैयक्तिक रूप सदैव एक सा अपरिवर्तन नहीं बन रहा है।

धाम्या के हो हो रूप हमारे सामने हैं—

(१) ईश्वरवादियों का धास्वत एक रूप रहने जाता धाम्या।

(२) इतर धनास्मवादी कुछ द्वारा बताया गया धाम्या।

(१) वह धास्वत नहीं होता परन्तु उनमें वैयक्तिकता बची रहता है।

(२) वह धण धण बलता रहता है।

ब्रूमियन हस्त्वने के मतानुसार पुष्पी पर जीव के इतिहास में पहली बार एक पदार्थ तत्त्व प्रकट हुआ जो निष्कर्ष निकाल सकता था बारछाप बना सकता था और अपने जैसे ब्रूने साधियों तक पहुँचा सकता था—अपनी चेतन इन्द्रिया और मस्तिष्क से—वह मानव था।

मस्तिष्क एक इन्द्रिय है जिसने मन (Mind) बाह्य संसार को प्रतिबिंबित करता है। वह लघु मानवी संसार (Microcosm) का विराम संसार (Macrocosm) के विराम सृजन करता है। पनु केवल संवर्णाय स्मरण धक्ति के द्वारा धविक से धविक एक लघु संसार निरज सकता है, वह धनूण हागा धीर उसकी संवर्ण ध्यवस्था भी बहुत साधारण होगी। किन्तु मनुष्य में तो बिज ही बरत जाता है। उसका लघु संसार बहुत ही संवर्ण हा जाता है, ऊँचे धरज को उसमें सुख्यवस्था मिलती है, यह केवल बलविन नहीं धेष् नाटक है, धीर इसका कथानक उत्तमा ही पुष्ट धीर सुगठित है निठना उस

का विकास हुआ है वह ज्ञान तंतुओं के विनाश के साथ भीने बिगड़ होता है ? क्या पता प्रकृति का भौतिक तत्त्व में वह चेतन अपने किसी अन्य रूप में बना रहता है, और वही फिर भागे का विकास नहीं कर लेता ? जीवन का प्रारम्भ मनुष्य से पुराना है । मनुष्य उस चेतन की विकास प्राप्त एक राह की नजिह है । जड़ और जीवन का मेव है कि जीवन में—उस प्राणी में जिसमें जीवन है—एक चाह है अपने को बचाये रखने की और वह चाहना जिजीव्या है । वही ग्रहणकार है । ग्रहणकार का विकास चेतन का ही विकास है ।

लोक की विभिन्न व्यवस्थाओं में जड़ चेतन रूप, परिवर्तनमय जन्म-जीवन मृत्यु में जन्म पुनर्जन्म को ईश्वर से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है । उसे भौतिक के विकास चेतन का ही कुणारमक परिवर्तन कहना अधिक संभव है । जड़ से चेतन का विकास क्रम में जन्म हुआ और उन कड़ी के बीच की व्यवस्था में हम केवल कल्पना का आधार मानते हैं ।

भौतिक पदार्थ में क्रमशः चेतन का विकास हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि चेतन का विकास जड़ से हुआ, परन्तु किस तरह हुआ यह अभी स्पष्ट नहीं है । प्रयोग ने बताया है कि विकास क्रमशः हुआ है । भौतिक पदार्थ के विकास में चेतन का कुछ विकसित हुआ है ।

कुणारमक परिवर्तन किस तरह होता है, यह भी हम नहीं जानते । यह कितने प्रकार का होता है यह भी अभी अज्ञात है । हम उस परिवर्तन को एक भ्रमक या सड़क हैं । चेतन का विकास उतना ही हम जान पाये हैं जो कि भौतिक के आधार से पकड़ सके हैं । वह हमारे सामने घसन घसन प्राणियों की इकाइयों के रूप में प्रगट हुआ है । हम नहीं जानते कि भौतिक पदार्थ की किसी प्राकृति की विशेष क्षमता का शय हो जाने पर जो घसका चेतन भर जाता है, वह भर ही जाता है ।

वह भौतिक जगत में ही बस मान रहा है । मनुष्य के बाहर वही भौतिक पदार्थ अपने अन्य रूपों में है । दीप जलता है, धमिले से । धमिले विशेष पदार्थों के नर्चर से जन्म लेती है । दो पत्थरों को रगड़ से धातु मनुष्य धमिले जलता था । हम काठ और फॉस्फोरस की रगड़ से जलाते हैं ।

फिर उसे तेज और बत्ती का आधार देते हैं—जानी भौतिक पदार्थों के एक रूप से जन्म लेकर धमिले दूसरे रूपों में भी जीवित रह सकती है । दीप की लौ जलती है तो प्रकाश होता है ?

प्रकाश का अर्थ है प्र्योति-किरणों की यात्रा। बहुत बहुत दूर तक किरणें भौतिक जगत में बढ़ती हैं। फिर वे नष्ट हो जाती हैं यानि अप-परिवर्तन हो जाता है।

यानि एक ऊर्जा (Energy) है। दीप के दुग्धे ही किरणें नष्ट नहीं होतीं। जो उसमें से निकल चुकती हैं, वे घाये बढ़ती रहती हैं।

मानव मस्तिष्क बहुत ही दुग्ध (Complex) है। उसके वस्तु (feeling) अनुभूति को इन्द्रिय-वस्तु क्रियाओं द्वारा किस प्रकार पकड़ने है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है।

किसी प्रकार की टकरावट से उद्भूत होता है। वह भौतिक जगत में घुमता है। वह धीरे-धीरे ध्वनि बन जाता है। चेतन भी उसी प्रकार उद्भूत और प्रकाश की गति ऊर्जा के रूप में रहता है। वह साबित करने की कोशिश है कि चेतन का वैयक्तिक रूप सर्वत्र एक ही अपरिवर्तनशील बना रहे।

धात्वा के दो ही रूप हमारे सामने हैं—

(१) ईश्वरवाकियों का धारण एकक रूप रहने वाला धात्वा।

(२) दुग्ध अनात्मवादी बुद्ध द्वारा बताया गया धात्वा।

हमारे मन में चेतन में दोनों का ही दुग्ध रहता है।

(१) वह धारण रहती होता परन्तु अन्तर्गत वैयक्तिकता नहीं रहता है।

(२) वह लक्ष्य प्राप्त करने वाला रहता है।

बुद्धिमान हस्तक्षेप के मतानुसार पृथ्वी पर जीव के इतिहास में पहला बार एक पदार्थ तब प्रयुक्त हुआ जो निम्नलिखित विकास सकता था—आरक्षण बना सकता था और अपने जैसे दूसरे जीवों तक पहुँचा सकता था—अपनी चेतन इन्द्रियों और मस्तिष्क से—बहु मानव था।

मस्तिष्क एक इन्द्रिय है जिसमें मन (Mind) बाह्य संसार को प्रतिबिम्बित करता है। वह लघु मानवी संसार (Microcosm) का विस्तृत संसार (Macrocosm) के विकास सृजन करता है। यद्यपि कभी तत्सर्वत्र स्मरण धर्म के द्वारा अधिक से अधिक एक लघु संसार सिर बन सकता है, वह धूर्त होगा और अपनी संयुक्त व्यवस्था भी बहुत साधारण होगी। किन्तु मनुष्य में तो बिना ही चेतन पाया है। उसका लघु संसार बहुत ही संयुक्त हो जाता है, ऊँचे स्तर की उसमें व्यवस्था मिलती है, यह केवल ज्ञात नहीं, स्पष्ट स्पष्ट है और इसका कथन उतना ही दुग्ध और सुगठित है जितना उस

विघट संसार का माटक है, जो मनुष्य के बाहर होता है। यह मानवी सद्बु ससार प्रायः रूप और विस्तार में उस विघट संसार की अनुकृति पर ही अपना निर्माण करता है। इसका परिणाम यह है कि जीवन पहली बार मनुष्य की आकृति में बाह्य संसार के विषय में कुछ साधारणीकृत विचारों को रूप देता है। जीवन अब घटनाओं का बर्तक नहीं वह पहली बार जान पाता है कि घटनाओं में शक्तियों की एक प्रणाली भी है। इन शक्तियों का निरंतर मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है। सूर्य तूफान फसलों के उगने हिस पशुओं विभिन्न कबीला जातियों और मनुष्य के अपने हृदय के अज्ञात अपरिचित प्रदेशों में शक्ति है, मनुष्य अपने जीवन-पथ में इन शक्तियों के संपर्क में आता है, जो या तो उसके अनुकूल हैं या प्रतिकूल। मनुष्य इन शक्तियों के बारे में अपनी बारणा बनाता है और एक बार बन जाने पर वह बारणा उसके धर्म विचारों पर अपना प्रभाव डालती है, उसके भावों पर उसके आचार पर भी प्रभाव छोड़ती है। बारणा जितनी सज्ज है उसका प्रभाव भी उतना ही सशक्त होता है। मनुष्य का यह बारणा जगत ही धर्म आदि का रूप धारण करके बौद्धिक आचार बना है। उसी को हमें पृष्ठ करके देखना है। मनुष्य को प्रकृति के तीन रूपों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है—वह जो कि सूर्य चंद्र आदि है, वह जो कि प्राणिजगत है, और वह जो आप्यात्म का मनोवैज्ञानिक है। प्रथम Inorganic है, दूसरा Organic तीसरा Psychic. किंतु प्रकृति में एक ही प्रकार की ऊर्जा (Energy) है, चाहे वह रेत सींचती है, मनुष्य को उभर करती है, ताप या ज्योति में अज्ञात होती है या बिरते पत्थर में मिलती है। केवल सार (substance) एक ही है। पृथ्वी मनुष्यों नवियों चट्टानों, पवन में उड़ते मेघ, स्वर्ण पवन बहुमुख्य रत्नों और साधारण मिट्टी— सब के रूप में—छपीर में—सीमित मूल (elements) हैं। यह सब मूल (matter) के विभिन्न मापनों में समिधण है, विभिन्न विद्युत है, मानात्मक भेद से अलग-अलग मगते है किंतु मूलतः सब एक ही (matter) है वहाँ उस में पहचान नहीं व ऊर्जा में अलग अलग नहीं किये जा सकते। विशेष घटनाओं के सिवा किसी नियन्त्रा का नहीं माना जा सकता। विघट प्रकाश और अज्ञानात्मी विस्फोट वस्तुधा के पदार्थ संघट्ट का परिणाम है। यह अस्पर्शियत नियम और एकत्व है। गति और स्थिति से ही शक्ति का परिचय है जिससे नये नये सिरजन होते हैं, अन्यथा यह सृष्टि मृत हो जायेगी। परन्तु इसके नियम तत्समक अक्षय्य कोटि पर्यो की कल्पना करनी होगी। समस्त की गति दाया की ओर होती है। पदार्थ का एक अद्विष्ट और विशेष सुरह रूप ही प्राणिजगत है। इसका विचार

दुष्प्रात्मक परिवर्तन से वह पदार्थ से हो हुआ है। पदार्थ एक ओर वह अवस्था को शक्ति में सब की ओर धावसर है—अथ जो करोड़ा परबो वर्ष में होया—तो वह प्राणी अवस्था में बुरा हो जाता है, उसके रूप विभिन्नतम दिखाई देते हैं। हमसे कहता है कि यदि विज्ञान का यह विचार निष्कर्ष ठीक है तो एक समय रहा होगा जब पदार्थ धाव के रूप में नहीं रहा होगा तब प्रभु नहीं रहे होवे स्वतन्त्र परमात्मा रहे होने। उस अवस्था से विकास में परमात्मा की अवस्था से प्रभु बने होवे और प्रभुओं और प्रभुओं के मिलन से—जहाँ अवस्था में रासायनिक किवा बिना विभिन्न प्रभुओं में विभाजित न किये जा सकने वाले कण बने होवे। (Molecules) कण के समूह स्रष्टा को पार करने पर वह समय धामा होगा जब तब और प्रदासविशेषों ने पृथ्वी के उत्पन्न को १०० डिग्री सेंटीग्रेड से कम किया होगा तब उस बना हुआ भाव से और फिर हम बने होवे। वे प्रभु जो उस से बने बिना अकर्मक रहते थे—औस अवस्था में—शक्ति के नय रूप में बने होवे—रासायनिक जीवन में। फिर धामा होवा बेतन जीव जिसके लिये ऐसे कणों की आवश्यकता है जिसमें सृष्टी प्रभु हो और प्रत्येक प्रभु में अकर्मक अवस्था कावित परमात्मा हो। वह है दुष्टता। धार्मिक या समोर्ध्वानिक पन् में मानसिक क्रिया की अतिधीनता में निरंतर वृद्धि हुई है। एकरमिय प्राणी या कीट कण में जीवन मानों वातायन-शून्य है। बेतन इन्द्रियों के विकास से हो समस्त शक्ति का उदय होता है। जीवन को दिया का साधन है—अधिक जीवन। माना में भी प्रभु में भी। बेतन वह पर हावी होता जा रहा है। और इसी विकास में अमय कावित संतान के ऊपर विकास का प्राप्त कर गया है—अधि—धाम बेतन अधि जिसके पास एक मुख्यवस्थित संतान मस्तिष्क है। वह है समुच्च और इसका पृथ्वी पर समय अभी बहुत ही छोटा है। वह समुच्च अपना निर्माण स्वयं करता है न कि प्रकृति को पुराना बनाव और समय की परिपाटी के अनुसार ही बनता है।

मस्तिष्क एक रिश्ता है जो ब्रह्माण्ड का बिज धारण करना है। समुच्च के रूप के साथ पृथ्वी के इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो गया है। पदार्थ धामा बन गया है, धर्मित जागरूक बेतन और सब हमें ही पदार्थ को गढ़ना है। विकास में कितना अभी और संभाव्य है? भाषा आज प्रारम्भ करने बात पुणने बर्बर ने जो अर्थ विज्ञानों में बूझे हुए थे। पता नहीं, किस बर्बर ने इस मस्तिष्क की उस छिपी हुई शक्ति का बिना प्रकार सम्पाद प्राप्त कर लिया, जिससे हिप्पोटिगम का विकास हुआ। वैज्ञानिक मानते हैं कि

हिप्नोटिज्म के द्वारा केवल दृष्टिपात से किसी के चर्म पर छोड़े फुन्सी पैदा किये जा सकते हैं। परन्तु यह चेतन की कौन सी शक्ति है जो सर्वसाधारण में नहीं है। किसी मनुष्य के मस्तिष्क के कुछ तन्तु साधारण व्यक्तियों के मस्तिष्क तन्तुओं से अधिक अनुपस्थित होते हैं।

मस्तिष्क की शक्ति का किस घटक से हजारों वर्षों में मनुष्य को पता चला ? कैसे उस पर उसने कानू पाया ? अभी तक यह क्षेत्र प्रयोगों के नीचे नहीं आया है। यह क्षेत्र पुराने इकीम बीचों की बचावों की तरह है ? इकीम बीच भी बचावें बनाते में अनवरत तरीके अपनाते हैं, उनका भी वैज्ञानिक स्तर प्राधुनिकों जैसा नहीं है। निश्चय रखा है सँत हस्वी पीपस जिन्ना देने से यह बनाकर देने से साम होता है। पर किन्तनी सँत किन्तनी हस्वी किन्तनी पीपस। यह विकास प्राधुनिक विज्ञान की छाया में धीपति निर्मास में हुआ है। परन्तु इकीम बीचों ने सचियाँ भी बचावें भी हैं, उसी तरह हिप्नोटिस्टों के भी कुछ पुराने तरीके हैं। विज्ञान के लिये वे नव क्षेत्र हैं। मनुष्य के मस्तिष्क का विकास—चेतन का परीक्षण। वह जो सपने देखने वाला विमाग है। याज्ञवल्क्य ने उसको धारमा कहा था। परन्तु यह क्या है ? स्वप्न कोई चाह कर नहीं देख सकता। प्रत्यक्ष में इस मस्तिष्क को उपचेतन कहा था जिसमें मनुष्य की अमित योग-दृष्ट्या समा जाती है। हिप्नोटिज्म अभी पुरानी कीमियागरी वाली हालत में है। विज्ञान को इसकी खोज करनी ही पड़ेगी। यह जो प्राचीन का सपने देखने वाला विमाग है यह योगी का चित्त होता है। वह उस पर कानू करता है हिप्नोटिस्ट भी उसी पर कानू करता है। और वह काम होते हैं जो सहज समझ में नहीं आते। सम्पूर्ण मस्तिष्क के तन्तु किस प्रकार चेतना को छात चेतन और उपचेतन के रूप में पकड़ते हैं उन्हें अनुभूति पहचान है, यह जानने के लिये एक बड़ा जारी विषय है। उप चेतन समय समय पर भय वा चला वा प्रेम के विभिन्न आवेशों में कभी कभी अपनी प्रत्यक्ष दितला सका है। ज्ञात चेतन में स्मरण शक्ति है नियोजन शक्ति है, विवेक शक्ति है परन्तु यह उपचेतन चेतना का और भी कुछ और सम्भ्र हुआ स्वल्प है जिसमें ज्ञात चेतन का पारा मानवी मनु संसार बाह्य विराट संसार का छान कर जो प्रतिबिम्ब होता है वह सब तो उतरता ही है ज्ञात चेतन की बिबीबिया—उत्तका आई—उत्तकी रिपिटा उसके आई का प्रसार वह सब भी उसमें समिहित होता रहता है। और उसमें वे शक्तियाँ हैं जो साधारण प्रकृति में नियमा को नष्ट सकती हैं, पदार्थ को पड़ती हैं।

जात जेतन में प्रकृति के बाह्य स्वरूप को अपने साम के निचे प्रयुक्त किया है जपजेतन में व्यक्तित्व के विकास को घसाधारण संभावनाएँ हैं, क्योंकि वह पदार्थ का बहुत ही दुबल और उम्मत जेतन स्वरूप है।

जेतन की विरासत पदार्थ की विरासत से भिन्न होती है। जिस प्रकार रोग पिता से पुत्र में उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रत्येक नये मनुष्य को मस्तिष्क विरासत में मिलता है। पदार्थ का एक विरूप धाकार प्रजमन में अपनी जमीनी ही (Species) योनि को जन्म देता है। जेतन भी प्रत्येक एक पदार्थ-जप देह में विकसित होता है। जेतन में हमीमिये सेट होते हैं। धरीर रचना से मस्तिष्क पर काफी प्रभाव पड़ता है। धरीर के विभिन्न धग विभिन्न रूपों में स्थित पदार्थ का मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल में सत्य के एक कवि ने धर्मकोप को मनुष्य देह में व्यर्थ बताया था। परन्तु धब पता जाता है कि वे धीर्यकोप होते हैं और उनका मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जेतन की तीक्ष्णता का मंदत्व भीतिक पदार्थ पर धावित है। मस्तिष्क के संतु धवि विकृत हैं तो जेतना भी कुष्ठित होती है। धारों धीर के पर्यावरण (environment) का मस्तिष्क निर्माण में बल प्रभाव पड़ता है। योनि-विकास में जेतन एक पीढ़ी धर पीढ़ी बमने वाली धारा है धीर जिजीविषा धीर धरिषा के धर्मीकरण में वह प्रत्येक धबस्था में समाययत व्यक्ति के रूप में धंड धंड है। प्रत्येक मस्तिष्क का जेतन एकता नहीं होता।

इस पुष्पी के जितने धूत हैं वे एक ही ऊर्जा (energy) के रूप हैं। धम से यह पदार्थ मुख्यवर्तित हुए हैं। उनकी मुख्यवस्था के संवटन का क्रम निरंतर बढ़ा है धीर मातात्मक परिवर्तन से जो धुलात्मक परिवर्तन हुआ है उसी में बढ़ से जेतन में विकास किया है। पुष्पी में परस्पर एक धुवरे का धनेक क्रमेध संवध है। यह संवध पुष्पी के भीतर ही नहीं पुष्पी के बाहर भी है। यह है ध्यों से धीर सूर्य से। इस बहुत छोटे परिवार के धारस्परिक संवधों को भी हम धनी पुर्ण रूप से नहीं समझ पाये हैं। धनव से बिजने जाने सीमित ध्यापक महाधोक के धर्वध धाधधु धों से जो हमारा भीतिक संवध है—उसके धारे में तो हम जान ही नहीं पाये हैं। धर्वध ध्योतिधधों में जा प्रकाध उम धरनों धरनों भीम धूर के नखधों से धरती पर धावा है क्या उसका कोर भीतिक प्रभाव यहाँ के पदार्थ पर नहीं पड़ता होता ? ध्योति के रंम होते हैं धीर उनका धसध धलध प्रभाव पड़ता है। धंजमा के धुर्धोदय में धानर में ध्वार धावा है धीर सूर्य के धारध मेंध उठने हैं। धीर धनस्पति तथा धनधायु की धेटियाँ धधनती हैं, धुराने ध्योतिधो धनि धधन धुध धुरधधति धधन

यहाँ को देवता समझते थे। उन्होंने अपने ही विचार से सोचा था कि इनका प्रभाव मनुष्य पर भी पड़ता है और ज्योतिष का विकास इस पृथ्वी के मनुष्यों में तब ही हो गया था जबकि महाभारत का मनुष्य यह समझता था कि जीर्ण किसी भी रास्ते से स्त्री में पहुँच जाने तो वह गर्भवती हो जायेगी और न ही वह आसता था कि शरीर में मस्तिष्क किन शिराओं से पोषण प्राप्त करता है। उस मनुष्य का यहाँ न बारे में जो विचार था उसका व्यवस्थितान पूर्ण होता आवश्यक था। वह मनुष्य यही मानता था कि सूर्य ही पृथ्वी के चारों धार चक्कर लगाता था। परन्तु इस गलती के बावजूद वह ग्रहण लगने का समय पहुँचे से हिसाब जमा कर बिस्कुल ठोक बठा देता था। उसके पास भाव अभी बड़ी भी नहीं थी। जब पदार्थ का चेतन धारा होकर भी जड़ जड़ व्यक्ति है तब क्या हम पर म्यूनाधिक रूप से ग्रहों का प्रभाव भिन्न भाषा में नहीं पड़ता होगा? इस स्रोत का यह आवश्यक परिणाम नहीं है कि वैज्ञानिक भी ज्योतिषी की भाँति भविष्यवक्ता बने। पदार्थ अपने स्मृत रूप में प्रकृति से एक साधारणीकृत प्रभाव ग्रहण करता है। परन्तु चेतन रूप में मस्तिष्क शिरार्ध और तन्तु जो पोषण उस मानवी तन्तु संसार को पहुँचाती हैं जो विरल संसार का एक प्रतिबिम्ब है, और जिसमें इच्छा—यानी अहं नामक गुणात्मक परिवर्तन अर्थात् वैयक्तिक त्रिबीजिया और रिरिटा है, और वह उपचेतन और भी कुछ है क्या इन पर भी वह प्रभाव साधारणीकृत होकर पड़ता है या अहं की भाषा से उसका भी भौतिक प्रभाव अपने गुणात्मक रूप में विभिन्न हो जाता है। वह चेतन को विभिन्न गुण प्रदान करता है। पदार्थ से विभिन्न प्रकार की किरणें ऊर्जस्वित होती हैं, उदाहरणार्थ हृदयों को पारदर्शी दिखाने वाली एक्स-किरण जो अकस्मात् ही हाथ लगी है। पुराना मनुष्य इस पर कभी विश्वास नहीं करता। कॉस्मिक किरण भी विशेष कुछ रखती है। किरण शक्ति का ही निष्कुरण है और इनका भौतिक मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है।

यहाँ से बिस्फुरित शक्ति जब धासीक बनकर जाती है तब क्या जड़-जड़ चेतन पर उसका प्रभाव पड़ना अगम्य भाषा जा सकता है?

पदार्थ में चेतन का प्रादुर्भाव गुणात्मक परिवर्तन में हुआ। वह कैसे हुआ अभी यह प्रश्नमा प्राप्त नहीं है।

चेतन में त्रिबीजिया का अहं उनी शक्ति का परिणाम है, जो गुणात्मक परिवर्तन है, अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने को विनाश से बचाने का प्रयत्न

करता है। यह प्राणी के सिधे सहज है। उसके मिया बहुत ही धारमिक चेतन मानी जयम होला मान काडी है। धनुवीदण मय मे दह मान माने कीटाणु भी स्वरदा में लवे रहते हैं। स्वरदा—मानी जिजीविषा और मस्यावर्जन मानी प्रजनन यह के चेतन होने के गुणमक परिचर्जन होने के मय के ही दुखमक परिचर्जन है। जिजीविषा और रिगिना का दुमरा नाम यह है। यह नितान निर्धर है भौतिक पर। भौतिक का विकास ज्यों ज्यों दुह होला जाना है चेतन का विकास बडा जाता है। विकास की यह प्रक्रिया कई मोनियो म माखों बरस चली है। मय में इसका विकास मनुष्य है। पहले के प्राणियों म यह जिजीविषा-रिगिना धममम मान भी जो बडनी यह और स्पष्ट हुई धाये के विकास में किनु लव लक भी भौतिक रूप मे मस्तिक का इतना विकास नहीं हुआ म। मय लव चेतन इतना सगल नहीं म। यह बीरे भी मानव मस्तिक लक पहुँचकर व्यक्तिक रूप में विवसित हुआ और उमने बिराट ममान का मानवी मनु संसार म बिब धारस किया।

बिचार का प्रभाव मान-संतुधों पर पडा है, और उमका प्रभाव बरता भी है। बिचार एक सामाजिक मपर्क और परावरण मे डडून व्यक्तिक की प्रक्रिया है। प्रत्येक क्रिया प्रक्रिया का पदार्थ के बागों लपो—मून और चेतन पर प्रभाव पडा है। लक लक चेतन व्यक्तिक संतुधोवला प्रभाव पति के म है। मय बिचारों की क्रिया प्रक्रिया स्वरण और परंपरा और संसार बनकर प्रभाव डालते हैं। व्यक्तिक का अन्य भौतिक में धाधित चेतन में होता है। चेतन संतुधोवला पदार्थ की ऊर्जा (Energy) है। धकि नदीव बिबीर्ण (radiate) होती है। हमारे पटिम चेतन और उरचेतन का बिबीर्णकररा होता है। उम रूप में संस्कार व्यक्तिक धाई, जिजीविषा रिगिना, स्वरण और मवेन की प्रक्रिया मिरतर बिबीर्ण होती है।

मनु ॥ उपरांत दीप से जिस प्रकार दीप जलता है—बिबिध से मागसेम मे लटा म—वैने ही 'मनारवन् माग्मा' भौतिक देह के मय पर भी भोविन रता है।

ऊर्जा के रूप में जीवि और धम्य दोनों बिबीर्ण होने हैं, और धपने व्यक्तिक की बापी सनय लक पारण करले हैं, धम्य के बिपय में तो यह बिन्धुन स्पष्ट ही है। मनु के उपरांत देह से चेतन बिबीर्ण होता है। भौतिक से दुखमक परिचर्जन मे विवसित चेतन में जो कि भौतिक पर धाधित है,

स्मरण बैसी विविध शक्ति है। वह अपने आयाम (dimensions) और भी एक सकती है।

चेतन धर्मोत्तिक नहीं है। वह पहले नहीं था फिर जब अयम सृष्टि प्रारंभ हुई वह प्रविष्टित था। गन्तुय तक आते-आते वह विकसित हुआ। जिस प्रकार सहर (wave) के रूप में प्रयोजित और सम्बन्धित अवस्था में ही रहते हैं, चेतन का वह अतिम गुणात्मक परिवर्तन भौतिक अवस्था में ही रहता है। मरने पर देह विकसित है। तत्त्वों में तत्त्व मिलते हैं। तब भौतिक के उच्चतम चेतन रूप गुणात्मक परिवर्तन का गुणात्मक परिवर्तन होता है। मस्तिष्क के भौतिक तन्तुओं से बाहर उसका स्थान है, बाहर भी भौतिक आयाम वर्तमान है। गुणात्मक परिवर्तन से जब एक भौतिक देह नष्ट होकर आन तन्तुओं को पोषण न पहुँचने पर मस्तिष्क काम बंद कर देता है तब चेतन का संस्कार बच जाता है परिवर्तित हो जाता है फिर जन्म लेता है।

जीव्यरज के मिश्रण से भौतिक देह बनती है और सभी देह में मस्तिष्क बनता है, मस्तिष्क बाह्य साध प्राप्त करता है। मृत्यु पर गुणात्मक परिवर्तन से जो चेतन अपने में संस्कार स्मरण आदि के साथ विकीर्ण होता है—वह नये नर्मस्थ प्राणी से सबब कैसे स्थापित कर सकता है? वह सभी प्रयोग का विषय है। कुछ ने कार्य-कारण के अवशिष्ट व्यापार की स्वीकृति के कारण कर्म के फलफल के रूप में अनात्मन का पुनर्जन्म माना था किन्तु उसमें संपद की बात थी, सभी वह विचार कल्पना मात्र बनकर नष्ट हो गया।

हम नहीं समझ सकते कि किस प्रक्रिया में भौतिक देह में पोषण-आहार जाकर पिपियों और तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में चेतन का आपत करते हैं कि वह इतना बड़ा व्यापार करता है। उपचेतन जो भौतिक व्यापार से पुष्ट होता है न जाने कैसे अपने को ज्ञात चेतन में समान भा रकता है परन्तु भौतिक और वह भी धर्मज्ञानिक ही प्रणालियों—हिमोटिज्म आदि से—विभिन्न शक्तियों दिखाता है। जैसे पहले रहस्यों को विज्ञान द्वारा इसे जानना है उसी प्रकार इसे भी जानना है। इनमें से जो प्रयोग-सत्य है, उसे स्वीकार करना है बाकी को नहीं। परन्तु भौतिक अवस्था के इस चेतन का जल न माया है, न भाव्य और न परमात्मा। परमात्मा ईश्वर (संकर के शब्दों में) आत्मा, माया भाव्य सब पहले से पूर्ण (Absolute) नहीं है। न सामाजिक जीवन के विचार हैं।

हमारा मानवी-सह-संसार सभी तक निरास संसार का पूर्ण प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं कर सका है क्योंकि अभी तक हमारा इतना विकास नहीं हुआ है। चेतन प्रारम्भ में इतना विकसित नहीं था, जितना बाद में हुआ है।

उसके ज्ञान से मेधावी और समझी के जन्म की बात भी समझ में आयेगी कि क्यों बिरोध बस्तियों में मेधा इतनी प्रबल होती है। परमात्मा और परमात्मा-हीनता के विचार मध्य-कालीन हैं।

संसार में क्या कुछ थाता है, यह स्वतः सिद्ध है। पुराणों में भी विज्ञान का वर्णन है। परन्तु हमने पुरानी परिभाषा को छोड़ कर नये रूप की स्वीकार किया है। जैसे बात बही पुरानी है कि धाकाय में एक बीज करके मध्यकालीन और प्राचीन परिपाटीयन नामों से मिलाकर, उन्ही उड़ती है। धारिद ने उसे ऊर्ध्वचिह्न मान लेकर उसकी महत्ता को सीमित करके मध्यकालीन और प्राचीन परिपाटीयन नामों से मिलाकर, उन्ही सीमित मानदण्डों में रखकर, भौतिक में प्रारंभ करके धर्मोपस्था उसे धर्मोपस्था में परिवर्तित कर दिया है। भौतिक का सीध में धर्मोपस्था के सीध में नहीं बढ़ा है क्योंकि उसमें मनुष्य का अज्ञान नहीं। मनुष्य तो बाद में इन धरती पर आया है, और वह कभी भी इसका अर्थ नहीं है। इन महापति का अर्थ (purpose) अज्ञात है।

मानव ने बर्ग कुछ देखा था। वह मनुष्य के रूप में ठीक था। परन्तु उसने व्यक्ति की सदिच्छा को नहीं देखा जो धर्म यानी व्यक्तित्व का चेतन विकास है। इसका कारण था कि उसकी पृष्ठभूमि में बहुत ही और ईसाई संप्रदायों के सीमित चिंतन थे। वह बहुत भौतिकवादी नहीं बना क्योंकि वह एक विज्ञान में अपना प्रभाव डाल दिया था। अभी वह इन्द्रायक भौतिकवादी बना। परन्तु उसने इन्द्र को व्यापक नहीं बनाया केवल सीमित दृष्टि में देखा। उसकी ही दृष्टि से देखा और उसकी चेतन विज्ञान की प्रक्रिया के रूप में वह नहीं देख सका। इनका कारण यही था कि यूरोप में सम्यक्ता का प्रभाव अधिक रहा है संस्कृति का नाम जिसके कारण ही विज्ञान ने अज्ञानता को जन्म दिया है, और मनुष्य का व्यापक विकास कुण्ठित किया है। विज्ञान के अग्रम विकास ने मनुष्य के पूर्ण रूप से धर्मोपस्था नहीं किया है।

मानव ने बर्गकुंड के अंतिम समय में राज्यहीन (State-less) समाज की स्थापना करके प्रत्येक व्यक्ति को एक ऊँची मनोरथा में कल्पित किया था और कहा था कि धार्य चलकर यह कुछ आपस में मनुष्यों में न चलकर मनुष्य और प्रकृति में चलेगा। मनुष्य का ज्ञान निरंतर प्रकृति को जीतना चला आयेगा।

परन्तु कुछ का विचार समूह का विकास है, किन्तु व्यक्ति रूप में व्यक्ति

का विभिन्न रूप होगा। मजदूरी मनोरक्षा एकदो नहीं होगी। मनुष्य ने अपने सुख के लिये प्रकृति से संघर्ष किया है और करता रहेगा। नित्य समूह की जिजीविषा और धिरेखा इस अर्थ के विकास में व्यक्ति में भी अपना भूमिका भूमि विकसित करती है। वह यह क्या वह प्रकृति की विषय में अनुष्ठ हो गया? मध्यकालीन यह का घट 'संतान' या परंतु उनमें यह मानना सदैव भी कि ऐसा करने वाले वास्तव में अर्थों में ठीके और उदारता में। गीता के दृष्टि में यह यह है ईसा में यही या जब उसने कहा था कि घरे मुझे। मैं कब तक तुम्हें बचाने जाऊँगा? कुछ में यह यह था जब यह घने प्रचार करने निकलते समय उपर से मिलकर बोला था कि मैं मोई हूँ अमी प्रजाओं को जगान जाता हूँ। यह यह यात्री में था जब मसाबार पर्वत पर उसने विद्रोह से कहा था कि बाधो समझीता करो करोड़ों हमारी धोर देख रहे हैं और घुमा में जब उसकी रेल रोककर धगरेबी सेना ने उसे फिर फटार किया था तब उसने गैंगफ्लारसन से कहा था जाकर बुनिया में कहना कि यह है विद्रोह कीरता कि वे एक अकेले विद्रोह व्यक्ति को इस तरह बोरी से पकड़ सके हैं। इस घरे उदारवाद का भूत यह है। इस घरे को प्राप्त करने के लिये महावीर ने अपने कानों में काठ ठुकाया था। यह यह कुत्सित नहीं है कि इसका निराकरण किया जाये। यह जिजीविषा और धिरेखा है। वह महापुरुषों में अतिविकसित होता है। यह घावे भी महापुरुषों में रहेगा और इसीलिये मनुष्यों का पारस्परिक संघर्ष समाप्त नहीं होगा। उसका रूप मने ही बदल जाये। संपत्ति के समाजगत होने पर स्व में लोगों का यह अधिकार के लिये लड़ता है। अधिकार की सीमा भी जब मनु बन जायेगी तब यह यह नये प्रकारोंतर खोज गया तब तक जब तक कि विकास-क्रम में यह चेतन ही अपना अधिक विकास नहीं कर जाता।

कला साहित्य इत्यादि सौन्दर्य की भावनाएँ, जो विज्ञान के दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं, यह उची यह की अतिव्यक्ति हैं। यह का विकास ही अपना साधारणीकरण करता है। फायद ने यौनवासना को साधार माना था परंतु वह यौनवासना भूतः धिरेखा है। उची के अंतर्गत भावों का सबसे वर्णनाव है। इन दोनों को ही प्रकारोंतर से जिजीविषा कहा जा सकता है। फायद ने अर्थगत रक्षा मानने ने दूसरे दृष्टिकोण से उसे देखा। मानने ने इन अर्थगत चेतन के कार्य को बहुत सहज समझ था जितना ही जितना उमरा जान चेतन मात्र समझ सकता था। फायद ने उपचेतन के केवल एक धर्म प्रवर्तन को समझने की चेष्टा की।

पाप और पुण्य समाज नियमों का पालन और उत्थान है और वह भी किसी नियम देश कास की परिस्थिति में। पाप और पुण्य समूह है, किन्तु क्योंकि व्यक्ति समूह में रहता है, नियम देशकास की सीमा के कारण उसके संस्कार उनके अनुकूल बनने हैं। किसी भी देश के व्यक्तित्व में उनका अंश रह जाता अत्यन्त नहीं क्योंकि विचार एक बार क्रम सेने पर महारा उतर जाता है और दोष विचारों पर प्रभाव डालता है। फलफल की भावना को इन संस्कारों से मिला कर देखना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक जन्म में क्रिया प्रक्रिया का मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होता है। अतः एक देशकाल में स्थित संस्कार हमारे जन्म में उनी रूप में नहीं था मकता क्योंकि उसका कास आयाम (dimension) में बदल जाता भी आवश्यक है। दोषक और दोषित वर्ग का सम्बन्ध फलफल में सम्बन्धित है। कर्म और पुनर्जन्म की भावना मिल्के पुरानी अनाथ जातियों में भी जो पहले जन चिन्तन में अन्तर्भूत हुई। क्योंकि उसे मनीषियों ने व्यक्तित्व माना। उन्होंने उसके साथ से ईश्वर या परमात्मा को हटा दिया। जैनों के इन चिन्तन में एक सम्य-दोषकर्म का अत्याचार हीन रोका था। क्योंकि वे दया अहिंसा और करुणा के प्रचारक थे और उन्होंने दासों को भी समानता का अधिकार दिया। उपनिषद् कास के विचारकों ने भी परमात्मा को अस्पृष्ट माना क्योंकि दासों और अनाथों के इतने देवता आपस में महाभारत युद्ध के बाद अन्तर्भूत हो रहे थे कि मनीषियों ने यही माना कि यह छोटे-छोटे देवता उस 'महान' के अंशमात्र थे स्वयं वह मूल रहस्य ब्रह्म 'अज्ञात अस्पृष्ट' था। इस सहिष्णुता से मनुष्यों के समाज एक दूसरे के पास आने और वह 'महान' समाज के कायों से जो लोभा जाता पहले देश के विराट पुरव' के रूप में आनुवंशिक का सामक बनकर रहता था टूट गया। इन मनीषियों ने भी फलफल का विचार रखा और बाह्य और अन्तर को जो स्वतः विराट पुण्य के मुखबाहु से अल्प अत्याधिकारमय थे हमारे जन्म में कास के घटीर में डाल कर उस पुराने सर्वाधिकार के ऊपर अहिंसा और मानवीय मूल्यों को स्थापित कर दिया। जो बसर रही थी वह अनेकजीवी वैष्णव चिन्तन में पूरी की निम्न जातियों को परमात्मा के सामने एक मानकर यहाँ तक कि आनुष्य के समय में आर्यास और बाह्य विष्णुमन्दिर में एक मात्र मुखने थे। महाभारत में उनके का पथ पर अड़ू लपाना और धीमार्मायन में दाम अड़ भरत का राजा अणुण को उपदेश हमी समाज की हनुवन के प्रतिदिन है, जिसमें अनाथ पुनर्जन्म पहन इतिवर्तों के दाम बने कि सामक भी अपने अत्याचार के कारण दाम बन सकता है। परन्तु बीज चिन्तन ने पाँच पसद

दिया। फलाफल पुनर्जन्म में जो व्यक्ति के बन्ध पाने का मय था, बुद्ध के प्रसारण ने वह मिटाया और निम्न जाति के लोगों को बचा दिया। इसने को सगता है कि बुद्धमत जातिहीनता का प्रचारक था परन्तु व्यवहार में वह वहीं तक जातिहीन था जहाँ तक क्षत्रियों की बाहुल्यवर्ष से स्पर्धा थी। निम्नवर्णों को उस मत में मुक्ति नहीं मिली। बुद्ध क्षत्रिय प्रतिपासक थे जबकि समसामयिक महावीर निम्नवर्ष कुम्हारों के यहाँ ठहरे थे और वे क्षत्रियों से पीड़ित वर्गों के सबसे रक्षक। समाज इस हलचल में शासप्रथा के विघटन के पथ पर बढ़ा और शासप्रथा विभिन्न जातियों में धर्मियों (Guilds) का रूप धारण करके टूट गई। सामंतीय व्यवस्था का उदय हुआ जिसमें साम्राज्य में भाष्यवाद पर कर्म और राम के पौरव का उदाहरण था। परन्तु बाद में सम्भूत की कथा जुड़ी जो समाज की गतिशीलता का ह्रास बटाती है और इस युग में फलाफल पुनर्जन्म संस्कार के ह्रास का इन्धियार बना। इस प्रकार फलाफल सिद्धान्त एक समय सोपित का इन्धियार था दूसरे समय वही सोपक का हो गया। अतः इसमें विद्रोह करने का प्रसन्न ही नहीं। बने हुये का विद्रोह तो बेतन का विकास है। अब पुनर्जन्म की मध्यकालीन व्याख्या प्राणस्यक नहीं। जैसे नये हवाई जहाज को पुष्पक विमान की व्याख्या की नहीं है।

रोप विरोध कहल करके शरीर (भौतिक) प्रपनी संतान में रोप फैलाता है। यह फलाफल है। स्वस्थ का पुत्र प्रायः स्वस्थ ही होता। भौतिक विरोध के बाह्यर पोषण से बर्द्धित कुलात्मक परिवर्तन में बेतन विरोध भी इस प्रकार के फलाफल को प्रवृत्त कर सकता है परन्तु प्रायः वह बातावरण से प्रभावित होता है। कभी-कभी नहीं भी होता जैसे व्यापारी बाजारबल में रहकर भी नातक संतान की ओर उन्मुख हुये। इसमें किसी बर्नबावी या पूर्वीबावी समाज के संरक्षक बन कर संघर्षशील जनता को बरगमाने का प्रसन्न नहीं क्योंकि यदि यह कहा जाये कि रोप विरोध से पीड़ित व्यक्ति का पुत्र भी रोगी हो सकता है, तो किसी संघर्ष में बाधा नहीं पड़ती।

स्वर्ग प्रत्येक संप्रदाय वाले की धारणा के अनुकूल ही वर्तन में प्रायः है अतः वह व्यक्तिगत संस्कारमात्र है और यह भी वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयोग सिद्ध नहीं है कि ऐसे मरने वाले लक्ष्मण हो मर जाते हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन मंता ने कैवल्य उगी चर्ह को लिया जो व्यक्ति के लिये प्रायः है। मेरा मतमय उस चर्ह से है जो स्वस्थ प्रतिप्रीयिता करता है। प्रकृति की विजय में मनुष्य को वह गृष्टि नहीं है जो जीवित प्राणियों में प्रपनी

प्रगंठा प्राप्त करने में—अथवा कोई कारण नहीं है कि कस का प्रयोग इस प्रकार नेताओं के पारस्परिक युद्ध में निरत हो। यूजीवादी देशों में ऐसा होना प्राच्य की बात नहीं है क्योंकि यहाँ उसका कारण यह भी है कि सम्पत्ति व्यक्तिगत है। जिस समाज में राज्य व्यक्ति का पूर्ण निवेष्टा बन जाता है वहाँ मनुष्य की प्रतिभा कुचिठ हो जाती है। अभी तक के विकास का कारण यह रहा है कि व्यक्ति को विकास करने के अवसर रहे हैं।

यहाँ घोर अन्धकार रहे हैं और अवसरों के अभाव में अनेक बुद्धिजीवी मृत हो गये हैं। परन्तु फिर भी कबीर जैसे व्यक्ति मिलते हैं जो समाज के बहुत ही बड़े हुए वर्ग में से उठे थे। इसी प्रकार अन्ध अंधाधुन बिये जा सकते हैं। अत्यन्त नियमबद्धता (डिस्टिप्लिन) में व्यक्ति को कितनी भी ऊँचाई पर क्यों न रखा जाये व्यक्ति मर जाता है।

इसलिये देश में फुर्तीसे कर्मठ अन्ध तो बहुत मिलेंगे किन्तु उस अन्ध व्यक्ति केतना का अभाव मिलेगा। वेचना ही हमें धार देता है। वेचना ने ही विश्व में अज्ञान कलाकृतियों को जन्म दिया है। यदि इस संघर्ष विकास के डिस्टिप्लिन को ही काम में लाया जायेगा तो समाज में व्यक्तिता प्रायेणी और मनुष्य की सौंदर्य भावना का विकास हो जायेगा। विशाल का विकास कर्मों की पोरफ़ेरी की उपयोगिता पर जोर देता रहेगा वह उनके सौंदर्यपक्ष को विमल कर देगा। धर्म के युग में संघर्ष में अभाव का कारण ही यह है कि विज्ञान ने मनुष्य को सत्ता को प्रमत्त किया है, उसे घोर अन्ध नहीं उठाया। अपने छात्रों की कमी में भी पूर्वजों ने मानवीयता का जितना ऊँचा उठाया है, विज्ञान उतनी देन नहीं दे सका है। विज्ञान राज्यों की सोनुपना और धर्ममय स्थापनों का राह बना है, जबकि कला का इतिहास यह बताता है कि इसने मर्द निर्दयता का विरोध किया है।

विज्ञान को यह प्रवृत्ति मानव-जाति की कोई बहुत बड़ी प्रगति नहीं है। वैज्ञानिक कभी भी कलाकार या स्वामी नहीं बननेगा और कभी भी उसकी भाँति मनुष्य का उत्थान नहीं करेगा। वह मुख दे सकता है। अन्ध सदा मुख दाँति है। विज्ञान ने बहुत बड़ा काम किया है उसे भीमा में से निकालकर अमीमा को दिखाकर, किन्तु कला ने भी यही किया था। यह युद्ध कष्ट है। इसी की बीज धारण ने अधिष्ठान के रूप में सहायियों पहले देना था क्योंकि मनुष्य प्रेम के रक्त पर जीवित रहता है। दावद मस्तिष्क के विज्ञान ने अमीमा को प्रेम नामक गुण दे दिया है, और इसी से अन्ध अन्ध हो रहा है। मनुष्य

के अतिरिक्त बाकी प्राणिजगत में संभोग में आनन्द तो है, किन्तु यह एक सार्व-
त्रिक क्रियामात्र है। उसका व्यक्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता। सारे सामाजिक
सम्बन्ध छोड़कर देखने पर भी पता चलता है कि मनुष्य जाति में स्त्री और
पुरुष ने केवल तन के आनन्द को ही सीमा नहीं माना। वेतना के आनन्द को
भी संभोग में रखा है और उसी को उसने प्रेम कहा है और धामद इसीसिमे
उसने अपनी सर्वोच्च कन्दर्पा परमात्मा को भी प्रेम के ही रूप में संततोयत्वा
देखा है। मनुष्य का पुराना देवता भय वा और बाह में उसका देवता बना
प्रम।

अमेरिका और अरब में क्रमशः कला का ह्रास हुआ है। एक और ह्रासशील
संस्कृति है पूजावादी, वृष्टी और शुद्ध संस्कृति है समाजवादी। दोनों के समाज
की मूल चेतना अर्थव्यवस्थाओं तक ही सीमित हो गई है। क्योंकि यह उपयो-
गितावादी है।

मनुष्य के विकास में योग का विकास मूलतः विचार का विकास है।
भाव (Emotion) मूलतः योगियों के अनुसार माया है और अज्ञान ही है।
यह योग का मध्यकालीन व्यक्तित्वादी दृष्टिकोण है। योग के कई रूप हैं।
ब्राह्मणवादी और अज्ञाह्मणवादी। सब धर्म से मुक्त होने की योग कहते थे
परन्तु अंत और बौद्धों ने केवल चित्तशुद्धि का निरोध ही योग था। जावन
की अनुसूतियों में किशोरा क्या जैसे और क्यों कर हमारे सिधे प्रच्छा है,
उसका निर्णय क्रमशः होता है। यह मनुष्य का मानवगत उसके संपूर्ण का
छोटा है क्योंकि यह प्रवृत्ति (Instinct) पर आधारित होकर भी विचार
(idea) से बनता है प्रवृत्ति अपने आप में पशुत्व है, और विचार अपने
आप में बाह्य है। अतः नहीं है, विचार से ग्रह का उत्पत्ति नहीं क्योंकि जिन्ही
विषय मात्र ही मनुष्य का चेतन नहीं उसका जब उसकी चिरिदा से सम्बन्ध
नहीं होता जब तब यह सदा ही अटकता रहता है।

विकास में धीरे धीरे जब कई बुद्धि एवम् ही जाती है तब एक धारा
बनती है और एकदम गिराई देती है, यह धाकस्मिक होता है। भौतिक
विज्ञान का विकास भी प्रकार ह्रस्त ही इन दो धाराधियों में बहुत बढ़ा
है। पहले की अस्तित्व धाराधियों में ऐसा नहीं हो क्या। इसी प्रकार
भौतिक-चेतन विज्ञान भी अचरमात्र ही विकास करेगा जब केवल भौतिक
विज्ञान से मनुष्य का काम ही नहीं चलाया। हो सकता है यामे जब कर
अब तक वा भौतिक-विज्ञान बहुत ही साधारण हो उपरति माना जाने क्योंकि

मनुष्य का जन्म क्षीण में पड़ता है जोमा और तब उसे सृष्टि की महानतम गरिमा का आभास होता है। जैसे जो बीज रहा है वह जगत् है। जगत् उस कहते हैं जो बन रहा है यानी परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन को हम 'समय' कहते हैं परन्तु समय अपने आप में कुछ भी नहीं है। जब वो वस्तुएँ मिलती हैं तब इन का पारस्परिक सम्बन्ध ही समय को जन्म देता है। यदि सूर्य वन्य तारा न रहें और मनुष्य धन्वेरी कोठरे में बन्द हो तो वह समय नहीं जान सकता। समय का यह जो ज्ञान हम भूतकाल वर्तमानकाल और भविष्यकाल के रूप में जानते हैं, हम पृथ्वी पर सूर्य से हमारे सम्बन्ध को प्रगट करता है। हम पृथ्वी पर रह कर सूर्य के एक चक्कर को एक वर्ष कहते हैं, परन्तु जो ग्रह सूर्य का चक्कर पूरे १८ वष में लगाता है उसका एक वर्ष भी हमारे १८ वर्ष का होता है। हमारी ६ ऋतु हैं। १८ वर्ष में चक्कर पूरा करने वाले ग्रह को कौन जाने कितनी ऋतु होती है। हम जो कुछ सोचते हैं, वह उसीकी सोचते हैं जो हमारे 'चरम' में जाता है। अतः हमारा ज्ञान सीमित है। यह जगत् बहुत बड़ा है। इसका आरम्भ कैसे हुआ यह हमें पता नहीं है पर शायद मनुष्य इसे जान ले। परन्तु रहस्य बहुत बड़ा है। कैसे है ? का उत्तर देने पर भी हम क्यों है ? का उत्तर नहीं दे सकते। इस बात का समझना अकूती होया।

यद्यपि हम पृथ्वी के बाहर के बारे में नहीं जानते कि न जाने कितनी सृष्टियाँ किन किन ग्रहों तारों पर हैं फिर भी यह पूरी तरह से नहीं कह सकते कि केवल पृथ्वी पर ही प्राणी है।

सब का मूल है भौतिक और उसी का रूप है शक्ति। समस्त जगत् चक्कर में एक ही वस्तु है उसी के अलग परमाणु जब अनेक संयोजन करते हैं तब लोह में तरह तरह के प्राणी दिखाई देने हैं। पृथ्वी पर ही उन के रूपाँ के वैविध्य की कमी नहीं है। नितिन जगत् में मूल है भौतिक और वही सब में है। वह ऊर्जा युक्त भौतिक (matter with energy) कहाँ में आया ? क्या आया ? यह कोई नहीं बता पाता। मार्क्सवादी कहते हैं कि इसे मत पूछा। इन सवाल का पूछने से घोषको का बल बढ़ता है, क्योंकि फिर घटनाएँ सगाई जाती हैं और बगमेल का सनातन बना दिया जाता है। अतः इस भौतिक का विरलपण करो कि यह है क्या ? 'क्या' को जानकारों से ही समस्या हल होयी क्योंकि जो है सो है वन यही सत्य है। और 'इमीलिये है' को जान लेना काली है।

परन्तु मैं इससे सहमत नहीं। यदि हम धमा नहीं जानत तो यह क्या

कहें कि इससे आगे कुछ हो ही नहीं सकता। यह कठमुस्तापन होना। फिर भी हम उस पर घटकन नहीं लगायेंगे। यही कहिये कि रहस्य प्रज्ञात है। 'मनुष्य निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ कर सत्य की जान लेता' यह मनुष्य का सत्य है, सीमित सत्य है।

पृथ्वी पर जीवन बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ है। पहले वह जंमम नहीं था। बहुत बाद में वह जंमम बना। तब इस में चेतना बढ़ी। यह चेतना भौतिक का ही पुष्पात्मक परिवर्तन थी। जंमम का विकास होते होते बहुत दिनों बाद इस पृथ्वी पर मनुष्य आया। मनुष्य के मस्तिष्क का अधिक विकास हुआ। उसके मस्तिष्क में एक नया मानवी संसार बसता है, जिसमें बिना संसार प्रतिबिम्बित होता है। यह भी चेतन का ही पुष्पात्मक परिवर्तन है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क दोनों भौतिक के पुष्पात्मक परिवर्तन हैं। आदमी उसकी दुल्लता को समझे या न समझे वह परिवर्तन इसकी अपेक्षा नहीं रखता। वह तो होता रहता है। आदमी का बच्चा अगर छो जाये और भेड़िया उसे पाल ले और बाद में फिर आदमियों में उसे ले आया जाये तथा उसे आदमियों की बोली और कार्य सिखाये जायें वह सीख लेता है। इसका अर्थ है कि पुष्पात्मक परिवर्तन हो चुकता है, पर्यावरण (Environment) के समाज में उसको आना नहीं आता।

मनुष्य के विकास के साथ चेतन का विकास बढ़ा है। संभवतः यह चेतन सभी प्रारम्भ हुआ जब जंमम जीवन प्रारम्भ हुआ।

मनुष्य के मरण पर यह चेतन मरता नहीं बाहर के भौतिक जगत् में रूप बदल कर कुछ समय जीवित रहता है। इसे आत्मा कह सकते हैं। परन्तु यह 'आत्मा' भौतिक का ही पुष्पात्मक परिवर्तन है। यह किसी पूर्ण (absolute) की तरह भौतिक से पुराना नहीं है, जिसने भौतिक के रूप में अपना को प्रयत्न कर रखा है, ऐसा होता तो यह कम विकास में इतने दिन बाद न आता। यह भी मानना पसत है कि 'ह्लात की ओर जाती सृष्टि' मनुष्य की चेतना के जन्म से मृत के कारण किसी महान् पूर्णता की ओर प्रसर हो रही है। यह 'आत्मा' परिवर्तनशील भौतिक का पुष्पात्मक परिवर्तन है मृत अवस्था रहता है और संभवतः फिर रूप बदल जाता है। हो सकता है यह आत्मा मानी शक्ति का चेतन स्वल्प मर्यस्थ बालक या बड़ बालक में प्रपता साधारण कभी-कभी करता है, हो सकता है कुछ समय बाद यह रूप

बदल जाता है। यह 'आत्मा' क्या है? यह आत्मा है चेतन का वह रूप जो मनुष्य देह में ग्रहण के रूप में विकसित होता है। यह वही सोचता है जो अपने वातावरण में सोच सकता है। मनुष्य शरीर से ग्रस्य होने पर यह कुछ कुछ पाप पुण्य के वही संस्कार आता है। जो मनुष्य की देह में प्राप्त करता है। ग्रह के उस संस्कार-स्मरण से छूटने पर यह भौतिक का परिवर्तन हीन गुणस्मक परिवर्तन संभवतः फिर किसी नये परिवर्तन को प्राप्त होता है। यह 'चेतन' सर्व समर्थ नहीं होता न सर्वज्ञ। सृष्टि का रहस्य वह भी नहीं जान सकता क्योंकि वह भौतिक का स्वामी नहीं। भौतिक का एक रूपमात्र है। माटी का ही एक और रूप है। चेतन का रूप विचार का रूप है और वह जब कभी मनुष्य के संपर्क में आता है, तब विचार के माध्यम से संपर्क स्थापित करता है विचार के लिये माया की आवश्यकता नहीं है वह काम चित्र-कल्पनाओं (Images) से हो सकता है।

मनुष्य को इस नये क्षेत्र की जो जानकारी प्राप्त करनी है। यह 'चेतन' की खोज होगी 'चेतन' पर काबू करके या उसे जानने की कोशिश करके। उसे योग विज्ञान से जाना जा सकता है। परंतु योग विज्ञान अपने मध्यकालीन विचारों और धारणाओं से ग्रस्त है। अतः योग को पहले सुद्ध करना आवश्यक है, और यह मनुष्य के लिये असंभव नहीं है।

इसीलिये सृष्टि का रहस्य बहुत बड़ा है। यदि एक के बाद एक करके प्रकृति की वस्तुओं के रूप को जान लिया जाये तब भी आवश्यक नहीं है कि उस रहस्य को मनुष्य जान हो लेता क्योंकि यह अभी ज्ञात नहीं है कि प्रकृति के रूपों के अज्ञान में रहस्य है या रहस्य रूपों के जानने के बाद भी बचा रह जायेगा। मनुष्यों में धीरे-धीरे विश्वास पसता रहा चलता रहा बसता रहा—पर ऐसे बसता कि पता न चला, परन्तु मनुष्य सृष्टि का कन्द्र बना रहा और हम ऐसे समय में जन्म है जब हम सृष्टि का केन्द्र नहीं रहे। क्लृप्ता भावी परिवर्तन है। पर हमारी सज्जता उनकी महानता से बड़ी है। हमारा अपने को नगण्य गिनना उनकी उस बल और शक्ति की गौरवानुभूति से बड़ा है। देखा हमारे पास नहीं आते परन्तु हमें सृष्टि बड़ी लगती है। हम चित्त छोटे हुए हैं, उसने ही हमारे धारणा बंद पड़े हैं। क्रयस समझी बुनियाँ बड़ती गईं परन्तु विश्वास दुपल-दुपल कर भी छोटे हुए न हुए, आत्मा न बटी। और हमारे विश्वास हिल तो छोटे हुए, परन्तु उनकी विस्तार व्यापक हुआ। हमारी आत्मा घटी ती चेतना ने प्रसार किया। पूर्वजों ने

सर्वक पासक सहायक को देखा देखा या न जाने किसने महान स्वप्नों को, किन्तु हमने उन सबको तिरोहित करके गल्प प्रकृति को देखा और महामत्तम सीढ़ी का अनुभव किया जिसका वर्णन नहीं कर सकते। सत्य जितना व्यापक होगा ममत्व की वैयक्तिक सद्गुता समाप्त होकर एक सर्वव्यापितरत जीवन का संसार होया।

सृष्टि हमारे पूर्वग्रहों के प्रति निरपेक्ष है। रामानुजाचार्य ने शार्ङ्गिक शंकराचार्य की बात को काटा था। शंकर ने लोक को माया कहा था उसे जड़ की संज्ञा दी थी। परन्तु शंकर की बात को रामानुज ने काटा था। कहा था—यह सब ब्रह्म के दृष्टिकोण में भ्रम ही ठीक हो परन्तु यह मामा हमारे लिये जड़ नहीं है। हमारे लिये तो यह सत्य है। इसे माया कह कर नीरस मत बनाओ, इसे जीसा कहो जीवन को सुख मिलेगा—सहिष्णुता बढ़ेगी। ध्यान हम स्तुलिक के सुख में प्रकृति पर मानव-विश्रव और सृष्टि की महामत्तम का जो रोमांच अनुभव करते हैं किण्ठ दुर्गों के मानव को अपनी और सृष्टि के प्रति कम रोमांच था? नहीं। कुभातर वे मनुष्य की यह विज्ञप्ति कौतुहल और रोमांच की अनुभूति एक ही रही है। धार्मिक मनुष्य ने स्वयं धाम बना कर वहीं सबकुछ रोमांच अनुभव किया होगा जो हम ध्यान स्तुलिक उड़ा कर कर रहे हैं। प्रत्येक बुद्ध का मनुष्य इसी प्रकार करता रहा है। और ध्याने के मनुष्य के लिये हमारा वह कौतुहल भी कोई महत्त्व नहीं रहेगा। कौतुहल तो उसका होता है जो समझ में नहीं आता। जिस मनुष्य समझ सता है, उसे ही ठीक समझता है। जब जब उसे यह पता चलता है कि उसके विस्वास से सत्य कहीं बड़ा है और उस महान सत्य के अनुकूल बनने के लिये उसके विस्वास का भी बड़ा होना पड़ना तो उसे सर्वत्र बध्द का अनुभव होता है। पर यह सब मानव सत्य की कथा है और मानव इस छोटी सी गृष्ठा का प्राणी है। हमारी मर्यादा किन्तु हमारे लिये सामबाधक है। यह सारी सृष्टि भले ही मानव के लिये न हो परन्तु अपना लिये तो हम अपना ही समाज देखना होगा क्योंकि अन्तर्गतत्वा हमारा ज्ञान विज्ञान हमारी कला शौन्दर्य भावना और साहित्य यह सब हम मानवों के लिये ही है। परन्तु प्राचीन मानव परमात्मा को अपने रूप में देखता था उससे डरता भी था स्नेह भी करता था, और यह भी समझता था कि परमात्मा को उस में किमप विचलसी है।

विज्ञान ने यह स्वप्न तोड़ दिया, किन्तु नया विस्वास कह रहा है—वह जो

बिराट ठेरे मन में विचित्र है वह ठेरे मस्तिष्क के बाह पीठ पर उतर आया है ।
 ओ धरमुल मानव । तू को सजु है, तूने किसने बिराट को देखा है । तू उससे
 करता है उसकी महिमा देख कर ? देख विकास ने तुझे स्नेह दिया है । मर
 समझ कि उसकी तुझ में विलयसो नहीं है । उसने तुझे कितना सहिष्णु बनाया
 है । तू पूछी की तो सर्वव्यापक कृति है ॥ । सत्य को जानने का माध्यम बिकर
 है और बुद्धि बिचनी बढ़ती है उतना ही हृदय का तात्पर्य बढ़ता है ।

दर्शन में मनुष्य का सारा सामाजिक चिंतन समाया हुआ है, प्राचीन
 काल के मनुष्य में धर्म और दर्शन को इसीलिये भ्रमण चलन कहा था ।
 धर्म का धर्म या जीवन जिताने का तरीका जिसमें नैतिकता, दर्शन और
 मनुष्य के समस्त ज्ञान का सारा व्यावहारिक रूप से उतर आया था । इसन
 का धर्म था—सत्य का दर्शन धर्मसिद्ध को पहचानना । यह भेद साध्य में
 स्पष्ट रहा जो यूरोप में बाब में चुला । किन्तु बहुत कास पहले भारत में दर्शन
 को केवल विचारको और विद्वानों के विचार के रूप का विषय ही नहीं माना
 गया ।

विज्ञान के विकास ने मनुष्य के सामने नया रूप खोला । जो तो मनुष्य
 का विज्ञान तब ही से प्रारंभ हो गया था जब उसने घास खाकर कर उसे
 खाना सीख लिया था किन्तु गत शताब्दी में इस विज्ञान ने सहसा इतनी
 ध्वज उन्नति कर ली कि उसने जीवन के दर्शन पर ही प्रभाव डाला । इति
 हास बीरे बीरे धीरे धीरे बढ़ता रहा । अचानक कुछ ऐसे अन्वेषण हुए कि
 होखे ही चल गये । जैसे किसी बाँध में छोटे से सूराल में पानी तो बहुत दिन
 से रिस रहा था, मजिन एक दिन भीगे भीगे जो बहो की मिट्टी कच्ची
 गया पड़ गई कि बाँध ही टूट गया और पानी धरति के सामे कूट निकला ।
 मनुष्य पहले सगा बनाने का यत्न करता था पारस पत्थर इकट्ठा था, पर
 अब उसने धातु के बाब परमाणु भी ताड़ लिया और चन्द्रमा को देखता
 समझल जाता मनुष्य धीरे धीरे महारुग्ध को यात्रा के लिए उठने को बटिबउ
 हा गया और सृष्टि की धातु में मनुष्य का यह ज्ञान बढ़ता है ? यथादा स
 यथादा दम हजार साल का भल ही उसने पीछे भी जाता जाये तो एक डेढ़
 लाख के अनुभव प्रकृतिमूलक चेतना भी उसमें मिल सके है । सरोजन ने इस
 विकास को अपने मनन का विषय बनाया है ।

आज से दो हज़ार हजार साल पहले जब मनुष्य ज्योतिष के बारे में जानता
 था और साम ही अपने को बहुत प्राचीन या समझता था । सब तो यह है कि

विश्व-इतिहास के बारे में जो कुछ पता चला है उसके हिसाब से मनुष्य के जीवन में कई बार मोड़ आये हैं।

जब बाइबल प्रकाश प्रारम्भ हुई थी तब पहला मोड़ आया। इसका मोड़ आया जिस में जब पिरैमिड बनीं ईसा से करीब चार हजार वर्ष पूर्व। तीसरा मोड़ आया—जब ईसा से करीब २ या १५ हजार वर्ष पहले महाभारत युद्ध समाप्त हुआ और मनुष्य छोटे दायरों से बढ़ कर आगे की ओर चला। उसके बाद आया मोड़ २५०० से १००० वर्ष पूर्व—युद्ध-महावीर से ईसा तक। मनुष्य ने मानवशास्त्र की प्रकाशता से स्थापित किया। इसके बाद आया मोड़ १००० ई० में जब यूरोप में गई बेतना पहुँची और तब आया नया मोड़ विकसित सभ्यता में और इस नये मोड़ ने मनुष्य को यह अभिमान दिला कि आज तक मनुष्य बर्बर या और सम्यक्ता जब प्रारम्भ हुई थी। इस वैज्ञानिक वास्तव के तबतक का प्रारम्भकर्ता जर्मनी का महती बार्थनिक कार्लमार्क्स था। यह प्रसंगीय विषय है कि उसने काफ़ी सीमा तक आर्थिक और सामाजिक बर्तानों को प्रकट किया किन्तु बहुत ही ईसाई और जर्मन चिंतन में एक संशयपरक भावना रहा है, जो उसमें भी बहूँ उतर आया। यतः उसकी इस सकीर्णता का उसके अनुयायियों में प्रचलन अधिक हुआ। किन्तु विज्ञान उस समय बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में था। विज्ञान का प्रारम्भ मनुष्य की आवश्यकताओं से आया और वही अब तक होता रहा है।

प्राचीन लोगो ने अपने अनुभवों के आधार पर सृष्टि की व्याख्या की थी जैसे आज हम सोच अपने अनुभवों के आधार पर करते हैं।

संसार कैसे बना क्यों बना इस पर पहला चिंतन हमें वेद में मिलता है। यह भारत में जब एक पुरानी बात हो गई, तब ईसा ५०० वर्ष पूर्व में तबतक पिरैमिड के बेसीज में हमें यह विज्ञान मिलती है। विज्ञान के विकास ने ज्ञान दिया है। मनुष्य ने विज्ञान की उससे मिलकर बनाया है और व्याख्या मनुष्य का विज्ञान बढ़ा है उसका सृष्टि के प्रति दृष्टिकोण बढ़ा होता गया है।

यह सृष्टि बढ़ती जा रही है। ऐडिन्ग्टन के कथनानुसार जैसे किसी गुम्बारे के ऊपर छोटे-छोटे शाय हों जैसे दूध पर तारे हैं और यह गुम्बारा फूटता जा रहा है और यह तारे एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक अभी तक इस सत्य को समझ नहीं सके हैं और वर्तमान विज्ञान की सीमा में रहते हुए अभी कोई ऐसा साधन भी विचार नहीं देता जिससे यह बातों की जाये कि

इस रहस्य का उद्घाटन हो सकेगा। यह भी एक मन है कि सृष्टि पहले सम थी धन प्रसन्न होती जा रही है।

सायब कई करोड़ वर्ष पूर्व यह सृष्टि का भौतिक पदार्थ धान की तुलना में अधिक सम प्रवृत्ति में था। फिर वह बढ़ने लगा और धन संभवतः उसका आस अपनी मूल प्रवृत्ति से बस गुना अधिक बढ़ चुका है। तारे ठीकी से दूर हटते जा रहे हैं।

वे किपर हटते जा रहे हैं और क्यों? यदि हमारे साधन अधिक होते तो सम्भवतः हमका ज्ञान हो पाता। परन्तु इस दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि भविष्य में यह प्रसन्नता बढ़ती जायेगी तो क्या यह फैलाव अनन्त काल तक होता क्या जायेगा? फिर प्रश्न उठता है किसलिए?

परन्तु यह मनुष्य का प्रश्न है। विस्तार या संकोच का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य इसके रहस्य को जान लेना चाहता है। मनुष्य एक संघर्षात्मक है। वह हम सबकी व्यापकता को कैसे जान सकेगा यह वैज्ञानिकों के सामने एक समस्या है।

मनुष्यों में इतना भौतिक पदार्थ है कि सायब उनसे जायेगा तारे बन सकते हैं। हमारे सूर्य जैसे और सूर्य हमारी धूम्रों से बस लाख गुना बड़ा है ऐसे २० लाख मनुष्य तो दिखाई देते हैं पर धीरे धीरे हाने।

कितने होते? यह हम नहीं बता सकते। किन्तु अनन्त दूरियों तक वे फैले हुए हैं। ऐसे जितने मानव वे कभी सुना नहीं, जो इस बात से विस्मय निरपेक्ष हैं कि मानव उन्हें जानता भी है या नहीं?

वह सब क्या किसी योजना का परिणाम है या यों ही चल रहा है? हमारी प्रकृति इसे बकक सकती है?

क्या जीवन आकास्मिक निरर्थक है? यदि अग्न्य ग्रहों पर भी जीवन है तो क्या वहाँ हमारे स्तर की ही बुद्धिमत्ता होगी? योजना का रूप क्या होगा?

योजना के कितने रूप हैं? हमारी विवशता तो यह है कि हम जब जीवन की बात करते हैं तो हमारे दिमाग में बड़ी बाधा पड़ती है जो हम जानते हैं। उनसे अधिक हम साध भी नहीं सकते। सायब संभव में जीवन हो और यह जीवन हमारी वस्तुता में बड़ी है जिसे हम जानते हैं। हम इस जीवन से मिलने-जुलने रूप की ही वस्तुता कर पाते हैं।

यदि योंही कि लपटा है हमारा यह क्या है, तो क्या अग्न्य बुद्धिमत्ता

कहीं अधिक होगी। अन्य ग्रहों में जो प्राणी होंगे वे पुराने पड़ चुके होंगे। उनमें हमारी तुलना में बिचार करने की कहीं अधिक शक्ति होगी। तो क्या उनमें भी संस्कृति का महत्व होगा? हो सकता है। और जहाँ में अल्पकाल कुछ मिला जीवन हो किन्तु और भी लो सारे हैं जैसे हमारा सूर्य है। कौन जाने उन सूर्यों के अपने-अपने परिवार न होंगे और उनमें भी घरती जैसे कई होंगे जिन पर प्राणी-जनत होंगे।

इस बिचट आकाश यानी शून्य में फिरने वाले इन धसंख्य तारों से ज्योति निकलती है, भरती नहीं। ज्योति का विकिरण होता है। किन्तु इस प्रकार ऊर्जा (Energy) शून्य (space) में बिखरती चली जा रही है। बीरे-बीरे शक्ति का खय होना प्रकट करता है कि एक दिन वह समाप्त भी हो जायेगी।

तो क्या सब कुछ बायेंवे यह तारे? फिर क्या होगा? सब तारे मर जायेंगे। और वह मृत तारे फिर भी विकास में बने रहेंगे? क्यों? किसलिए? अब तक। हमका धर्म है कि हमारी सृष्टि संगठन है असंगठन की ओर जा रही है। बिगुल जलित होना प्रकट करता है कि पहले वह बहुत सुव्यवस्थित थी। तो क्या हम सृष्टि की संध्या में हुए हैं? यदि समय-अव्यवस्थित कमी अधिक सम-व्यवस्थित थी तो यह प्रकट अपने आप वैसा होता है। तो क्या अभी इसका प्रारंभ हुआ था?

पेडिण्टन और बीन्स के मतानुसार सृष्टि का धर्म्य वास्तव में मन से संबंधित है—वह धार्मिक है, मानसिक है—उसका भौतिक तो उसका एक रूप है। परन्तु प्रकट कही उठता है कि जिसे हमने धर्म्यात्म समझा है, वह वास्तव में क्या है? मन संबंधी। फिर यह मन क्या विकास-क्रम में नहीं गया। कुछ के मत से यह सही रहना है, परन्तु ऊर्जा के रूप में सर्वत्र नहीं स्थूल रूप में भौतिक उत्पन्न अधिक व्यापक है। यह समस्त ज्ञान मानव मन अनुभूति है। मानव विकास में सीमित है। अतः मानव का ज्ञान सीमित है। किन्तु मानव के मन में—अज्ञान में दिग्दर्शन को पार कर ज्ञान की भी है। मानव उसके द्वारा विकास जान सकता है। अनूप्य साधन है। न साधन नहीं है। बार आयाया में मानव सीमित है। मन सीमित नहीं है। नष्ट स्थूल है। मन-स्थूल का बिद्युत प्रवाह पैदा है। मन—स्थूल वा ही एक ग्राह्य परिवर्तन है।

विशेष अवस्था में यह मन विकास की बाधा को पार कर सकता है। सत्य मानव के सिधे धर्म्य है। किन्तु मन नति के परे भी देख सकता

है। हम विकास से परे सम्पूर्ण को देख सकता है। मानव का मन हम जगह तक उठ सकता है, जहाँ परिवर्तन और समय की लड़ना वा व्यवधान नहीं है। यानी मन-यानी चेतन के रूप में मानव में वह सामर्थ्य है कि वह धर्म होकर भी प्रकृति के संपूर्ण से अपना तात्कालिक स्थापित कर सकता है।

स्नेह और नियंत्रण दोनों ही हमारे जगत में हैं। सबकुछ ही चुका है, ही रहा है और होगा। यह मेव—यह कार्य कारण श्रुतता का क्रम हम सब देख पाते हैं जब हम उसमें से गुजरते हैं। वस्तुतः यह संपूर्ण है। हमें मेव सगता है, क्योंकि हम इसके भीतर हैं। गणित भी यही कहता है। परंपरा में दोनों यही कहते हैं। यह जो बार धायाम हैं, जिनके जरिये वे मनुष्य सृष्टि को देख रहा है, वे मनुष्य के बचन हैं। सृष्टि अपनी संपूर्णता में न जाने कितना बड़ा रहस्य है।

एक मथानुसार सबकुछ पहले में नियत है। यह मारा बिराट कार्य व्यापार अपने एक नियमन से चल रहा है। वह नियम किसने बनाया कौन साध किया या कहाँ से आया और क्यों बना—यह पता नहीं है। वैज्ञानिकों ने देखा है कि वे एलैक्ट्रॉन-समूह की गतिविधि का रूप बता सकते हैं। किन्तु वे एक एलैक्ट्रॉन की गति को नहीं बता सकते कि यह क्या करना या कैसे चलेगा। यही हमारा हास है। हम जो इस प्रकार स्नेह के रूप प्रगट कर रहे हैं, सकते हैं, सम्मत्ताएँ निर्मित करते हैं, यह सब इस बिराट सृष्टि के नियमित कार्य रूप में इतनी ही स्नेह है, जितनी कि सापेक्ष रूप से नियम वह एलैक्ट्रॉन की अपने एकाकी रूप में। हमारा यह धार कोसाहस और हसबस वस्तुतः इस बिराट कार्य व्यापार में इतनी छोटी हसबस है कि सायब इसको स्नेह कहना भी हमारी सीमित बुद्धि का ही सहकार है।

इन्द्रात्मक भौतिकवादी जो मार्क्स को पैम्बर मानते हैं—उसके लिए 'दृष्टा' शब्द का प्रयोग तो निस्संकोच होकर किया ही जाने लगा है—प्रत्यक्ष कहेंगे कि मैं मनुष्य के बारे में ऐसे बातें कर रहा हूँ जैसे कोट पतंगों के बारे में की जाती है। और मैं मनुष्य के गौरवमय पक्ष को न देखकर उल्टे घमास को उठा रहा हूँ और इस प्रकार मैं बर्ग-हीन समाज के निर्माण में मजदूर बम का सहित कर रहा हूँ। इसका उत्तर है—यहाँ विज्ञान का विकास मनुष्य के लिये बुद्धि की अपरिमित गति को रोक्ता है, वही भौतिकवादी है, बुद्धि का विकास नहीं।

प्रत्यक्षमान मात्र तक विस्तार रहा है और बुद्धिमान सर्वत्र उगने साम

उठाते रहे हैं। बुद्धिमान का अहंकार अधिक बढ़ा होता है। कार्स मार्क्स ने इस अहंकार को नहीं देखा था। उसने सोचा था कि संपत्ति के कारण अहं है, वह वह नहीं समझा कि अहं का एक रूप ही संपत्ति है। बुद्धि और समाज-व्यवस्था दोनों का साथ तक संतुलन सबैत जसा हो सो बात नहीं। मानव समाज में विभिन्न स्तरों पर बुद्धि मिलती है। संपत्ति जब नहीं भी तब भी अहंकार का पर कम का। वह धीरे-धीरे विकसित हुआ है। अहं का विकास—बिबीबिपा और धिरेसा का विकास है। उसे निरंतर विकसित और व्यापक बनाने में ही लोक का कल्याण है। अधिकार की तुलना उसी का रूप है और वह समाजवादी व्यवस्था में फिर उमर आई है।

मेधावी का जन्म समाज की व्यवस्था पर निर्भर नहीं करता। वह घने ही परिस्थितियों से प्रभावित हो किन्तु वस्तुतः वह व्यक्तिपरक विकास होता है।

विज्ञान में तो और भी आकस्मिक संयोग होने का अवसर होता है।

परमाणु बम आकस्मिक अन्वेषण का और हुआ पुंजीवादी देश में। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि साम्यवादी देश की समाज-व्यवस्था में ही वह हो सका हो यह कोई निश्चित बात नहीं हो सकती।

समाज में सबको सुविधा अवश्य मिलनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास अधिकारिक कर सके किन्तु इसका यह अर्थ कभी भी भ्रमाना ठीक न होगा कि सुविधा मिलने से सब ही महामेधावी हो उठेंगे। सहस्रबाहु छठाकर मनुष्य सत्य खोज रहा है और निरंतर खोजता जाता जा रहा है। पीढ़ियों से उसने ज्ञान एकत्र किया है और जिस प्रकार प्रकृति ने उसे स्मरस्य सकि है, उसी के अनुसरण उसने उस ज्ञान को बीबित रखा है।

विदेशों में यद्यपि राजनीतिज्ञों का ही शासन चलता है फिर भी वहाँ मेधावियों का सम्मान तो है। हमारे देश में अभी ऐसा नहीं है। किसी समय का अवश्य। परन्तु अब ऐसा नहीं है। अतः मनुष्य की क्षमता—बौद्धिक क्षमता से दूर करने के लिये आवश्यक है कि प्रकृति के विरुद्ध रूप से वह परिचित हो। संस्कारों में जो पुराने बंधन मने क्यों का देखने से रोके हैं, वे हमें काटने ही होंगे।

अहं का विकास कुछ नहीं है। वह तो क्रम में हुआ है। मनुष्य की जीवित रहने की तात्पर्य अवश्य ही अन्य प्राणियों की तुलना में बनचली है, वही तो

यह हमें सच कहें तो सब प्राणियों पर लागू है। उस ग्रह का व्यक्ति हम दूसरों के लिए यदि घातक है, तो उसे व्यापक बनाना मनुष्य के लिये बहुत आवश्यक है, क्योंकि इसमें वह अपनी योगिता को दीर्घ काल तक सुरक्षित कर सकता है।

बर्सेन और मैटिक्ला ने कहा है कि सारे सत्त्वों का माध्यम असल में मनुष्य है।

तभी बर्डीगास ने कहा है कि सबसे ऊपर सत्य मानव है, उसमें हमारे कोई नहीं।

इसका कारण है हमारी सीमित बुद्धि किन्तु यह सीमा छोड़ दी जाये तो क्या क्या जाये ? इसीलिये पुराने समय में मनीषियों ने कहा था कि गार्हस्थ्य प्रारम्भ में आवश्यक रहना चाहिये।

सब तो यह है कि मनुष्य के पास बस कोई काम नहीं है। उसके सब काम इस पृथ्वी की सतह पर जीवित बने रहने के संबंध हैं।

विज्ञान का साथ सत्य हमारा सीमित सत्य है, यतः वह पूर्ण नहीं माना जा सकता।

सामाजिक अतनुक्ति (Social assimilation)

जब एक से अधिक समाज मिलते हैं तब उनका परस्पर आदान प्रदान प्रारम्भ हो जाता है। आज भारत और पश्चिम का संपर्क बढ़ता जा रहा है और भारत पर लगे-लगे प्रभाव पड़ रहे हैं। भारत की भी अपनी एक वैयक्तिकता है। उसके कारण हमारे यहाँ अनेक प्रकार के इन्ड समाज में बढ़े हो रहे हैं।

पश्चिम ने सर्वस्व (मीन-जीवन) के सम्बन्ध में सभी नैतिक मर्यादाओं का प्रचसन किया है। मानवशास्त्रियों ने पुराने विचारों को प्रकट कर दिया है। इसलिये आवश्यक है कि हम भारतीय दृष्टिकोण की शक्ति और निर्बलता का परीक्षण करें, ताकि यह गतिरोध दूर हो सके। भारतीय सम्प्रदायों में कुछ ऐसे हैं जिन्होंने मीन-सम्बन्ध की दो अस्थितियों को पकड़ा है। कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे हैं जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य पर बल देकर पूरी तरह स्त्री का विरस्वार किया है। उन्होंने स्त्री को माया और सभी दुःखों का कारण माना है। इसलिये काय-चित्ति से चित्त को बचा कर उसे निर्विकार रूप से पुण्य सिद्ध या ब्रह्म में लीन करने के लिये स्त्री उचित बढोर तपपूर्ण जीवन का ही श्रेष्ठ माना है। इसके विपरीत ही दूसरी धारा है जिसमें स्त्री को यहाँ तक स्वीकार किया है कि उसकी पुण्य नियम को पुण्य मान कर प्रातःनाम उसका दर्शन करना श्रेष्ठ बताया गया। सम्प्रसाधना आदि में तान्त्रिकों, कौलगायियों आदि ने सम्भोग में भी शक्ति दे दी है। स्त्री को साधना के लिये आवश्यक कह कर उन्होंने

स्वीकार कर लिया है और उसकी योग्यता, अर्थात् प्रज्ञा धारि के रूप में दिये हैं। इन दोनों विपरीत चाराओं के बीच बीचवपन बिन्दु है जिसने अतिधार्मिक-मूल्य करके महत्त्वपूर्ण की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित किया है। यदि सामाजिक क्षेत्र में भी बीचवपन बिन्दु उत्पन्न है तो उसने अर्थ को ही सौष्ठव साधना वह कर स्वीकार किया है। योच की परम्परा में निष्काम कर्मयोग को स्वीकार किया है। मैं इन्हीं तीन चाराओं के बीच बीचवपन का अध्ययन प्रारम्भ करूँगा।

बौद्ध धर्म में लोको को कामतृष्णा के साथ जोड़ कर उसे दुःख का हेतु माना गया है। यही कारण है कि मौर्य बुद्ध ने अपनी पत्नी यशोधरा का परित्याग किया और बुद्धत्व प्राप्त कर कर लेने के पश्चात् भी उसको पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया। बौद्ध सामाजिक भाषा काम को छोड़कर निर्वाण प्राप्त करने की कल्पना करता है। सामाजिक कार्य व्यापार को वह दुःख का हेतु कहता है, सभी भिक्षु जीवन ही उसके लिये आदर्श बन कर उठा हो पाता है, जिसके द्वारा वह निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

मौर्यबुद्ध ने चार मार्ग सत्तों का प्रतिपादन किया है—(१) दुःख सत्य है (२) दुःख का हेतु सत्य है (३) दुःख का विरोध सत्य है (४) दुःख निरोध मार्ग सत्य है।

इनमें दुःख का हेतु क्या है ?

तृष्णा—काम-मोह की तृष्णा जब की तृष्णा विषय की तृष्णा। इन्द्रियों के जिसने प्रिय विषय या काम हैं, उन विषयों के साथ संपर्क, समरस्यमान तृष्णा को पैदा करता है।^१

मज्झिम निकाय में इसी सम्बन्ध में लिखा है—

काम के लिये ही राजा राजाओं से लड़ते हैं, धर्मिक धर्मियों से ब्राह्मण ब्राह्मणों से दुर्योधि धर्मार्थ वीर्य युद्धनि में माता पुत्र से पुत्र माता से, पिता पुत्र से पुत्र पिता से भाई भाई से बहिन भाई से, भाई बहिन से, मित्र मित्र से लड़ते हैं। वे धायन में कसतु बिग्रह बिबाद करते और एक दूसरे पर शत्रु से दण्ड से और धरम से धातुमल्ल करत हैं। वे इमसे घर भी जाने हैं और गरी भी भरते हैं तो मरण समान दुःख को प्राप्त होते हैं।

यह हमके कथनात् प्रत्यक्ष प्रामाण्य है कि किन्तु तरह दुःख को निरा कर

निर्बाध प्राप्त किया जाय। उसके लिये महारमा कुछ ने मार्ग निर्दिष्ट किया है। उसी तृष्णा के परित्याग से ही दुःख दूर हो सकता है। प्रिय से प्रिय विषय के प्रति भी जब तृष्णा नहीं रहती तभी दुःख और तृष्णा का निरोध होया है।

आये जसकर जब कुछ ने कुछ विनाशक मार्ग का प्रतिपादन किया है तो हमोंने पहले सम्यग दृष्टि को रखा है। सम्यग दृष्टि क्या है ?

कायिक बाह्यिक मानसिक भले-बुरे कर्मों के ठीक ठीक ज्ञान को ही सम्यग दृष्टि कहते हैं। भले बुरे कर्मों को इस प्रकार विनाश गया है।

	बुरे कर्म	भले कर्म
कायिक	१ हिंसा	अ—हिंसा
	२ चोरी	अ—चोरी
	३ यौन-व्यभिचार	अ—व्यभिचार
	४ मिथ्या वापण	अ—मिथ्यावापण
बाह्यिक	५ दुःखी	अ—दुःखी
	६ कटु वापण	अ—कटु वापण
	७ बकवास	अ—बकवास
मानसिक	८ लोभ	अ—लोभ
	९ प्रतिहिंसा	अ—प्रतिहिंसा
	१० सूठी चारण	अ—सूठी चारण

यौन-व्यभिचार को कुछ ने बुरा कर्म बताया है और इसके साथ ही काम को कुछ का हेतु स्वीकार किया है और काम तृष्णा के परित्याग में ही दुःख का विनाश माना है। काम को ही सारी विषमता की जड़ मान कर उस पर पूर्णतः विषय वा भेदा ही दुःख का निरोध है। यही कुछ का दार्शनिक पक्ष है। इसमें स्त्री निर्दिष्ट कर्म से ही वर्णन है। यही तो कामवासना को चर्चित करती है। यही तो पुरुष के चारों ओर तृष्णा का आवरण जमाती है। उसी के लिये ही तो भाई भाई परस्पर लड़ते हैं। उसी के लिये तो दो व्यक्तियों के हृदय में ईर्ष्या और विर्षय पैदा होता है। कंचन और कामिनी ही तो इस

संसार में सारे कुपड़ों की जड़ है। बुद्ध ने मनु को यही उपदेश दिया है कि वह इसका परित्याग करके चित्त की एकाग्र करे। चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। निष्ठ के लिये यह परत्यागवशक है सभी बुद्ध ने कहा है।

मित्रों ! यह ब्रह्मचर्य न काम उत्कार के लिये न प्रसंसा के लिये न स्त्री की प्राप्ति के लिये न समाधि प्राप्ति के लिये न ज्ञान के लिये है। जो घट्ट चित्त की मुक्ति है, उसी के लिये है, यह ब्रह्मचर्य है। यही सार है। यही ब्रह्मका संत है।^१

बुद्ध ने ब्रह्मचर्य पर अधिक जोर दिया है और इसके साथ इन्द्रियों पर पूर्ण संयम प्राप्त करके चित्त की एकाग्रता को ही प्रत्येक मित्र, श्री साधना बताया है। स्वाभाविक है कि इस साधना में स्त्री को कोई स्थान नहीं मिला। यही कारण था कि पहले पहल जब संघ की स्थापना हुई थी तो छत्रि स्त्रियों का प्रवेश बहिष्कृत कर दिया गया था। कोई स्त्री मिलुणी होकर निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकती थी। बुद्ध ने स्त्री को इस योग्य ही नहीं समझा था। काम-वासना के साथ ही मूल रूप से उसके जीवन को मिलाकर बुद्ध ने स्त्री के प्रति बड़ी हीनत्वपूर्ण दृष्टिकोण रखा जैसा कि कई घातकालों ने उसके प्रति रखा है। बुद्ध का दृष्टिकोण एक कुप्य का दृष्टिकोण था। वे केवल पुरुषों के लिये ही निर्वाण की व्यवस्था कर पाये थे। स्त्री को तो मायाजाल तन्मयकर उसका शिरस्कार करना ही चित्त की एकाग्रता के लिये आवश्यक समझा सभी ने पहले बघोषण को छोटी छोड़कर इस ब्रह्मचर्यता को लेकर घर से राख को निकले थे कि वे सारा मायाजाल छोड़कर विराट् तत्त्व की खोज में आ रहे थे। यही दृष्टिकोण स्त्री के प्रति उस समय भी रहा जबकि वे बुद्धत्व प्राप्त करके सीट धाये थे और उन्होंने घईबार में भरकर कहा था कि मैं कोई हुई अपनी प्रजापति को जमाने को आया हूँ। मैं लाख में धर्मचक्र प्रवर्तन करने के लिये आया हूँ। इसका सबकुछ हावा धर करके भी उन्होंने स्त्री को पुरुष से हीन समझा। संघ स्थापित हो जाने के बरबात यह प्रजापति बलिया के प्राण में उन्होंने सबसे एक स्त्रियों का संघ बनाने की अनुमति दे दी थी लेकिन इससे भी उसके मूल दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया था। मुख्य और परिवार के प्रति बुद्ध ने उदा बरणा का दृष्टि

देखते थे वहाँ सिद्ध स्त्री के बिना पुरुष की पूर्णता में सन्देह करने लगे और उसने पुरुषत्व को तभी पूर्ण माना जब उसमें स्त्री की पूर्ण स्वीकृति हो। बाह्य और अन्तर लौकिक और पारलौकिक के अनुमन का एक नवीन साधारण बन पड़ा जिसमें रतिबन्ध ध्यान्व को ही बहोदर बहोदर ध्यान्व माना गया। योग कैवल्य का साधन बन गया और इस तरह सिद्ध ने बुद्ध के समरूप ही एक मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें न तो पूरी तरह निषेध भोग का परिवर्णन करते ब्रह्मचर्य्य पूर्ण जीवन बिठाने को श्रेष्ठ माना गया है और न केवल दार्शनिक ध्यान्व के लिये ही स्त्री के साथ रति-श्रीका को लिया गया। रति श्रीका तो मुक्ति के लिये साधन-मात्र थी। वह तो ब्रह्मध्यान्व के प्रतीक स्वरूप थी।

इस तरह सिद्ध मत में स्त्री पुरुष की साधना के लिये साधन मात्र बन गई। सिद्ध ने इसी रति-श्रीका के द्वारा उसकी मुक्ति मानी है। बौद्ध शिक्षा के समयित जीवन की प्रतिज्ञिया पुरुष का उन्मूलन वासनापा की वृत्ति में हुई और माने बनकर बन्धन के रूप में तो कामवासना संबंधी योषाचार का राष्ट्रीय प्रकार हुआ। धूम्य के स्वान पर बन्धन के स्वापना हुई। वही बोध-चित् कहलाया। महायान मत में धूम्यता और कसुता को ही बोधपित्त करते हैं। बाद में बनकर इसी धूम्यता को प्रज्ञा और करणा में उपाय के रूप में महायान मत में स्वीकार किया। प्रज्ञा स्त्री की और उपाय पुरुष का। दोनों के सम्मिलन से ही ज्ञान आश्रित होता है। इसी प्रज्ञा और उपाय के मिलन से बोधिपित्त उत्पन्न होता है। इस बोधिपित्त प्रवर्ति महापुरुष की प्राप्ति के लिये ही प्रतीक रूप में स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध बना। यह यौनिक क्रिया के रूप में दार्शनिक साधारण पर स्वीकृत कर लिया गया।

यहो दार्शनिक और यौनिक पदा या प्रमुख बनकर सामने आया था कालान्तर में रति श्रीका के ध्यान्व के साथ एक गया और फिर तो भुभी गूट मिल गई। स्त्री और पुरुष की उन्मूलन वासनाएँ नष्ट हो गईं करन लगी। स्त्री की नन्व प्रतिष्ठा पसौकिक ध्यान्व प्रवाह करने लगी और बन्धनी सिद्ध बिना किसी प्रकार के सामाजिक विप्लवाचार की परवाह किए सीधे धर्मों में ही रति-श्रीका का वर्णन करने लगा। मुगलज क्रिया में सिद्ध वर्णन करता है स्त्री प्रवर्ति मुद्रा की धारिण पाद्य में भर मने के परभाव पुरुष उनके प्रवर्ति बन्धन के प्रवर्णन में प्रवेश करता है। जि-

कोण रखा। मिश्र को वे पारिवारिक व्यक्ति से थोड़ा गम्भीर थे। पारिवारिक व्यक्ति को वे मयाबास में बसा हुआ देखते थे इसलिए उसके जीवन की हीन समझकर उसके प्रति करुणा का भाव रखते थे। परिवार में धर्म धर्म काम और मोक्ष का सामन्तव्य अपने जीवन में स्थापित करने वाली नारी के प्रति भी बुद्ध का वही दृष्टिकोण था जो एक साधारण पुरुष के प्रति था। इस दृष्टि से देखने पर हम यही मासूम होता हैं कि बुद्ध न नारी को समझने की चेष्टा नहीं की। जिस तरह मछोवर का छोड़कर गये थे उसी तरह नारी के प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण उन्होंने अपना लिया था। उन्होंने परिवार के सत्य को नहीं पहचाना और उसमें नारी की महत्ता का ठाँव कभी अनुभव हो नहीं सका। यही कारण है कि बुद्ध का धर्म एकाकी होकर रह गया। मिश्रों के साथ भिक्षुणियों का भी संबंध बना लेकिन मूल दृष्टिकोण में तो परिवर्तन नहीं आया। सभी तो बाह्य में बख्शपाव के रूप में इस वैराग्य और ब्रह्मचर्य की व्यष्टता प्रतिपादित करने वाले धर्म का बोर पतन प्रारम्भ हो गया। मठों में भी कुसा व्यवहार फैल गया। स्त्री की योगिता की पुजा तक होने लगी।

बौद्ध धर्म के बारे में केवल इतना ही कहेंगे। धर्म में इसके परिवर्तन रूप बख्शपाव की भी झोकी बिना है। जिस उपादय को लेकर बुद्ध चले थे और जिस ब्रह्मकार के साथ उन्होंने कहा था कि मैं धर्मचक्र का प्रवर्तक करने के लिए निकलने आया हूँ कि उस तरह उसका पतन हुआ। ब्रह्मचर्य की कठोर स्थापना तत्काल मन्द सिद्धि के रूप में बतल गई। काम के विरोध के स्थान पर काम का सिद्धि के लिये साधन माना गया। स्त्री न प्रमुख स्थान पर लिया।

हीनयान के पश्चात् महायान सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ था। साथ ही बौद्धों में तत्काल मन्द चलने लगे। पूर्यबाह का प्रवर्तक नागार्जुन ही तात्त्विक था। धर्म में भी महायान में तत्काल मन्द को बुझाया। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति को स्थापित किया गया और उसके साथ ही बुद्धों की प्रति छोड़ा चल पड़ी। सम्मोग में जो अनुपम ध्यानस्थ मिसता था उसी में परावर्तन के साक्षात्कार से प्राप्त ध्यानस्थ को बुझना की जाने लगी। सम्मोग के प्रतीक बन जान के साथ ही तात्त्विक मत में स्त्री पूरी तरह बुझ गई और फिर बुद्धि और मुक्ति का उन्मूल प्रारम्भ हो गया। स्त्री धारण्य बन गई। उसका बारे में यह बारम्बार फैल गई कि मुक्ति प्राप्त करने के लिये पहले बुद्धि प्रावरणक है। वही बुद्ध ब्रह्मचर्य और निवृत्ति में ही जीवन को पूर्णता

देखते थे वहाँ सिद्ध स्त्री के बिना पुरुष की पूर्णता में सन्देह करने लगे और उसने पुरुषत्व को तभी पूर्ण माना जब उसमें स्त्री की पूर्ण स्वीकृति हो। बाह्य और अन्तर भौतिक और पारस्परिक के सन्तुलन का एक नवीन धारा बस पड़ा जिसमें रतिजग्य ध्यानत्व को ही बहोदर सहीदर ध्यानत्व माना गया। बोध कीर्तव्य का साधन बन गया और इस तरह सिद्धों ने बुद्ध के समक्ष ही एक मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया जिसमें न तो पूरे तरह विषय-भोग का परित्याग करके ब्रह्मचर्य्यं पूर्ण जीवन बिठाने को सौच माना गया है और न केवल आध्यात्मिक ध्यानत्व के लिये ही स्त्री के साथ रति-श्रीका को लिया गया। रति-श्रीका तो मुक्ति के लिये साधन-मात्र थी। वह तो ब्रह्मचर्य के प्रतीक स्वल्प थी।

इस तरह सिद्ध मत में स्त्री पुरुष की साधना के लिये साधन मात्र बन गई। सिद्ध ने इसी रति-श्रीका के द्वारा उसकी मुक्ति मानी है। बौद्ध विभुत्वा के संयमित जीवन की प्रतिक्रिया पुरुष की उच्छ्वेतल वाचनायो की दृष्टि में हुई और साथे बसकर बन्धनत्व के रूप में तो कामवासना संबंधी बोधाकार का काष्ठी प्रचार हुआ। शून्य के स्वान पर बन्धनत्व की स्थापना हुई। वही बोध-चिह्न कहलाया। महायान मत में शून्यता और कल्याण की ही बोधचित्त कहते हैं। बाद में बसकर इसी शून्यता को प्रज्ञा और कल्याण का उपाय के रूप में सहजमान मत ने स्वीकार किया। प्रज्ञा स्त्री की और उपाय पुरुष का। दोनों के सम्मिलन से ही ज्ञान वास्तव होता है। इसी प्रज्ञा और उपाय के मिलन से बोधचित्त उत्पन्न होता है। इस बोधचित्त प्रवर्तित महामुक्त की प्राप्ति के लिये ही प्रतीक रूप में स्त्री और पुरुष का सम्मेलन बना। यह भौतिक क्रिया के रूप में दार्शनिक धारा पर स्वीकृत कर लिया गया।

वही दार्शनिक और भौतिक पक्ष का प्रमुख बनकर सामने आया था कासान्तर में रति-श्रीका के ध्यानत्व के नीचे दब गया और फिर तो शून्यी रूप मिल गई। स्त्री और पुरुष की उच्छ्वेतल वाचनाएँ मध्य-श्रीका करने लगी। स्त्री की मध्य प्रवृत्ति आन्तरिक ध्यानत्व प्रधान करने लगी और बन्धनानी सिद्ध बिना किसी प्रकार के सामाजिक शिष्टाचार की परवाह किये सीधे-सीधे में ही रति-श्रीका का वर्णन करने लगा। सुगन्ध क्रिया में सिद्ध वर्णन करता है। स्त्री प्रवर्तित मुद्रा को आसिम्बल पाद में भर लेने का परभाव पुरुष उसके प्रवर्तित बन्धनत्व धर्मवर्तन में प्रवेश करता है, फिर

उसके पुष्प लगे हुए थोठों को चूसता है और उसको मधुर सत्व बोसने के लिये उत्तेजित करता है। इस तरह वह सम्भोग का आनन्द लेता है। स्त्री की बचार्थे उस समय आनन्द से प्रकम्पित होने लगती है, उस समय काम-देव और ब्रह्मसत्व का साक्षात्कार होता है।

यह बाह्याचार इतना अधिक फैल गया कि साधन के स्थान पर इसी को साम्य समझकर ब्रह्मयानी अपने चित्त के प्रसन्नोप को मिटाने लगे। मुक्ति और निर्वास के लिये जो हाहाकार अब तक चलता आया था, योनि पूजा में अब अन्तर्मुख हो गया। सहजवाणियों के बीच यह सबकुछ सहज बन गया। सहजयानी सिद्ध तो कीचड़ में रहकर भी कमल बने रहने का रहस्य करता था और इससे भी आगे उसने तो यहाँ तक सहज साधना के रूप में सभी प्रकार की सम्पत्तियों को स्वीकार कर लिया कि पानी में रहकर भी पानी का अनुभव न करे, इस तरह का अन्तर्विरोधी तत्त्व उनके चिन्तन का आधार बना। इसलिये सहजयानी सिद्ध बाह्य विचारक की भाँति रति-खेड़ा में किसी प्रकार के शोष की कल्पना ही नहीं करता था। इसी प्रकार ब्रह्मयानी भी स्त्री के साथ रति-खेड़ा में लगकर उसकी पूजा करने लगा। किसी कुस की स्त्री हो साधना के लिए स्वीकृत हो गई। माता भगिनी आदि के भेद हट गये। अब तो यही पुकार उठने लगी—

स्त्रियं सर्वकुलोत्पत्त्यां पुजयेद् ब्रह्मचारिणीम् ।

इसके पश्चात् अन्तर्मुख ज्ञान नामे अथोरी आपासिक कालामुख कौल मार्गी और बीजपूजक आदि कितने लोग इसी देश में उठ खड़े हुए। मैं अन्धन अपनी पुस्तकों में लिख चुका हूँ कि कालामुख इत्यादि प्राचीन रासस इत्यादि भगवत् आदिमो के ही विकसित रूप थे। बीच और बाह्य मत भी अपनी पूरी सम्पन्नता के साथ बढ़ने लगे। सभी के अन्तर्गत स्त्री की साधना के लिये आवश्यक माना गया। बामाचार अनेक रूप में बढ़ने लगा। नीलकण्ठ आदि कितने ही तो इस प्रकार के सम्प्रदाय लड़े हो गये। जन-पूजा इनकी पहली साधना थी।

कौलसाधकों ने तो सहज साधना का एक पूरा चित्र ही बीच डाला जिसमें सभी प्रकार के शोष-विनाश के साधन पुगाने का विधान किया। वे इस बात की अपनी सिद्धि के लिये सर्वत्र कामना किया करते थे।

बाम चमा चमण कुसमा दक्षिणे बाम पार्श्व
मध्यस्थं महीष सहितं शूकरस्यो वृषणासम् ।

स्वयं बीछा ललित सुमया सपुष्पकानां प्रपन्न
कीर्ति बर्गः परम बहिनो बोधिनीनामप्य यम्य ।

बाई धीर तो सम्मोह करने में कुशल मुखतो स्त्री हो कार्ये हान में मरिचा
का पात्र हो । सामने ही दोनों के बीच गर्मा गर्म झुंझ का मसामेशार मौछ हो
कने पर बीछा सटक रही हो सुन्दर सुमय । सपुष्प का प्रपन्न है ।
मही कीर्तिवर्म है । यह परम गहन है । बोधी भी इसको सरलता से नहीं पा
सकते । उनके सिधे भी यह धन्य है ।

इस कर्तव्य से स्पष्ट होता है कि वह कुप कैंसा था जिस में व्यक्ति धन्यपूजा
समयान साधना तथा तन्त्र मन्त्र के द्वारा महासुख की प्राप्ति के सिधे प्रयत्न कर
रहा था लेकिन उसकी बचह किसी उसे धन्युति । जिस माया के जाल से वह
छूट जाना चाहता था उसने उसे धनिक से धनिक बकड़ लिया । इस धन्युति के
हवाकार में ही वह एक धीर तो स्त्री का धान्दल मानने लगा धीर बूझती धार
उसको चिता समझने लगा । उसके मन में प्रबल जडा कि इस नासना का
मूल क्या है ? उत्तर हुआ यह चित्त का विकार है । चित्त जलापमान है ।
वह स्मिर नहीं छाता ।

द्वारा प्रसन्न हुआ कि चित्त स्मिर क्यों नहीं रहता ? क्योंकि बीर्य जन्मजन्त
होकर सारी एकाग्रता को लपट कर देता है ।

तब सिद्ध न रहा कि स्त्री की भग एक धन्य है । उसमें जडे स्नाहा
कर दो । जिस प्रकार धन्य सब मुक्त कर देती है उसी प्रकार स्त्री भी सब
मुक्त कर देती है ।

तभी तो चित्त ने कहा है—मनुज महायोगी मनुष्यों न सद्यः—धन्य
मनुज करने से महायोगी मेरे बराबर हो जाता है ।

ब्रजमान सृजमान कापासिक पाशुरा कीर्तिमार्गी धादि सभी का
स्त्री न प्रति मही हृष्टिकोण है । इन मतो ने समाज में व्यभिचार को
छूट दो । अपनी साधनाओं के सिधे में लोग या तो स्त्रियों का अपहरण
करते थे या उनको बल धादि के लोभ से कैदाल थे । तन्त्र मन्त्र धादि के
कारण समाज में इनकी मायता भी थी । इस धारतकुमि में धनैक धन
विश्वास धांधो की तरह चल पड़े हैं । अपने कमलारों के बस पर ये सिद्ध
जनता को अपनी धीर धाकपिठ किया करते थे । इनके सम्पर्क में धान से
समाज में किस प्रकार का धाधार पनप सकता था । स्ना धीर पुरख के
बीच जो सहज सम्झा भी धीर जिसको ब्राह्मण स्त्री का धीम बहकर सवा-

बार के रूप में स्वीकृत करवाया। सबकुछ समाप्त हो गई। अब तो नंगी स्त्रियों के बिज और भूषिणी बनने लगी। योनि और बिज को प्रतीक रूप में चित्रित किया जाने लगा।

इन सभी सम्प्रदायों ने व्यभिचार की धृति कर ली। स्त्री का सम्मान पूरी तरह समाप्त हो गया। माता और भविषी के रूप में जो उसकी पहिनावा थी, वह इन विद्वानों ने पूरी तरह नष्ट कर दी। केवल रतिक्रीड़ा के साथ उत्तम सम्बन्ध जोड़कर उसे परिवार से अलग करके देखा गया। जैसे परिवार और गृहस्थ सम्बन्धित स्त्री के रूप को तो वे सिद्ध देखते ही नहीं थे। गौतम बुद्ध ने यद्यपि पहले स्त्रियों का बहिष्कार किया था लेकिन उनके हृदय में से स्त्री का सम्मान कभी नहीं गिरा। इसी कारण वे बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् भी अपनी पत्नी यशोधरा के पास गये थे। इसके साथ ही यद्यपि ब्रह्मचर्य की आवश्यकता के सिधे उन्होंने स्त्री का परित्याग करने के सिध कहा था और उसको दुःख का तत्त्व ही माना था लेकिन उनका दृष्टिकोण कसूया मय था। वे स्त्री को ही नया संसार के सारे विषय सुख को ही दुःख का हेतु मानते थे इसीलिसे उनका दृष्टिकोण मुक्त कसूया का था बुरा का नहीं।

इधर जब कामाचार काफी बढ़ गया और ताम्बिकों और विद्वानों के जाडू-टोने बहुत बढ़ गये तो उनकी तीव्र प्रतिक्रिया में नाचपंच उठा। बुद्ध गोरक्ष नाम दस पंच के प्रधान व्यक्ति थे। जैसे तो उनके बुद्ध मत्स्येन्द्रनाथ ने योगमुक्त कौम सम्प्रदाय को प्रमुखता दी थी लेकिन नाम सम्प्रदाय ने अपने बुद्ध से बड़ा बड़ा व्यक्तित्व या गोरक्षनाथ का जो एक बार कामिनीयों के माया जाल में फँसे अपने बुद्ध का कामरूप से मुक्त करके लाये थे। गोरक्षनाथ ने अलम्ब ब्रह्मचार्य के पासन को यौन-मार्ग के सिध आवश्यक बताया और इसी आधार पर उन्होंने उन सभी सम्प्रदायों को कटु धमकीबता की किन्हुने अपनी कामनायका की धृति के सिध प्रतीक के रूप में रतिक्रीड़ा को यौनिक क्रिया का आधार बनाया था। गोरक्षनाथ ने पूर्णतः स्त्री का बहिष्कार कर दिया और कर्म रक्षा को निषेध महत्व दिया। वे तो स्त्री के साथ किसी प्रकार रतिक्रीड़ा को स्वीकार ही नहीं करते थे। इसलिये तो वे सिध और सक्ति का मिलन शरीर ही मानते थे। बाह्य रूप से स्त्री को महानुष्ट की प्राप्ति के सिधे स्वीकार करने के थे बड़े विरोधी थे। वे तो बुद्ध सिधों को ही धृति या स्त्री मान कर उसकी स्थिति अपना वह के भीतर ही

मानते वे धीरे इन तरह पुण्यत्व की कल्पना करते थे। कठोर संन्यास ही उनकी साधना की साधारण-भूमि है। नीचे की ऊर्ध्व रेखा कर देने में ही वे महासुख का अनुभव करते थे। वे तो निरन्तर योगाभ्यास करते हुए मस्तिष्क को धारण स्थिति को बाधित कर देने में ही नाच-मोची के जीवन की सफलता मानते थे। उनका विश्वास था—

इहा पुरुषा जोषण भेदा ।

सुखमन मित्वा भर कासा ॥

इहा विवक्षा सर्वांत वस्तु सूर्य होतो नादियों को सूँढ़ में पर सुसुप्ता का धार्य चुन जाता है। योकी का मुहावारा यही है। योकी तो सबसे पहले संसार को भस्म करके उस में भिन्ना देने की बात सोचता है धीरे तब निर्जन स्थिति के लिये निरन्तर साधना किया करता है। वह सर्व धनसम्पत्ति का त्याग करने का ध्यान करने का चेष्टा किया करता है। हठयोग पर उसकी आस्था हमीतिसे होती है कि वह कुछ वादनाथों पर पूरी तरह विजय प्राप्त करके धन धान्य का आकाश के समान बनाने की इच्छा किया करता है।

नाथार्थ के इस निवृत्ति मार्ग में स्त्री पुरो तरह त्याग्य हो गई। मोरचन्यास के उठे मायाजाल तथा धीरे योकी के लिये सदा अपने बचन का उपदेश दिया। जिस स्त्री के मन्त्र कथ की शक्ति का बोध हुआ हीनो की मोरचन्यास ने उठ चुड़िल समझा धीरे कठोर पद्धति में स्था के माननामय का की निम्ना की। व अपने दिव्या को वह कहकर साधनाम दिया करने से —

भय राक्षसि सो भय राजसि सो विरम स्त्री भय साधर ना ।

मोना हुआ सु ग्यास सुख रहिया जीव नीरु धारि साध यवाप सो ॥

एक ही बार कहकर मोरचन्यास चुन गरी हो भय। वे तो बार-बार इन मायाजाल को काटने के लिये नाथार्थियों को चेलावनी सिद्ध करने से। फिर उन्होंने कहा —

आमा भय सोइहा जमना मोयहा तपि न पीबना पांगरी ।

स्त्री के नथ सोना भय का मोय करता है। स्त्री के साथ बैठकर तो पाया भी नहीं पीना चाहिये।

संसार के मारे दुःख का कारण ही यह विषय जान है तथा मोरचन्यास ने

इहा सा —

भारि पहर घासिगन निद्रा संसार बाइ बिपिया बाड़ी ।

ऊनी बाइ बोरखनाथ पुकारै, मुल य हारी ग्याराभाई ॥

रात के चारों पहर घासिगन (स्त्री का घासिगन) और निद्रा में बिठाकर संसार बिपयों में बड़ा जा रहा है। बोरखनाथ कड़ी बाहों के साथ पुकारता है कि हे मेरे भाई मुस धर्या बीर्य को नष्ट मत करो ।

योगी को तो चाहिये कि वह अपने बीर्य को ऊपर धड़ा से बर्बाद —

मैधुन की बरि कुए परासी धरख-धरख ली खोर ।

मैधुन से बुझाया जा येरता है। इसलिये नीचे गिरने वाले रेतस् को ऊर्ध्व-वस्था से जोड़ना चाहिये ।

जो इस तरह ऊम्बरिता होकर कामिनी का घासिगन छोड़ देता है और माया को काट बासता है, बिष्णु भी उस आंगी के बरख बोता है ।

योगी तो काल पर भी बिजय प्राप्त कर लेता है । काल बार-बार आकर उससे कहता है :—

उमा भाक बीछ भाक-भाक बापठ सुता ।

तीनि लोक नम जल पसारया कहीं जाइपी युता ॥

काल पुकारता है—बड़ बंठि आगते सोते बाइ बिस बसा में रही उसी दसा मे मैं तुम्हीं मार सकता हूँ । तुम्हें बाँधने के लिए ही तो मैंने तीनो लोकों में योनिश्म जल पसार रखा है । उससे बचकर तुम कहीं जाओगे ।

बोरखनाथ का स्त्री के प्रति यही दृष्टिकोण रहा । स्वाभाविक था कि इन नाचपर्बियों ने स्त्री के जीवन को केवल कामवासना के साथ ही जोड़कर तुल्य और वृष्टित समझा । इन्होंने स्त्री के उस कस्याली रूप को नहीं देखा जहाँ वह भी कठोर तपस्या करके ब्रह्मरों को अपने स्नेह में सीपती खूती है । इसका मुस कारण यही था कि नाचपर्बो इस संसार को प्रवचन ही समझने रहे और सदा इसको भस्म करना ही उन्होंने अपना उद्देश्य निर्धारित किया । वह ठीक है कि बोरखनाथ ने स्त्री के वासनामय रूप की निन्दा भी की लेकिन उन्होंने उसके उदात्त रूप का भी बड़ा पहिचाना । माया के प्रति घास्वा उनमें प्रबल मिलती है लेकिन गृहणी के प्रति उतनी ही लबासीनता है । बोरख का मार्ग इसी कारण एकांगी सिद्ध हुआ क्योंकि उसमें परिवार और लोक की प्राय-उपेक्षा ही रही । गृहस्थ का बोरखनाथ निम्न कोटि का ध्येय मानते थे । उनकी दृष्टि में ही योगी ही सर्वोच्च कोटि में आता था । फिर पुरुष ही योगी

हो सकता था। स्त्री के लिये योग साधना में कोई स्थान नहीं था। योगसाधना में स्त्री की अपनी शिष्या नहीं बनाया। इस तरह देखा जाय तो सिद्धि के लक्ष में स्त्री योगसाधना में स्त्री के हीनत्व का ही प्रतिपादन किया। उनके चित्त पर स्त्री का विनाशी रूप इतना जल गया था कि वे उसके कारण सबै ही स्त्री की ओर आकर्षित हो गईं। उन्होंने कभी योगसाधनापूर्वक उसके जीवन को समझने की कोशिश नहीं की। तभी इसकी योगसाधना व्यक्तिपरक और केवल व्यक्तिपरक होकर रह गई। इस सब में योगसाधना का अधिक योग नहीं है। उनका ध्यान ही इस प्रकार का था। ब्रह्माचार की महार चारों ओर फैल रही थी। ब्रह्मा संयोग बलता का और उसे योग के लिये साधन बताया जाता था। योग साधना के दृष्ट में इस सबके प्रति क्या प्रतिक्रिया हो सकती थी? साप्ताहिक रूप में उन्होंने स्त्री को साप्ताहिक समझना प्रारम्भ कर दिया लेकिन इसके साथ एक बात मठ भूतना कि जहाँ एक ओर योगसाधना ने स्त्री का बहिष्कार किया वहीं दूसरी ओर साधना के रूप में उसके सम्मान को भी बढ़ाया था। ब्रह्माचार के प्रत्यक्ष स्त्री का सम्मान भुट चुका था। साप्ताहिक संयोग के लिये सिद्धियों का समुहसु करके वे या बन बैकर उन्हें योगसाधना के लिये ले चले थे। योगसाधना ने इस लक्ष्य-साधना को सुलभ करके इसकी निम्ना की और तब स्त्री को मुक्ति मिली। नमन रूप में जो उसका सम्मान भुट रहा था, उससे वह बच गई और एक बार फिर योग बोलामृत सम्प्रदाय के प्रभाव से अपने अपने सम्मान की रक्षा करती इस तरह योगसाधना के विषय में दोनों ही पक्षों को समझना आवश्यक है। यह तो ठीक है कि वे अन्तरात्मीय सम्प्रदाय एकांकी थे तभी तो कालान्तर में जाकर वे सभी भुट हो गये लेकिन फिर भी उनका अध्ययन करते समय हमें उन्हें उनकी बुद्धिपरिचयिता के बीच रख कर देखना चाहिये।

साप्ताहिकों के साथ ही मैं उस व्यक्ति के विषय में भी लिखता हूँ जिसने दक्षिण से लेकर उत्तर तक भारत की भाषा की भी और चारों ओर अपने वैदिक-दर्शन का योग प्रसारित किया। उसने ह्योसाम्मुखी बुद्धि-धर्म का अपनी मेधा के बल पर इस देश से गप्ट कर दिया। उसके समय तक बुद्ध की प्रतिमा की पूजा होने लगी थी और अनेक तरह के ब्रह्माचार फैल पड़े थे। उसने इन धर्मका विरोध करके सिद्धि लक्ष्य की लक्ष्ये ऊपर रखा। उस वैदानी ने भारत के चारों ओरों पर चार विद्यालय मठ स्थापित किये थे। यह वा दक्षिणार्ध को योगसाधना में बल देना ही बना था। वेद उपनिषद् और साधनों का प्रचार

पण्डित का कहना है। वह भी सम्यास मार्ग में ही बिबलास करता था इसलिये उसने प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य और कठोर साधना को जीवन के लिये अष्ट बताया। इस संसार को उसने माया कहा सभी को उसने कहा था—धन की तुल्य छोड़ दो। जो भाव्य से मिल जाय उसी में सम्तोष कर सो। पिता पुत्र माता धानि कोई नहीं है इस संसार में। जीवन क्षणिक व्यापार है। धन जन, यौवन का यत्न न कर। काम सभी को नष्ट कर देता है। संसार का यह सारा खेल ही माया है। केवल ब्रह्म ही एकमेव सत्य है। संसार दुःख से प्रसूत है। इसमें जन्म और मृत्यु का चक्र निरन्तर घूम रहा है। उसी चक्र में फँसा मनुष्य बार बार स्त्री के गर्भ में प्राण जन्म लेता है और फिर इस संसार में आकर हाय-हाय करता है। उसे कभी भी सम्तोष नहीं होता। माया को सत्य समझ कर वह इसके पीछे भागता है और क्षणिक सुख की कामना करता है। इस संसार की कैसी याचना है। प्रेम मल जाते हैं। सिर के शान पक जाते हैं। दाँत डूट जाते हैं। हाथ में बन्धा हिमता रहता है फिर भी तुल्य नहीं मिटती। काँपते हाथ से मनुष्य क्षणिक सुखों की भीख माँगता रहता है। सारी प्राण इसी प्रसन्नते में फट जाती है सक्रिय फिर भी उसकी मूल नहीं मिटती।

चंकर ने चारी और मायाजाल देखा और उसमें भटकते हुए प्राणी का देखा, सभी उसने सबसे मुक्ति पाने के लिये कहा—कर्मों के कारण मनुष्य भटकता है इसलिये कर्म के बन्धन छोड़ दो। माया ही सबसे बड़ा भयानक है। उसी में तो मनुष्य फँस जाता है। इन माया को कोई भी नहीं समझ पाता। यह अनिर्वाणीय है। ब्रह्म सबसे परे है। हमका साक्षात्कार करना, उसके साथ एक होकर रहना ही जीवन का अन्तिम साम्य है। यह वही प्रवस्था ही इस मायाजाल से सच्ची मुक्ति है।

लेकिन प्रश्न उठा कि इस अर्थव की प्रवस्था पर पहुँचा कैसे जाये ?

उसके लिए चंकर के पास यही उत्तर था—साधारण मायाजाल से मुक्त हो जाओ। घर छोड़ दो परिवार छोड़ दो स्त्री धन, सम्पत्ति धाँप बिपयजय वस्तुओं को छोड़ दो। अपना हृदय की तुल्य को पूरी तरह मिटा दो। इन्द्रियों को पूर्ण रूप से अपने कण्ठ में करके ब्रह्म रूप हा जाओ। कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो। विसृष्ट को प्राप्त करो और अपनी चेतना को इन संसार के सगु कार्य व्यापार से हटाकर विराट मय की ओर लगाओ। यह विराट सत्य है निर्वृण ब्रह्म की प्राप्ति।

इस तरह चंकर ने भी उसी ब्रह्मचर्य पूर्ण एकाकी जीवन का प्रतिपादन

किया बीसा मोरबानाच ने घाने बसकर किया था। मोरबानाच ने उसकी तरफ़ ही स्त्री को मायाबान समझ कर त्याग्य माना। इस समाज का कारण बही है कि दोनों ही बोपी थे। जिस की एकाग्रता पर ने विशेष ध्यान देते थे। मोरबानाच तो समझत नाद बनाकर साक्षात् दिव रूप बन जाना चाहता था और चंदर ब्रह्म में लीन हो जाने की अवस्था प्राप्त करना चाहता था। चंदर के इस सम्प्राप्त-मार्ग में स्त्री को फिर हीन समझ गया। पहले से ही बीजा विचारों ने उसके प्रति उदासीनता-पूर्ण दृष्टिकोण रखा था। बाब में उसको योग्य समझ गया और बख्शाल की बाधा बह निकली। चंदर ने इस सबकी बही प्रतिक्रिया हुई थी जो घाने बसकर मोरबानाच में हुई। उसने स्त्री से उसकी मुक्ति का अधिकार ही छीन लिया और उसे सदा इसी कर्म जाल में बटकने के लिये छोड़ दिया। चंदर का वह दृष्टिकोण भी एक पुरुष का दृष्टिकोण था जिसके अन्तर्गत स्त्री के प्रति हीनत्वपूर्ण भावना का ही प्रतिपादन हुआ। उसको पुरुष के समाज अधिकार प्राप्त नहीं हुए। चंदर ने उसके जीवनमय रूप की न पहचानकर ही उसको माया के रूप में उपेक्षा की। उसका दून कारण बही था कि चंदर ने कभी परिवार में रहकर उसके विनयशील कस्यालमव रूप को देखने की चेष्टा ही नहीं की थी। जीवन भर रहते किसी स्त्री से किसी प्रकार का आत्मात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित किया था। एक माता को ही बह प्यार करता था और सम्प्राप्ति होने हुए भी वह माता के जीवन के अन्तिम समय में उससे मिलने आया था। माता रोय-श्यामा पर पड़ी थी। वह अपने चंदर की देखभाल के लिये सामायित हो रही थी। जब चंदर भा गया तो उसने प्रसन्न होकर कहा—बेटा ! बाब मैं चित्तनी प्रसन्न है कि तू अपने दिये हुए बचन का पालन करने के लिये मेरे पास आया है। मैं चित्तनी सोमायबती है। बुढ़ावस्था के कारण इस घरीर को होने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। जब तू मुझे उपरैस के त्रिगने में इस अवमानर से पार हो जाई।

चंदर ने अपनी माँ को निष्ठुर ब्रह्म का उपदेश दिया। माया उस निष्ठुर शक्त को नहीं समझ पाई—तब उसने फिर कहा—बेटा ! मेरी बोधक बुद्धि तेरे इन निष्ठुर शक्त को ग्रहण नहीं कर पाती घन तू तब मुझे मुन्दर सगुण ईश्वर का ही उपदेश दे। तभी मेरे आत्मा की शान्ति मिलनी।

बह मुनकर चंदर ने भुज्जप्रयात पश्य में अष्टमूर्ति घरीर की स्तुति की। दिव के दून हाथों में इयक और विपुल तैकर उपरिबध हो गये। उन्हें

बेसहकर माता बर गई। शिव के ये वृत्त उससे इस संसार से बचने के लिए कहने लगे लेकिन उसने डरते हुए अपनी प्रतिज्ज्ञा प्रकट कर दी तब शंकर ने उन वृत्तों को मोटा दिया और फिर शौम्यरूप भगवान विष्णु की धाराबना भी। माता उस रूप से गर्भवती हो उठी। वह कममननयन भगवान कीकृष्ण का ध्यान करती हुई इस लोक से बच बची और उसका सब शंकर के सामने रह गया।

सबसे बड़ी समस्या माता की धर्मवेष्टि क्रिया करने की थी। सम्पाद ग्रहण करने के पहिले ही वह माता को बचन दे चुका था कि उसकी धर्मवेष्टि क्रिया बही अपने हाथों से करेगा लेकिन सन्यासी के द्वारा माता का बाह्य-संस्कार करने की बात सुनकर उसके सभी भाई बन्धुभा ने जाने से मना कर दिया। उसे धास्व-विच्छेद कार्य कहकर उन्होंने उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाई। प्रसू में निराश होकर शंकर ने धकेले हुए माता का सब उठकर द्वार के बाहर रख दिया और समीप ही सूखी भकड़ियाँ बटोर कर बिठा बमाई और माता का बाह्य-संस्कार किया। इस सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि उसने अपनी माता की बाहिनी मुखा का मन्त्रन कर स्वयं प्राण निकाली थी। बाह्य-संस्कार कर चुकने के पश्चात् उसने अपने सामानों को साथ दिया कि तुम्हारे घर के पास ही भोज से वनधान बना रहेगा। भोज भी मातावार प्राप्त के बाह्यण अपने मुँहों की तरफ के द्वार पर ही जलाते हैं।

शंकर का यह अगाध मानु प्रेम बताता है कि वह स्त्री के जीवन के निकट प्रत्यक्ष आया था लेकिन केवल माता के रूप में ही उसने उसे देखा था। उसके स्नेहमय रूप से प्रभावित होकर ही तो उसने भगवान के सबुल्ल रूप तक की प्रार्थना की थी। यदि शंकर नाटी के सर्वांगीण रूप को समझने की बैष्ठा करता तो उसका मत्त एकान्ती होकर नहीं रहता। उसने केवल मोक्ष के पीछे धर्म धर्म और काम तीनों का परि त्याग किया था। यही कारण था कि उसका जीवन व्यावहारिक पक्ष में अधिक नहीं बढ़ा। वह सम्पादियों का सामनामार्ग होकर रह गया। शंकर में जीवन के प्रति आस्था नहीं थी बल्कि एक तरह का विराग था। वह विरागमय दृष्टिकोण सीद्धि जीवन के विनाश के लिये कोई स्वल्प साधारण नहीं बना सका इसी कारण लोक में उसको स्वीकार नहीं किया। हम अमावास्याक चिन्तन-धाराओं के साथ ही मैं एक और सम्प्रदाय के बारे में बता देना चाहता हूँ। वह सम्प्रदाय सम्भवतया इन सभी सम्प्रदायों से पुराना है और प्रायः ही उसके अनुयायी अनन्य स्थानों पर बितने

है। यह है जैन सम्प्रदाय, जिसके धार्मिक जीवन का नाम वेद तक में आता है। इसी से अनुमान होता है कि भारतवर्ष में वैदिक काल से ही यह सम्प्रदाय आकाश विचार-आकाश के साथ-साथ चमकता आ रहा है।

जैनों की भी बड़ी वेदना है। वे भी संसार छोड़ कर राम ईश्वर स्थित जीवन बिताये में ही निश्वास करते हैं। इस संसार को वे भी मामा-आम कहते हैं और इस वेद को पृथिवी समझ कर इसके प्रति सारे धर्मराज को नष्ट कर देना चाहते हैं। वे तो कहते हैं।

मामपुत्र देह होइ चिह्न बिह्वल । निर्दिष्टी बरहु हृदयपोटु ।

चम कजलु मावमडकईक । पठनो पुत्रु चिनिपीडहु मूढन ।

पुत्रपथ रहीरामिह मंडक । चम गन्तु दुर्मोह करडक ।

मानुष देह कृत्रिम है। फिर तो हृद्दी की पोटी समझना चाहिये। सड़ता हुआ माया मरा कचरा। चम का पुत्र। चर्च कृष। धर्म की पोटी पक्षियों का जीवन है। पर से निकाल कर अमर्याद में इस देह को चँक दिया जाता है। इसका पुत्र के समान इसका अस्तिव स्वभाव है। जिस प्रकार दिव्यनी चमकती है इसके भीतर अस्थि भाव छिपे हैं।

इसके परचात जैन धार्मिक स्त्री के जीवन की देख कर भी अस्मिता हो कर रहता है—हे स्त्री। मर दर्भ कर अपने इस रूप और शरीर पर। यह समीपुष नम्र है। जीवन एक सननामान है। संसार के प्रति योद्धा और आसक्ति अमकार में भटकाने वाली है। जीवन का यह साध व्यापार अस्थि है। मर कर धर्म अपनी इस मिट्टी की काया पर। वे सुन्दर लगने वाले मरमायी चरण बैसुरत के प्रिय मुद्रावने निरन्तर यह नामिप्रदेय का रूप बदर, वे जीवन के धार्मिक, सुन्दर मुद्रा बदरबिध धर्मोपन चिह्नकार, वे योगाधिगम में बढ होने वाले स्तन सब में कीड़े पड़ जाने हैं। सभी एक दिन लड़ जाते हैं। उनकी छात्र बिच जाती है। माधवता के स्वाभ पर उनमें पीठ पड़ जाती है। प्रपामक होता है इन पावन धर्म। हमने इन काया और मंदार के प्रति अपनी आसक्ति मिटा है। मुग्ध हो का इन झूठे जगत्ता में। यह दर्भ आम ही भटकाने जाता है। हमको तोड़ दे। इषि व्यापारार्थि नरक में से जाते हैं उन्हें तो पुण्य पर्यन्त यदि दुःख ही दुःख मिलने रहे तो भी नहीं करना चाहिए। अपने आपकी पहने सामारिक जाती से दूर करके निर्मल करनी। इसके लिये ज्ञान की सहायता लो। योग से ही शाव की एकाध करो। अनेक भवान्तर में शरीर उत्पन्न हुआ है। भावना बार बार बढक रही है। उसके

कर्मों का कहीं धर्म नहीं है। वह क्यों धर्मकर्म है? उसकी मुक्ति के लिये क्या उपाय करने चाहिये।

इसके लिये तीन आशंक कहा है। काट दो इस सब मायाजाल की। निरासक्त होकर रहो। शरीर का सारा धारण छोड़ कर दिगम्बर रूप में ही बिचरना करो। यह धारण ही तो सारे पाप की जड़ है। इसी से तो कुप्रवृत्तियाँ पैदा हो कर मन को दूषित करती हैं इसलिये इसको हटाकर सारे पाप से मुक्त हो जाओ। संयम से रहो। कठोर तप करो। वासना की जड़ तक को उस तपस्या से जसा दो धीरे पूर्णतः निर्विकार होकर अहिंसा पथ का अनुसरण करो। नाम और मुह से भी कीर्तों की हत्या न करो। मौन न छोड़ो। भिला मौन कर ही अपना जीवन निर्वाह करो। सतोष धारण करो।

तीन चिन्त की प्रवृत्ति को भीत कर पूरे तरह चिन्त से ही अपने जीवन का तावात्म्य कर लेना चाहता है।

यही जन चिन्तन का मूल है। इस विषय में अपनी धर्म्य पुस्तक 'भारतीय चिन्तन' में लिख चुका हूँ।

इस सारे वर्तन से तुम समझ जाओगे कि जैनो का चिन्तन भी अभावनात्मक रहा इसलिये स्त्री के प्रति उसने किसी प्रकार का अनुपग नहीं दिखाया। लेकिन जैन स्त्री को ही सारे जन्मात्म का कारण नहीं मानता। वह तो सारे जन्मात्म को मरक से ले जाने वाला कहता है। स्त्री का स्वाभाविक रूप है उसमें विरह्वार हो जाता है। लेकिन इस जार्मनिक पक्ष के साथ साथ जैनो के व्यावहारिक पक्ष पर भी हमें विचार करना चाहिये।

जैनो ने यद्यपि स्त्री को भी इस सारे मायाजाल में धर्मवर्तन दिया लेकिन उन्होंने साथ में स्त्री के लिये मुक्ति का मार्ग पाल दिया। धर्म सम्प्रदाय वालों की भाँति स्त्री के प्रति घृणा उन्होंने नहीं दिखाई। स्वयं वर्तमान महावीर ने स्त्रियों को भी तपस्या-पूर्ण जीवन बिताने के लिये स्त्रीकार दिया और बगुमती को धर्म का उपदेश देकर उन्होंने स्त्री संघ के निर्देशन के लिये निपुण किया था। इस तरह जैनो ने धर्म सम्प्रदायों की भाँति स्त्री पुरुष का भेद करके स्त्री के प्रति दोमत्वपूर्ण दृष्टिकोण कभी नहीं रखा। उनके लिये तो यदि स्त्री माया है तो पुरुष का जीवन भी तो वही माया है। इन तरह जैनो के चिन्तन का अभावनात्मक आधार होते हुए भी उन्होंने सर्वत्र स्त्री पुरुष की समा

महा को प्रतिपादित किया। कुछ की तरह उन्होंने कोई इस तरह का नियम कभी नहीं बनाया कि माय में स्त्रियों का प्रवेश बहिष्कृत है और फिर एक बार जीवन के प्रति दृष्टिकोण बनाकर और उसके सिने अनेक नियम निर्धारित करके उन्होंने कभी उनको बर्बाद नहीं। कुछ ने तो बार-बार संघ के नियमों में परिवर्तन किया था। राज्य सत्ता का बहाल आने के कारण उन्होंने सैनिकों की प्रशंसा रोक दी थी। फिर अस्तित्ववादी के दबाव में अस्तित्ववादी प्रवृत्ति के विषय में नियम बनाये। फिर महाप्रजापति यौधेय के बहने पर स्त्रियों को संघ में लिया। इस तरह को विचारों के बदलाव महावीर न कभी नहीं दो। यही उनको हक था।

इसके अलावा जीनों ने लोक को न्याय करके और इस सारे वर्गमान का नरक में ले जाने वाला कहकर भी व्यावहारिक पक्ष में परिवार और लोक के प्रति धारणा रखी। लोका नेते हुए तीन साधु सर्वत्र परिवारा को बर्बाद उपदेश दिया करते थे। वे गृहस्थ जाति में बने हुए सभी और पुरुष के सिने भी मुक्ति का मार्ग बताया करते थे। उन्हीं साधुओं की बीजों में अधिक परिवारों में धारणा हुई। तीन एक बिछट मिलू अनुयाय एकत्रित करके आदर्श लोक की स्थापना कर रहे थे।

इन सारे सभ्यताओं का बर्तन करके हमने अवाकालिक चिन्तन की एक बिछट धारा की श्रृंखला कड़ी। प्रत्येक के सामाजिक दृष्टिकोण की स्मरण है ही है। इसने यह स्पष्ट हो जायेगा कि परिवार, स्त्री प्रेम विवाह आदि के प्रति हमका क्या दृष्टिकोण था।

अब हम उन चिन्तन की धारा को रकते हैं जिसमें हम माने अमर का समायान हो जाया है। यह है वैष्णव-चिन्तन धारा, जिसके अन्तर्गत बर्बाद धर्म धर्म धर्म और मोक्ष अनुसंधान की स्थापना करके आश्रम विचारक न जीवन की प्रथमी समझना के साथ समझने का प्रयत्न किया है। उनमें सभी लोक परिवार आदि के प्रति धारणा है। उनमें वैराग्य की मुक्ति का साधन नहीं बनाया गया है बल्कि इनके स्वतन्त्र पर भक्ति की स्थापना कर वैष्णव चिन्तन-धारा ने साक में रहे और प्रेम का प्रभाव किया है। उन्ने सत्ता को हराया है। कठोर तप के स्थापन पर अपने सख्त भक्ति पूर्ण जीवन को खेप समझा है। सभी और पुरुष दोनों को भक्ति के क्षेत्र में समानता दी है। गुप्त और गौरव आनन्द के स्वतन्त्र पर निष्ठा बर्बादों को नाकर हमने वैराग्य और परिवारवाद आली का मेर हटा दिया है। वैष्णव-चिन्तन ने कभी भी साधना की प्रति की

प्रथम नहीं दिया। यही कारण है कि इसके साथ ही अनेक संप्रसार उठे और एक बार तो उन्होंने एक सहर के साथ फैसकर अपनी विजय का भाव बुँजाया लेकिन फिर सभी एक-एक करके अपने प्रभाव में डूब गये और यह बचपुत्र धारा धारा तक उसी प्रभाव अति के साथ बची आ रही है। इसके अन्तर्गत पशुवर्ग (धर्म धर्म काम मोक्ष) की दृष्टि से हम विषय की विवेचना कर चुके हैं। यह चारों ही मानव जीवन के लिये आवश्यक माने गये हैं। प्रत्येक का मनुष्य की एक प्राप्ति विधेय से संबन्ध बताया गया है और प्राप्ति विधेय का सामाजिक पक्ष धार्यों के रूप में प्रकट किया गया है, जो पुराने सामाजिक संरचना (Organization) का प्रतीक था। वैष्णव चिन्तन की धारा ने भक्ति का आधार बूँडने से पहले भी बार-बार समानता की घोषणा की है। लोक में भेद-भाव को मिटाने में इसका बड़ा ही प्रयत्न माना रहा है। सबसे पहले सम्पूर्ण लोक के निर्माता और नियन्ता ईश्वर की वन्दना करके इसने प्राणी-मान को समानता का अधिकार दिया और फिर सबके भीतर समस्त आत्मा की बात उठाकर उस अधिकार को और भी सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसके पश्चात् इसी चिन्तनधारा के समसामयिक मानवशास्त्र के निर्माता मर्याद ने साधारणीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके रसानुसृति के क्षेत्र में स्त्री पुरुष भूत बाह्य आदि सबकी समानता स्वीकार की। इसके पश्चात् भक्ति के रूप में फिर समानता का अधिकार देती हुई यह धारा बड़ी।

जिस बाह्य ने इस धारा को आगे बढ़ाकर सर्वत्र समानता की घोषणा की वही भूत-बाह्य स्त्रीपुरुष आदि के भेद-भाव समय समय पर क्यों काटे करता रहा? इसके सम्बन्ध में हमें बाह्य के वर्ग-स्वार्थ पर ध्यान देना चाहिये। भक्ति के साथ वर्ग-स्वार्थ जुड़ा रहता है। उसके साथ उसकी सखिभ्या भी होती है जो वर्ग-स्वार्थ के ऊपर लोक-कल्याण की प्रेरणा से सर्वत्र अपना कार्य करती रहती है। बाह्य सर्वत्र अपने वर्ग-स्वार्थ के प्रति उत्तम रहा है और उसके रक्षार्थ हमने विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत अनेक रूपों से धर्म की विवेचना की है। यह निरन्तर बदलता रहा है और उसने हर परिस्थिति में पूर्य करने रहने की कामना की है। उसके लिये उसने अपने अनेक अधिकारों का भी परित्याग किया है। अपनी बात छोड़कर, नई बातों को भी स्वीकार किया है। नये वेवचारों की उपासना को भी अपने धर्म के अन्तर्गत स्वीकार दिया है।

बस इसी वर्ग-स्वार्थ के कारण उसने कई बार विरोधी बातें भी कही हैं।

एक बार उसी ने परिवार में स्त्री-मुख के संवर्धन का आदर्श रखा है कि वे एक दूसरे के पुरस्कार होकर इस तरह परिवारों को बसायें जैसे ही बीम पाई को बसाते हैं। वस दुब बरतने के साथ ही वह कहने लगा कि स्त्री तो पुरुष की दासी है। उसे तो उसे ही बेवला समझकर उसकी पूजा करनी चाहिये। वही उसका तीर्थ है वही तप है, वही उसके जीवन की मुक्ति है। इसी प्रकार एक तरह तो उसने अकुलता जैसी आदर्श स्वाभिमानिनी नारियों को सामने रखा है और दूसरी ओर साम्बिकी जैसी गरीबों को आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया है। अकुलता कुल्लु के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की निन्दा करने का साहस रखती है, वह कि साम्बिकी अपने व्यवसायी पति की छिछोरे के पातिल का पालन करती हुई वेदों के पास तक न जाती है। अनेक तरह के उदाहरण हैं, जिनसे ब्राह्मण के निरन्तर परिचित होते रूप का पता चल जाता है। उसने कुछ परिस्थितियों के अनुसार अपने रूप बदले हैं लेकिन फिर भी उसकी शक्ति ने लोक के कमजोरों की ही सर्व्व कामना की है चाहे वह उसके प्रति इस तरह से आचरण न रखा हो जैसा हम प्रायः इतिहास का अध्ययन करके सोचते हैं। बाह्य रूप से उसने अनेक प्रतिक्रियावादी बातें कही लेकिन उसके साथ उसकी अपनी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ थी। मूल रूप से तो उसने परिवार और लोक के प्रति सदा आस्था रखकर धर्म धर्म काम और मोक्ष के ऐसे मज्जीर आदर्श की प्रस्थापना की है कि उसकी तुलना में अन्य सम्प्रदाय होने एकान्ती और समाजवादी ही सीखते हैं।

संस्कृति और विज्ञान

मान का विकसित विज्ञान भी वास्तव में अपनी वास्तविकता में है। प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। भौतिक जगत् की ही नहीं बल्कि 'मन' की व्याख्या करने में लगा है।

मन (mind) की पहली खोज भारत ने की। योगी शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट देते हैं। यद्यपि अपने शरीर में वे उसे कुछ का प्राप्ति मानते हैं क्योंकि वे स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उसे ही उचित मानते हैं। योगी विभिन्न प्रकार के अमृतकार प्रवर्तित करते हैं। योगी स्वास-प्राप्ति करके समाधि लयाता है। कुछ दिन हुए एक योगी ने अपना रक्त प्रवाह भी स्थिर करके दिन को घड़कन को रोक कर दिखा दिया था। वह धरती से ऊँचा उठ जाता है। यदि कोई एक सेंकड़ में ७ मील की गति से उठे तो वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का पार कर सकता है अर्थात् एक घंटे में उसकी गति का वेग २२२०० मील होना चाहिये। योगी इसी गति को केवल चित्तवृत्ति के नियंत्रण से प्राप्त कर लेता है? वह अथर्व में सटका रहता है। यद्यपि वह आकर्षण शक्ति के क बाहर महो निकसता परन्तु भारहीन (weightless) ही अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

इसे देखकर लगता है कि विज्ञान वस्तु जगत् में परिवर्तन करता है योग मनुष्य के शरीर की ही बात है। योग का धारण भी बनीकृत आदिम समाज में है। वह कितना प्राचीन है। यह तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु एक ही

आदि व्यवस्था में हमें मनुष्य के विकास के दो रूपों की धोर बताया है।
विज्ञान साधन है, साध्य नहीं है।

वृत्तिगत इष्टमते के मतानुसार हम यह पर भौतिक पदार्थ में आत्म का
अस्तित्व प्रारंभ होने के बाद जीवन उत्पन्न के रूप में विकास हुआ है। उसका
संख्यात्मक विकास भी हुआ है। उसका रूप पहले साधारण था और वह
निरंतर बढ़ रहा होता जाता गया है। उसमें लक्ष-लक्ष के पारस्परिक संबंध
बढ़े हैं और सूक्ष्म ज्ञान उत्पन्न हो गये हैं। सब जीवन उत्पन्न में बाहरी परिस्थितियों
को धैर्य से धारण करने की क्षमता में बढ़ी अतिरिक्त बढ़ गई है। उसमें प्रयोग
और अनुभवों का उचित बोधा रहा है और अविद्य निर्माण की धोर वह अत्यंत
रहा है। बार-बार बढ़ने की वृत्ति के विकास का रूप ही स्मरण अति है।
विशेष से मिली स्मरण अति का उदय बाद में हुआ है। उसके बाद परंपरा
का विकास हुआ है। उसमें धैर्य की अति—आत्मना अनुभव करना इच्छा
करना—इन अतिशयोक्तियों का विकास समय व्यतीत होने के साथ सम्पन्न होता
गया है। पृथ्वी पर मनुष्य आने के पहले ही में भौतिक पदार्थ उत्पत्ति की धोर
अद्वैत था। मनुष्य का विकास उसी उत्पत्ति का एक अंग है। अतः मनुष्य
की उत्पत्ति से भी पहले ही से है। भौतिक पदार्थ में किस प्रकार जीवन का
विकास किया यह अभी पता नहीं है। उनका पहले बहुत धीरे धीरे विकास
हुआ और अंततः अतीत भौतिक पदार्थ के जीवन में मनुष्य का आकार उदय
किया और उसमें उनका रूप वादी विकसित हुआ। और मनुष्य को जीवन
रहने के संबंध जिज्ञासा में ही बढ़ा है, और जिज्ञासा का प्रगटीकरण
अन्तर्गत सुख पाने की आत्मा—रिचि में रहा है। प्रकृति में मनुष्य के दो
पक्ष सुख निपट बनाए हैं। रहा उनका आदित्य में जीवन का इनका विकसित
होना वह निरंतर उसे अग्रगण्य बनाता गया है, किन्तु मनुष्य अब भी इन दोनों
बाधा में अंतर्गत नहीं हुआ है।

मनुष्य को ही भाति वैश्विक एकी की सामान्य कक्षा है और उनके बहुत न
नाम प्रवेशार होने हैं अब वह धीरे धीरे बढ़ रहा है। फिर बढ़ते जाने पर गर्मांग
है। वह माना माना तो वह वैश्विक को धीरे धीरे धीरे धीरे धीरे धीरे धीरे धीरे
मेरे हैं। वह भी जीवन का ही विकास है। अंततः मनुष्य इन दोनों की
धोर करता हुआ आने बढ़ा है।

जीवन-संबंध की जो आदर करने-पता मनुष्य में बढ़ा ही है वह अन्तर्गत के
लिए है। कई आदित्यों में संशोधन बिना ही प्रगमन होता है। प्रगमन के पूर्व संशोधन

में जो सुख है, वह प्रकृति का ही नियम है, जो शरीर के भीतर विशेष रसों के बनने के कारण मिलता है। वह नितांत भौतिक सुख है। किन्तु उसका जो संबंध अतन से जुड़ा है वह भी भौतिक के तत्त्वों के कारण और इसलिये उसका भी विकास के अंतर्गत माना जाना ही उचित है।

तो यह विकास हमें बताता है कि मनुष्य प्रारम्भ नहीं है किसी विराट पति में बीच में पैदा हो गया है, वह स्वयं सृष्टि है। उसके रूप में पति ने जो आकार ग्रहण किया है उसमें भौतिक पदार्थ ने धीरे-धीरे बैठन होकर जो रूप धारण किया है, वह विकसित रूप अब धीरे विकसित होना चाहता है।

वैदिक काल के उपरांत भारत में उपनिषदीय ब्रह्म का विकास हुआ— इसका अर्थ है कि ब्रह्म की कल्पना की प्रतीति एक विभक्त समाज में अन्तर्गत और उसने हमारे अतीत में अपना गहरा प्रभाव डाला।

उपनिषद् का ब्रह्म क्या था? पहले विभिन्न जातियाँ अपने अपने देवताओं को मानती थीं। लेकिन जब वे जातियाँ एक दूसरे के संपर्क में आईं तब उन्होंने अनुभव किया कि छोटे-छोटे देवता ही काफी नहीं हैं। मनुष्यों ने तब अनुभव किया कि इन सारे देवताओं से ऊपर तो एक शक्ति होनी चाहिये। ऐसा उन्होंने क्यों सोचा? मनुष्य पहले छोटे छोटे कबीलों में रहता था उसकी समझ भी छोटी थी। उसके वैदिक जीवन की आवश्यकताओं उसके उस समय के चिंतन के फलस्वरूप उत्पन्न दार्शनिक भावों उसकी प्रकृति की व्याख्या की तत्कालीन क्षमताओं और उसके भौतिक जीवन की विवेचनाओं का जब मिलन हुआ तब टॉलेमि स्टेज से उसकी नारसार्ई बननी शुरू हुई और उसके देवता उसके अपने चिंतन के अनुस्यू बने। जब वे देवता नये देवताओं से भिन्न तो मनुष्यों ने अपने अपने देवताओं की भक्त धर्मियों का पहचाना और इसीलिये व्यापक समाज में व्यापक चिंतन ने ब्रह्म को जन्म दिया जो देवताओं से उच्च था। तब दार्शनिक ने उस ब्रह्म की व्याख्या करने का यत्न किया लेकिन सीधे ही उन्होंने देखा कि उनका चिंतन ब्रह्म की व्यापक या विमल नयी तुली व्याख्या नहीं कर सकता था। तब उनके धर्मों में समाज धारा और ब्रह्म की व्याख्या भी धर्मात्मक धर्मिक हुई। 'नेति' 'नेति' का उच्चारण एक और मनुष्य की उस बुद्धि की व्यापकता की बताता है जो अपनी सीमाओं में मनुष्य का जानती थी तो दूसरी ओर उस मनुष्य की अनुभूति के बावजूद उसकी बुद्धि की उस महानता को भी बताता है कि वह

दयणी सीमा से एक बहुत बड़े सत्य को छूने लगी थी। इसीलिये उसने पुराने साधारण देखावाओं को छोड़ा या ना और एक मित्राकार के रूप में बड़ा की सत्ता स्वीकार की जो प्रकृति के प्रत्यक्ष रूप में स्थित या स्वयं प्रकृति या। परन्तु वहाँ एक श्रेष्ठ हो गया। उन मनीषियों ने सत्ता के दो रूप माने— प्रकृति को ब्रह्म या रूप तो माना किन्तु उसे मौक्तिक कहा और उसे ब्रह्म रूपी चेतन का रूप माना। इस प्रकार उस चेतन को समझना उससे तादात्म्य करना उनके जीवन का उद्देश्य हो गया। बसन्ती परिस्थितियों में कवि ने उस चेतन ब्रह्म से ईश्वरत्व को धन्य कर दिया और प्रकृति और पुण्या के सम्पर्क से इस सृष्टि को बसता हुआ माना जिसमें धर्मकार का महत्त्व भी स्वीकार किया। धर्म के रूप में पुरानी बसती धर्म जीवन-चिन्तन का परवरा ने केवल प्रकृति और आत्मा को माना ईश्वर को बिल्कुल ही हटा दिया। कुछ न आत्मा को भी धन्यत्व कहा परन्तु वे भी धर्मोक्ति धन्यत्व मानते थे। दर्शनशास्त्र की यह किताब सचानक नहीं आयी।

एक ए० ई० ४०० ई० में इस विषय पर प्रथम मजह किया है। उसमें लिखा है प्राचीन काल का मनुष्य धर्म के सध्य वर्तन की ही भाँति मनुष्य को सर्वत्र समाज के रूप के रूप में ही देखता था और उसे सृष्टि को ग्यारह पक्षियों पर निर्भर स्वीकार करता था। वह मनुष्य समाज को प्राकृतिक पक्षियों पर निर्भर मानता था। उसे धन्य करके नहीं देखता था। प्राचीन मनुष्यों की दृष्टि में प्रकृति और मनुष्य परस्पर विरोधी नहीं थे और इसीलिये जब वह उनको पहचानने का यत्न करता था तब उनको धन्य मान नहीं करता था— वह मनुष्य के अनुभव में प्रकृति की अनुभूति प्राप्त करता था और मनुष्य न अनुभव को सृष्टि के न्यायवशात् के रूप में अनुभव करता था। धर्म के और पुराने जमाने के धर्मो के नजरिये में एक छद्म है। वह छद्म यह है कि धर्म का धारणी (ईशानिक) सृष्टि को धन्यत्व समझता है जब कि पुराना धारणी उन 'तु' ब्रह्म या और उनके दृष्टिकोण में उसे धन्य पक्षि माना जाता था। यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। धन्यत्व की धारणा की जा सकती है, चेतन के व्यक्तित्व को माना जा सकता है, प्राचीन नाम के मनुष्य को इसलिये जीवन धर्मिक रंगीन लगता था जब कि धर्म का व्यक्तित्व जर्म रंगीनी का अनुभव नहीं करता। पुराने धारणी के लिये विजय की कड़क वृत्तों की धर्मराष्ट्र और मरी की कलकल वा जो धर्म या वह धर्म के मनुष्य के लिये बिल्कुल बदल गया है।

हमारा दर्शन मनुष्य की उन प्रारम्भिक अनुभूतियों से प्रारम्भ हुआ किन्तु

व्यक्तिकर्म में मानव जीवन के जन्म जीवन मरण की भावनात्मक अनुभूति को उसकी उस समय पहुँच थी हम उससे उस क्षेत्र में बहुत नहीं मानव कहना ठीक होया कि प्रायः हम वैसे ही हैं, वैसे वह था । दर्शन मानव अनुभूति को यदि प्रमाण किया जाये तो ठीक है । अनुभूति भावसंपदा है, व्यक्ति और सृष्टि—समाज और भास्वत रहस्य—हमका तात्त्विक या व्याख्या

आत्मा है आत्मा नहीं है, परमात्मा है परमात्मा नहीं है, प्रकृति प्रमाण सबकुछ करती है वह स्वयम्भी है, चेतन और जड़ दो हैं चेतन जड़ का रूप बना दिखाता है, जड़ कुछ है ही नहीं चेतन ही अपने ओ ऐ दिखाता है वास्तव में हमारे मस्तिष्क में सृष्टि है क्योंकि हम अनुभव करते हैं तभी तो सबकुछ है करना कुछ नहीं इसी तरह न जाते किन्तु जिन हैं फिर एक एक विचार के अन्तर कई कई छोटे भेद हैं फिर वैज्ञानिकों का दर्शन है कि प्रकृति अपना इन्द्रात्मक विकास करती है, प्रकृति करती है अपना कार्य वस्तुतः करती नहीं उसमें सब होता है, होता कुछ नहीं कास का मे तो हमें समझता है हम जिस जगह से गुजरते हैं उस उतना देख पाते हैं, जगह में टैनी गेंद पर बीटी बही जान पाती है जो उसके सामने धा जाता है वस्तुतः सत्य तो बहुत बड़ा है, भिन्नान्न भविष्यम् है जो था वह है और भविष्य भी है, पर हम उसे तभी देखते हैं जब उस जगह से गुजरते हैं सृष्टि वस्तुतः एक विचार है कोई बहुत बड़ा विचार सांच रहा है और हम सब—यह सारी सृष्टि उसके विचार है सृष्टि में सब पहले से निम्न है यद्यपि व्यक्ति कर्म में परमाणु की स्वेच्छा काम करती है, किन्तु वह फिर भी एक समूह के नियमन में बँधा रहता है, सृष्टि में कोई निश्चित नहीं है, यह सब जाने क्यों होता बना जा रहा है, प्रसन्न में यह कार्य व्यापार कहीं धीरे से बसाया जाता होगा जिसे हम जानन नहीं सृष्टि का रहस्य उसका बाहर नहीं उसके भीतर है यद्यपि परमाणु में अपार रहस्यात्मक शक्तियाँ हैं जो धीरे धीरे प्रकटता जा रही हैं । या न जाने किन्तु विचार है परन्तु यह सब मनुष्य द्वारा निर्मित धारणाएँ हैं धीरे प्रत्यक्ष अपनी पुण्य गीमा से प्रसन्न है और प्रसन्न है मानव की सीमा में यह सत्य मनुष्य के सत्य हैं और मनुष्य का सत्य ब्रह्माण्ड में बही स्थान रहता है जो हमारे में गेंद पर बसती बीटी का सत्य रहता है । यद्यपि वैदिक धर्म ईसाई धर्म भुवनेश्वर धर्म मानवसंवादी, धर्म भुवानी—जगत समय मनुष्य एक विनाश नैतिकता और भास्वरत का पड़ता है पकड़ सता है । दुर्भाग्य है कि साखों करोड़ों भोग इसी तरह यथार्थ म पड़े

बुद्धि को पराजय है, उसी प्रकार "भौतिक है" "उत्तरे घाये मल लोको" का मार्क्सवादी संप्रदाय का कथन भी एक पराजय है। हमारे बर्ने और बर्नर व्यक्ति सृष्टि की व्याख्या से प्रारंभ होकर समाज पर आते हैं और संस्कृति विज्ञान में रये जाकर जड़ता में बदल जाते हैं। और, यह हमारी बर्बरताओं के प्रत्यक्ष ही और यह तो ख़ुदसे क्योंकि मैं स्वयं यह व्याख्या करते हुए भी तो एक क्षुब्ध सीमा में बँधा हुआ हूँ और निरंतर मनुष्य इसी प्रकार अपनी मूर्खता को बुद्धि मचा कह कह कर प्रशन्न हुआ करेगा। यहाँ विज्ञान के स्पुलिक का आविष्कार दिखा कर मो मुझे डराया जाता है कि तुम मनुष्य के विकास में भास्वा नहीं रखते, तुम निपटारावादी हो लेकिन मैं बता दूँ कि पत्थरों की रमझ से प्राग निकासने बाधा प्रादिय आविष्कारक भी उतना ही महान था जितना प्राग का स्पुलिक निर्माता है, घत विकास यानी बीतते समय में ही हर अवली मजिन को पुरानी की विरासत पाती है, मैं उसे भी देखता जलता हूँ। तुम ने मल्लिक मे छात्राधिक बैठना की बात को भी परम्पु में समाज में उसे बहुत स्पष्ट देखा है।

इसी विकास को मैं सामन रखता हूँ। जितना धार्मिक प्रकृति को जान रहे हैं उतनी ही प्रकृति की अपरिमित राशि हमारे सामने प्रकट होती जा रही है। हमारे जानने न जानने से प्रकृति को लगाव नहीं। हम केवल उसको अपार सृष्टियों को समझ रहे हैं। जितना समझते हैं उतना ही उसे काम म लाने का मल करते हैं। जितनु जितना ज्यादा समझते हैं हम उतना ही जड़का रहस्य भी फैलता नजर आता है। हम धनु परमाणु के विभिन्न रूपों का संपदन मान देखते हैं हम केवल यही जान पाए हैं कि इस भौतिक में विभिन्न प्रकार की सृष्टियाँ हैं। जैसे मेडिय के पास पत्तने जाता मानव-पिपु कुछ नहीं जानता परम्पु मनुष्य-समाज से घाये पर जब चीलता है, तो बहुत कुछ जानन लगता है। इसी प्रकार हम भी जानते जा रहे हैं। क्या किसी दिन मनुष्य जानते जानते सृष्टि का अन्तही रहस्य भी जान लेगा? चायद जान ले। निरवय हो मनुष्य सृष्टि के बहुत व्यापक विस्तार में बहुत छोटी जगह रहता है। वह जानेगा भी तो तब जब कम से कम हमारी पीढ़ी नहीं रहेगी। अगर अब प्रहो को याता या प्रारंभ हो गई तो जैसे अमेरिका की छोड़ हो गई थी जैसे ही नई-नई जानकारी हासिल हो जायेगी। यह तो हुआ पारा का रूप। परन्तु हर पारा में बुद्धि हमारा है और व्यक्ति उस पारा यानी समाज की दृष्ट है। व्यक्ति सर्वत्र अपने को देख बनाकर समाज को देखता रहा है, और देख रहा है।

प्राचीन पौराणिक चिंतन में केवल यथार्थ को ही नहीं लिया जाता था बल्कि वहाँ मनुष्य अपनी कल्पना को भी स्थान देता था, कल्पना उसकी अपने स्पष्टिजन से अभिन्न प्रतीत होती थी।

मिस्र भारत मैसेपोटामिया में वह माना जाता था कि सृष्टि प्रलय के चारों ओर निकली थी। मिस्र में यह धारि धातु (बस) पुरातन रूप में मूल देवता माना जाता था। मैसेपोटामिया में धारि धातु को तहमात देवी के रूप में माना जाता था। भारत में भी तहमात की उपासना बेह में मिलती है। पृथ्वी के विषय में भी मिस्र मैसेपोटामिया और भारत में मिस्र भारतस्थित रही। मैसेपोटामिया में वह महामाता थी। मिस्र में उसे पुण्य माना जाता था। भारत में महामाता के रूप के अतिरिक्त उसे धातु का भी रूप माना गया। मातृसत्ताक समाज की परम्परा में सृष्टि का क्रम स्त्री से चलता है, परन्तु पितृसत्ताक में वह क्रम या तो पलट जाता है, या उसमें हमें मिश्रण मिलता है, जैसे एक ही कल्प के साथ विभिन्न रूपों में स्थित मिलती हैं। भारत के बारे में यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि हमारी एक परम्परा के नाश पर दुखी नहीं उठी बल्कि एक के बाद एक आपस में जुड़ती गई। सभी वैदिक उपनिषदीय और पौराणिक चिंतन सब मिस्र गये हैं, और विभिन्न जातियों के विश्वासों के मिलन से बहुत बड़ा सम्मिश्रण हमारे सामने आता है। मिस्र और मैसेपोटामिया में परम्पराएँ रूप बदलती गई हैं। इसलिए वहाँ वहाँ हमें जीवन का एक घन्टा मिलता है, यहाँ हमें पुनर्जन्म की विभिन्न धारणा भी दिखाई देती है। मनुष्य चिंतन में परमात्मा का सृष्टि से कोई तात्पर्य नहीं है। वहाँ परमात्मा 'केवल पवित्र पर है सबसे ऊँचा है। क्या है वह कोई नहीं बता सकता। जो कुछ है, वही है। परमात्मा के सामने वहाँ मनुष्य और प्रकृति का कोई महत्त्व ही नहीं है। कभी पितृसत्ता में वह जीवन में इस तरह का शुष्क और कठोर चिंतन ही आम हो सकता था और इसी तरह का चिंतन हमें अरब के रेगिस्तान के दार्शनिक मुहम्मद पैगंबर में भी मिलता है। रेगिस्तान में प्रतीक कम होते हैं और जीवन बहुत कठिन और शुष्क होता है। अरब भयानक के सिवाय वहाँ रथक कौन है? अरब का अस्ताह या इलतु (अन्धकार) का ही प्रकारान्तर से विकास है। अन्धकार ही रेगिस्तान में एकमात्र सति हैन जाता होता है।

मनुष्य का चिंतन समयानुसार बदलता है। इसी तरह लोग उपनिषदों के अध्ययन से अनोखरवादी बने और मनुष्य पृथ्वी विज्ञान के अध्ययन में और

उमने यह बारम्बार बगाई है विज्ञान का धनी-बरबाद पढ़ कर। ऐसा परिवर्तन समाज में हुआ इसलिये कि उसका डंग गया है। पढ़ना या जानना वो ऐसे काम हैं जिन्हें किसी पूर्वाग्रह से प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। वस्तु का अध्ययन करने के पहले यह बारम्बार नहीं बनानी चाहिए कि हमें समुक्त वस्तु प्रमाणित करनी है, उसके लिए तथ्य ढूँढे जायें। अन्तः यह है कि पहले तथ्य एकत्र किए जायें और तब उनका अध्ययन करके निष्कर्ष की ओर प्रेरित होना चाहिए।

भारत में हमारे सामने आस्तिक और नास्तिक दो भेद हैं।

(१) आस्तिक दो प्रकार के हैं—

[अ] ईश्वरवादी

[आ] धनीश्वरवादी।

आस्तिक वह है जो कि वेद को प्रमाण मानता है।

(२) नास्तिक दो प्रकार के हैं —

[अ] ईश्वरवादी

[आ] धनीश्वरवादी।

जो वेद को प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करता वह नास्तिक है। वह ईश्वर को मानने पर भी नास्तिक ही माना जाता है जैसे अंधेर इत्यादि के लिए भी नास्तिक कहा गया है। बौद्ध और जैन और आर्याक मतों में आपस में सहारा देते हैं, फिर भी इन तीनों को एक ही वर्ग में रखा गया था।

समाज में ईश्वर से भी अधिक भारत में वेद प्रामाण्य को महत्त्व दिया गया था। एक विशेष संस्कृति को मानना संभवतः इसका पर्याय रहा हो। चित्तु वेद का महत्त्व पाने के बाद ईश्वर को अधिक महत्त्व मिलने लगा।

ईश्वर का जन्म कैसे हुआ ?

जब मनुष्य ने यह जानने की कोशिश की कि वह कैसे जन्मा यह सृष्टि क्या है, तब उन्नत ध्यात्वा थी। उसकी सारी ध्यात्वा धार्मिकता से भर तक उसके ज्ञान पर आधारित है। किसी युग विदेय में मनुष्य अपने चारों ओर के जगत् को जितना समझ पाता है यही उमने अपने दृष्टिकोण में अभिव्यक्त किया है, इसीलिये उमने विभिन्न युगों में विभिन्न दर्शन प्रस्तुत किये हैं। परन्तु हमारी परम्परा में क्या दोष है ? हम किसी एक परिस्थिति में दृष्टि हुए दर्शन और नैतिक विचारों को अपना अन्त मानकर बना लेने हैं और

भटके रहने हैं। इस घटकम ने वो दृष्टिकोण दिये हैं। एक ईश्वर की सत्ता को मानना है, दूसरा उसे नहीं मानना। दोनों ही के सुन में मनुष्य के प्रहकार की ही प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि को कोई ब्रह्माता है, या नहीं जमाता अभी तक इसे हम नहीं जानते। यह सृष्टि सचमुच उससे कहीं अधिक विराट और अमलकारपूर्ण है जितना हम अभी तक समझ पाये हैं। जिने हम समझ लेते हैं उसे बड़े संतोस से कहते हैं कि यह तो प्रकृति का नियम है, जिसे नहीं समझते उसके लिये कहते हैं—यह रहस्य है या इसे भी हम जान लेंगे या यह व्यर्थ है। ईश्वर का अर्थ मनुष्य के सम अज्ञान से होता है जिसमें वह निरन्तर जानने का प्रयत्न करता है और अपने अंधरे ज्ञान को पूर्ण समझने की सूँझता करता है। मैं तो आज तक नहीं समझ सका कि बौद्धिक वास्तवता का हम कब समाप्त होवा। आज हम धर्म को राज्य से अलग करके रचना चाहते हैं। अर्थात् राजनीति आज धर्म निरपेक्ष हो गई है। वस्तुतः धर्म है, सत् और न्याय धर्म पर अस्तना। यही प्राचीन लोगों की धर्म के बारे में प्रगट हुई राय है जो महाभारत में विस्तृत स्पष्ट हो गई है। इसीलिये सत् और न्याय धर्म पर अस्तना हर युग में एक ही मानवज से स्थिर नहीं हो सकता—यह भी कहा गया है। सत् और न्याय की एकमात्र कसीटी मनुष्य का सुख है, और इसीलिये उदात्त भावना में यही माना गया है कि जिससे अधिक लोगों को सुख हो वही ठीक मार्ग है। विष्णु धर्म धर्म का यह धर्म नहीं लिया जाता। किसी संस्कृति-विशेष से मनुष्य, किसी एक भाषा-विशेष के वंश की ओर पुण्य भावना किसी एक धार्मिक या कुछ धार्मिकों की विचारधारा के प्रति आदर भावना को धर्म माना जाता है। आज संप्रदाय को धर्म कहा जाने लगा है, जो ठीक नहीं है। भारतीय मनीषियों ने इस पर बहुत सोच विचार किया था। बीता में कहा गया है कि अपने धर्म में रह कर मरना भी भसा है, दूसरा धर्म तो बड़ा भयानक होता है। किन्तु बीता में जब यह कहा गया तब धर्म का अर्थ ही और था। कृष्ण ने अर्जुन को जब युद्ध से विरत देखा और अर्जुन ने कहा कि वह युद्ध ब्रह्मा कर कर्म नहीं करना चाहता था तब कृष्ण ने कहा था कि तु ममात्र में शत्रिय है और शत्रिय का काम लड़ना है अतः युद्ध कर। इस तरह धर्म का अर्थ या ऐसा निभाना। हमारे इतिहास में सारे सामन्तीय काल में धर्म का ऐसा ही निभाना था। आज भी जब अमार राज्य उभरने से अंतराज्य करते हैं, तब ठाकुर लड़ने लगते हैं क्योंकि समाज में गड़बड़ फसती है। जब पूँजीवादी प्रभाव में धर्म का लड़ना निभाना को

कृष्ण मोन भेठा है और हम तरह धर्म सो वत्र छोड़ देता है मगर अपने संप्रदाय के उपासना पदा को पकड़े रहता है।

यों स्पष्ट होता है कि जो धर्म को संप्रदाय मानता है वह समाज के नैतिक पक्ष को नहीं जानता। किसी संप्रदाय विषय में हो अपने जीवन को मष्ट करना बौद्धिक क्षमता का चिह्न है। पुराने हिन्दुओं में अपने संप्रदाय के वैष्णव वैदिक जैन बौद्ध साक्त, पाशुपत दैव इत्यादि। इन सब संप्रदायों के बीच भारत में रहने के और इनके रीतिरिवाजों में कुछ भीजें एकसी थीं। वह इनकी संस्कृति थी। यद्यपि यह सब आपस में भ्रमरुते के फिर भी यह मिश्रण साम्य था कि सबको ही जीने का अधिकार है। इन चार संप्रदायों के समान धर्म भीजें थीं। वही ब्रह्मचर्य वही योग वही भोग वही तपस्या वही ईश्वर वही धर्मेश्वर वही धारणा वही ध्यान—ऐसे बात माने जान थे। हजार भेद के फिर भी सबने बड़ा सत्य माना गया था—व्यक्ति की निष्ठा का वह उदात्त रूप जिसमें वह भोक का अधिराजिक ब्रह्माण्ड कर सके। भारतीय मनीषा ने इस पर ज्यादा जोर नहीं दिया कि व्यक्ति की दार्शनिक विचारधारा क्या है। उसे इतना महत्व नहीं दिया गया जितना कि व्यक्ति के धारण को। हिन्दु भारत में जो यह विकास हो रहा था जो मानववादी विचारधाराएं बढ़ रही थीं, उन्हें पश्चिम के वैयक्तिक धर्मगणों ने जड़ बना दिया। इस्लामी धर्मों ने ध्यान कहा कि मुहम्मद पैगम्बर सृष्टि का पहला और अंतिम विचारक है। धर्म वही सर्वश्रेष्ठ है। उसमें धार्मिक कुछ नहीं। हमारे धर्मरिक्त इस्लाम ने एक नये समाज का लोका दिया। उसमें धर्म की संस्कृति का पुट था। धर्म की भाषा की दुरधान को ही ईश्वर की बाली बजाया गया। भारतीयों की समझ में यह ही नहीं बैठा था कि ईश्वर ने धर्म में ही सबों सन्निध दिया। सम्राट बनकर भी मुसलमानों की बटुर्ता पर हँसा करता था। इसी तरह ईसा जैसे महान व्यक्ति के नाम पर यूरोप में बौद्धिक दासता का एक और युग प्रारम्भ हुआ जो १००० ई० में टूटने लगा।

क्या यह हमारे लिये एक विचित्र बात नहीं है कि हम धर्म तक अपने में २०० या १२०० बरस या और भी पुराने धार्मिकों की नहीं हुई बातों को ही अपने बिजुल का मूलधार बनाये हुए हैं। हमने मानवीय मूल्यों के धारकों में क्या अप्रति की है? क्या जल्दी है कि हम सहीर के परीर बने रहें।

कि जब धारणी यह मोच सेता है कि बस यही अंतिम मार्ग है तब वह

बौद्धिक शासता का नया युग प्रारम्भ करता है। अपने को अच्छा यानी सत् कहना अपने बिचार को सत् धर्म यानी ठीक धर्म कहना बुद्ध की बात नहीं, धनुष की बात है। जब तक जैन चिंतन में नये नये बिचारों के आगमन को स्वीकार किया गया वह अच्छा रहा पार्श्वनाथ तक यही हाल रहा। महावीर जैसे महान व्यक्ति ने इस परम्परा को और बढ़ाया। परन्तु महावीर के बाद उनके शिष्यों ने जैन चिंतन की प्रगति को रोक कर जड़ बना दिया। पूरा 'प्राय' अच्छा होता है क्योंकि वह शासता है, और सहिष्णु भी होता है, परन्तु बेचे तो सब ही घमर्च करते हैं, क्योंकि वे सोचते ही नहीं। ठीक वैसे ही जैसे ईसा के बाद पीटर और पॉल ने की थी।

माक्स का चिंतन भी बौद्धिक शासता का अनुगतन मार्ग है और उसने वैज्ञानिकता के नाम पर संसार के बहुत बड़े भाग पर अपना कुछ दिन का अधिकार भी कर लिया है। पोपण्टीन समाज बनाना और बात है बौद्धिक जड़ता और पीस है। जमनाद के नाम पर बुद्धिवाद को बर्बरार ढह कर उसका सत्ता घोटना बैसा ही है, जैसे पुराने जमाने में पोपवाद के विरोधियों को धर्महीन कहने की प्रणाली थी।

मनुष्य की नई संस्कृति नयी बात चाहती है। प्रायः हर चिंतन में कुछ न कुछ सत्ता होता है। सब की ही सभी बातें स्वीकार करके बौद्धिक शासता को खुर रखना ही मनुष्य की नयी संस्कृति का विकास करना है। विभिन्न संस्कृतियों की विभिन्न विचारधाराओं से मिठा कर उनकी पकड़ कर क्यों बना जाये? बेब उपनिषद् कुर्यात त्रिपिटक विवासेस्ता पुरानी और नई इसीस अवग्रह कैपिटल सभी गहरी कितारें हैं उन्हें सबको पढ़ना आवश्यक है परन्तु हममें से किसी का भी धर्मिम' कहना या बौद्धिक शासता का ही नाम है।

इस बौद्धिक शासता के कारण क्या होता है? हम जड़ हो जले हैं। प्राय के वैज्ञानिकों में इस जड़ता के बिन्दु बिन्दु प्रारम्भ हुआ है और यह हर्ष का विषय है। सारे वैगम्बरों के सामने एक 'यूनोपिया' का निर्माण रहा है सारे संसार को अपने दृष्टिकोण से सुधी बनाने का स्वप्न रहा है। मार्क्स ऐसा अधुनातन यूनोपियावादी था। उसने सोचा था कि धर्महीन मनाज में मनुष्य का सर्वकार नष्ट हो जायगा और यद्य और अधिकार भी खूब भी मिट जायेगी। मुहम्मद ऐसा ही यूनोपियावादी था जिसने सोचा था कि इस्लाम के फैलाये जाने से संसार से भ्रष्टा दूर हो जायेगी। बुद्ध भी ऐसा ही यूनो-

विभाजारी या जिसने सोचा था कि भिक्षु बार्थमिक-सभ बन जाने से शोक मुन्नी हो जायेगा ।

प्रश्न है कि शोक मुन्नी कैसे होया ? मार्स ने कहा था—आज तक के बार्थमिकों ने लोक की ओ ध्याना की है हम उसे बदलेंगे । सभमुख मार्स के अनुयायियों ने शोक को बदला । नया रूप सामने रखा । गरीबी मिटाई बर्म होन समाज का डींचा कड़ा किया । लेकिन एक बर्मी रह गई । अन्ततोगत्वा राज्य एक 'छूट' बना और इस प्रकार बौद्धिक शासता का नया रूप प्रारम्भ हुआ । विरोधा भी लोक को बदलने चले हैं । यह साबुदस भी उसी ओर से अपना काम करना चाहता है, जिस ओर से बद्ध ने किया था । परन्तु अपरिग्रह को यह प्रख्यामी उसी बौद्धिक शासता के नये रूप का प्रारम्भ है, जिने ईसाई मप्रदाय ने शोक में प्रतिष्ठित किया था ।

आज तक मनीषियों के इतने सोचने के बाद भी शोक मुन्नी क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि 'वीर नायक पूजा' (Hero-worship) ही मनुष्यों के समुदाय में प्रमुख रही है । इस बात में प्राचीन हाथियों जैसा ही है । 'हेड' की भावना उसमें अभी तक है और वह बौद्धिक शासता का ही प्रतीक है । मनुष्य में अब तक यह मूर्खता रहेगी कि वह किसी 'एक' बुद्धिमान के ही पीछे चलेगा और 'बाकी' विद्वानों का मुख्य नहीं करेगा जब तक वह मुन्नी नहीं होया ।

इतिहास क्या कहता है ?

वह कहता है कि पहले मनुष्य जंगली (wild) था । जब उस समय जब कबीलों में लड़ाई हुई जरागाहों के पीछे शासता प्रारम्भ हुई ।

शासता यद्यपि बुरी ची लेकिन उसमें एक अच्छाई भी थी कि मनुष्य ने मनुष्य की हत्या नहीं की उसे भीषित रखा । जब मनुष्य दास नहीं बनाता था तब वह उसका बच कर दिया करता था ।

रामता में दूसरा काम हुआ कि मनुष्य की उत्पादन शक्ति बढ़ी । शासता यानी बर्बर दुर्ग का भी बाहिर धन हुआ ।

राम स्वतंत्र हुए और बर्बर अतिराम यानी मृगिबद्ध विमान यानी शर्क बने । इसमें शासक हुए और किसान पहले से अधिक स्वतंत्र हुआ और पुराना स्वामी अब सामंत बना । दूसरा काम हुआ कि उत्पादन शक्ति फिर बढ़ी । परन्तु अंत में बुराई ही रह गई और मार्ग का भी धन हुआ और मृगिबद्ध

किसान मजदूर यात्री प्राप्तकारी बना। शायद 'अस्य कुसीनता' पर खेप्या पाता था, उसकी जगह पूँजीपति ने ली।

इसके बाद वर्ग-समाज का घट दिया गया और जनता के प्रतिनिधियों ने सामान संभाला जो पूँजीपति नहीं थे। मजदूरों का राज बहामने बना और सनपी धोर में कुछ लोग सामान करने लगे किन्तु इसमें भी दोष यह रहा कि कुछ लोग हावी हो गये और 'उनकी बात को' 'मनकी बात' मान लिया गया।

विक्रम का यह क्रम बताया है कि—

इस जंगली समाज में कभीकस युग से पित्रुसत्ता समाज में आये तो इस पर व्यक्ति का शासन हुआ। यह पिता धाये बसकर दास युग में राजा बन गया। इस हुआ प्रजा और दास। दास युग में ही हस्तक्षेप हुई। एक व्यक्ति की जगह कई उच्चवर्गीय लोगों ने सत्ता हथिया ली और गण स्थापित किया। यह गण दूटा तो फिर व्यक्ति चर्कोत सार्वत का शासन हुआ। इस बार उनके अधिकार पहले से कम हुए और प्रजा—राम की अधिक अधिकार मिले और प्रजा मुमिकठ रूपक वाली सर्त। इस युग के बाद धनीवर्गीय पूँजी पतियों ने इस सार्वत को गिराया और अपना गण बनाया जो मोरुव है, और प्रजा को और अधिक अधिकार मिले। कम और भीम में इस धनीवर्गीय पूँजीपति गण को हटाकर एक राजनीतिक दल ने सत्ता हथिया ली और प्रजा को और अधिक अधिकार मिले किन्तु वह राजनीतिक दल अधिनायकत्व की ओर बढ़कर हुआ। मार्क्स ने इस दल को नहीं देखा। वह इग्न भी इति हास में छाब-छाब बसता आया है। जब व्यक्ति के हाथ में शक्ति का केन्द्रोकरण अधिक हुआ है तब लोक ने शक्ति को छोड़ा है और जब लोक के हाथ में शक्ति आई है तब वह फिर व्यक्ति के हाथ में लौटी है यद्यपि हर बार लोक के अधिकार पहले की तुलना में बढ़े हैं।

यही कारण है कि इतिहास में धात्र की शासन-व्यवस्थाओं के रूप को अंतिम रूप नहीं माना जा सकता। जनवादी दल में जनवाद के नाम पर स्थापित किस प्रकार अधिनायक या यह स्वयं कमियों ने ही प्रगट किया है जो बताता है कि उनकी मारी जनवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति सामाजी में अधि नायक बना रह सकता है।

और इसका कारण क्या है ?

इस जिस दुनिया में रहने हैं उसमें कुछ पुराने लोगों की बिचारधाराओं को पकड़ कर करोड़ों आदमी बसे जा रहे हैं। बुद्धि-दासत्व घबड़ा है। धर्म तक का मानव-तिहास भीरनामक-मूसा का इतिहास है, जिसमें बुद्धि का दासत्व रहा है।

विज्ञान ने प्राचीन मनीषियों के चिंतन को विकसित किया है और बताया है कि कोई भी मनुष्य अंतिम बिचारक नहीं है। हमें तो सारी मनुष्य जाति—बिना पन्धर—की मनीषा को छात्रर मज मानदण्ड बनाने हैं और मैं समझता हूँ कि उसमें ही यह असहिष्णुता और जड़बाद लपट हा सकता है।

किन्तु यह सत्य कार्य नहीं है। संस्कृति की व्यापकता के पीछे कुछ रुढ़ियाँ भी काम करती हैं और वे सबैक हममें घड़पा डालती हैं। बसे हर्ष का विषय है कि हम और भी बिज्ञानों की दृष्टि आ रहे हैं। मनुष्य का बिबास बिचना हो चुका है और बिचना और होना है। मनुष्य के मस्तिष्क में बिठनी लगी है उसका अनुमान होने पर ही भव बाढ़ आये बच सके।

आदिम ममाज से मनुष्य के बिबास की मबिसें बढाती हैं कि मनुष्य ने निरंतर अपने मस्तिष्क का ही बिबास बिना है। संस्कृति का बिबास मनुष्य के बिचन और उसके माव पक्ष की सीरप्यनिमुति का ही बिबास है। यह निरतर अपने भीतर के मज को बुर करने की बिट्टा कर रहा है। उसके ईश्वर, उसके न्याय की भावना और मारमंडस्य की बिट्टायें बलुन हमी की बाह्यामि ब्यक्तियाँ मानी का सवती हैं।

भारत ने सर्वप्रथम इस बिषय को अपनाया था और हमका एकांग बिबास एक प्रकार से भारत की भीतिक बिदि के प्रति उदासीन भी कर गया। किन्तु यह बिद्या अब पश्चिम में लोगों का बाकयित कर रही है। कुछ वर्ष पूर्व के भी राहून ने टीसीदेवी पर बीजानिक अनुमधान बिना था और मनुष्य के मस्तिष्क की पृथ्व पर मजा प्रकाश डाला था। इसर उसने एक मनी बिबास दा है बिबने नर बारदाओं की बहव बहारा बिना है और बीजानिक बंध से।

इतिहास में बल्य में महापुण्य अपने जीवन की एक बहुत ही ऊँचे स्तर पर ब्यतीन कर गये हैं और उन्होंने मनुष्य की रीनियों का एक बड़ी सक्ति दी है। ईसा कुछ महावीर इत्यादि ऐसे हा नाग थे। कबोर और तुनमी भी ऐसे ही थे। इन लोगों ने ब्यतिरक के दासत्व के ऊपर उठकर अपने आदमों के अनुक्रम जीवन निर्वाह बिना। बापी मीमा तक महात्मा गाँधी में भी ऐसी

बात थी। किन्तु मानव-मन के भाव पक्ष में सास्वत मूल्यों की उन्नत तक जीवन को पूर्ण तात्कालिक के साथ मिबाह जाना नैतिक प्रेरणा देने वाला मानव शास्त्र का आधार है, उसके लिये वैज्ञानिक जानकारी की शक्ति होना आवश्यक नहीं है। ईसामसीह के बारे में ही कहा जाता है कि उसे भविष्य का भी पता रहता था। इसी तरह अनेक महापुरुषों के दृष्टा होने की बात सुनाई भी है। परन्तु ईसामसीह का शोधित ज्ञान एक विषय में कोपरनिकस और आइन्स्टाइन से कहीं कम था कि यह संत महारमा वीम्वर दृष्टा होते हुए भी प्रकृति के वास्तविक व्यापार के बारे में कम जानते थे। देखा तुमने? बिस्वाम की उन्नत तक पूरी सत्य से ओकर दूसरों के सामने नैतिक प्रेरणा रखना और बात है प्रकृति के कार्य व्यापार को जानना दूसरे बात है। उन्होंने जीवन के सास्वत रहस्य को एक अभिनिष्ठ प्रवाह की इकाई के रूप में पहले मूल रूप में स्वीकार कर दिया तथा उसकी जीवन के मानवीय दृष्टिकोण से पूर्णतः समन्वित करने की चेष्टा की है। नया वैज्ञानिक उस इकाई के सतत रूपों को देखता है, परन्तु वह अंततः मरता उस इकाई के चिह्नों को ही विविध रूप से प्रगट करता है। अब पहले उसे ही कहें।

राह ईन ने जीवन के एक अंधेरे पक्ष को छुपा है। आदिम काल से ही मनुष्य मृत्यु आत्मा परमात्मा इत्यादि के बारे में सोचता रहा है। ईश्वरवादियों ने इन सबको परमात्मा की सृष्टि की विविधता के रूप में स्वीकार किया है। वे इस सबसे अधिक प्रभावित भी नहीं होते। संत महारमाओं की ध्वस्त ऐसे मूलप्रवृत्तों में टकरा जाती रही है, जिन्हें उन्होंने अपने ईश्वर-बिस्वास से ऐसे ही दबा दिया है, जैसे स्वामी किसी बात को दबा लेता है। मूल बीजे सतरनाक बीज मानी जाती है। आइन्स्टाइन को वायव्य धरम मूल में मुकाबला करना पड़ता और ऐसे मूल से जो सापेक्षतावाद की व्योरी का कोई मूल्य नहीं समझता तो क्या जाने क्या होता। लेकिन ईसा से जो मूल टकराया वो चारों खान बिच आये। यह मूल प्रेरक क्या है? इनकी बहुतेरे नहीं मानते। परन्तु ईश्वरवादी प्रायः मानते रहे हैं। नास्तिकों में चार्लस डार्विन की नहीं मानता था, क्योंकि वह आत्मा को ही नहीं स्वीकार करता था। जैन-बौद्ध यद्यपि कर्त्ता के रूप में ईश्वर को नहीं मानता परन्तु प्रकृति के बहु प्रकार के कार्य मानता है। बौद्ध यद्यपि आत्मा को भी नहीं मानते परन्तु इन विषय में प्रकृति के वैविध्य रूप कार्य व्यापार को अवश्य मानते हैं। ओटोस्टरवादी यहूदी मुसलमान खंडिक धर्मावलम्बी दीन वैष्णव साक्त इत्यादि आत्मा को मानते हैं। समस्त मता में मृत्यु के बाद आत्मा-विषयक मान्यता है, यह

जकर है कि सिर्फ भारत में बताया है पुनर्जन्म की बात कही हुई है। बड़े प्राक्कर्म की बात है कि विज्ञान भारतीय चिन्तन के किसी ने भी पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया जब कि हर बगइ के संत अपनी अपनी बगइ हटा के। परन्तु सब मत यह मानते हैं कि जैसे संसार में एक मनुष्य मोति है, इसी प्रकार अन्य मोतियों के रूप में और भी मोत हैं—देवदूत फरिश्ते विद्याधर, देवदा, भूत पिशाच ब्रह्म राक्षस और न जाने कितनी मोतिवाँ । जो सब सामयिक रूप से रहती हैं और बहुत कम मोत उनसे संभव रख पते हैं। चियोसोफी नामे भी इसी तरह की बातें मानते हैं। मोत बंध में भी सिद्धियों के द्वारा मृत प्रेक्ष मस्तिष्की बन्ध में किन्ने जाते हैं, परन्तु इस प्रकार की सिद्धि का योग्य मार्ग में बहुत ठीकी बात नहीं माना जाता। योग्य मार्ग व्यक्ति के पुर्नोत्थान को इस प्रकार की छोटी चीजों से बहुत ऊपर मानता है।

राहु ईन ने इस सारे क्षेत्र को नये ही रूप से देखा है।

बह प्रश्नता है : हम मनुष्य क्या है ? तुम और मैं ? कोई नहीं जानता। मनुष्य के बारे में बहुत कुछ जाना जाता है किन्तु सबका मूल स्वभाव (प्रकृति) —क्या है जो उससे ऐसा करता है जैसा कि वह करता है—यही एक एक पहला प्रश्न है। विज्ञान अभी व्याख्या नहीं कर सकता कि मनुष्य का मन क्या है, वह उसके मस्तिष्क में कति काम करता है ? कोई वह जानने का ढोव नहीं करता कि कितना कति बीबा होती है ? विचार किस प्रकार का प्राकृतिक कार्य व्यापार है। इस विषय में तो एक 'ज्योरी' भी नहीं बन पाई है। स्वयं ज्ञान के ही विषय में ऐसा अज्ञान ही इस पर तो विरोध भी नहीं होता। विज्ञान ने अनेक महान विद्याओं में हमारी सीमाओं को बहुत ही सतृप्तता में विस्तृत किया है। उसने प्रश्नों की लोख की है बुद्धि की ऊँचाइयों और गहराइयों को माना है परार्थ के तरबा की परत की है। गुरु—बहुत दूर के मतार्थों के बारे में बताया है। अणु में तो भी एक नीच निहाला है। और उसमें अनेक भवानक राका की भी सूक्ष्मातिमूर्त ज्ञानकारी प्राप्त की है। किन्तु सबसे बड़ा सवाल तो अभी छुपा ही नहीं किसी प्रश्न अभी एक साफ नहीं हुआ।

राहु ईन की बात विचार प्रेरक है। प्राचीन संविदा के महापुमार इस प्रकार की तर्क बद्धि मनुष्य का देह-बुद्धि की और सीमित करती है। प्राधान्यवादिता का कहना है कि ऐसा तो पहले भी हो चुका है। उनके

अनुसार धर्म के विज्ञान का यह विकास धामुरी धर्मियों का विकास है, जो धर्मपक्ष को नहीं देखता।

राहुईन पूछता है—यह का बस्तु नियोजक है। (सृष्टि का) इस मनुष्य का व्यक्तित्व अपना क्या स्थान रखता है? २१वीं सदी के मनुष्य को यह सब कर बड़ा भारी आश्चर्य होगा कि मनुष्य ने इतने दिन तक इस विषय पर वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं किया। उसने इस समस्या को नहीं देखा कि वह स्वयं क्या था। बताया इसके कि 'हम क्या हैं' इसका हम ज्ञान प्राप्त करते हमने विश्वास बना रखा है। हमारी अपनी माय्यताएँ हैं और धारणाएँ हैं। प्राम हमसे बहुतों ने बचपन से यही शिक्षा पाई कि मनुष्य के दो भाग थे—एक उसका भौतिक शरीर और दूसरा उसका धर्म भौतिक मन मनवा धारणा। धारणा साधन करने वाला भाग और शरीर एक घर और उस धारणा का एक साधन-मान। कभी कोई भीड़ हो गई तो बस दूसरी की मदद से सिर्फ गिरने जाने के दिन इतवार को ॥ धारणा की बातें होती थी। सब हर रोज मन धारणा का प्रयोग इच्छा के रूप में होता था। और पहचान से इस तरह के मेघ पर हम विचार भी करते थे। किन्तु जब व्यक्ति बड़ा होता है विज्ञान पढ़ता है तब उसे शरीर की धारणा के उन नियमों के विषय में ज्ञान होता है जो उसके भीतर काम करते हैं उस पता चलता है कि मस्तिष्क की बनावट का उसकी बुद्धि तथा उसके चित्त से गहरा संबंध होता है तब उसकी पुष्प धारणा हटने लगती है और यह नयी धारणा उसके गानन धरती हो जाती है।

मस्तिष्क का अध्ययन या निर्यात भौतिक विज्ञान के पक्ष में होने वाली बात है। जिन सिरातनुओं और रंघों से उसका निर्माण हुआ है वह हम संसार के ॥ मूलतत्त्व और धार्मिक मार्ग हैं। किन्तु मन क्या है? वह ऐसा गुणधर्म हुआ नहीं है। वह कोई ठोस बस्तु नहीं वह तो मस्तिष्क का एक कार्य-कलाप है।

किन्तु हम दूसरे हृदयकोण से भी समस्या बस्तुता गुणधर्मों नहीं। धर्म यह निर्णय होता है कि व्यक्ति के अपने जगत का केन्द्रीय धर्मिकारी कौन है—उसका धारण मूलक अनुभव करने वाला मन या उसका बाह्यपार मूलक भौतिक तत्त्व निर्मित मस्तिष्क। हमका निर्णय केवल अनुसंधान और धर्म के बल पर हो सकता है।

राहुईन की यह बात सबकुछ एक नया प्रश्न है, और इससे हमारे सामने

नयी समस्या घाती है और श्रुति सभी तक यह संभार रहस्य है जो कुछ इसके बारे में जाना गया है वह एक आधिक मत्प है। हमारे पास भी कहा नहीं जा सकता।

मस्तिष्क और विज्ञान इन दो चेहरे को व्यक्त करते हैं—हमारे जीवन का केन्द्र क्या है? मस्तिष्क से आसित है हम या मन से? क्या एक भौतिक है और अन्य अधीनस्थ? या मन केवल मस्तिष्क के भूतवत्त्व की एक चेतना है! वह कैसे बनती है? यह मन अपना आत्मा सूत्ररत्न से निरपेक्ष और परे है और उस पर भौतिक का प्रभाव नहीं है। तो हम उसी परवत्त में जाते हैं कि आत्मा तो शरीर का एक भाग है उसमें भलग है। दूसरी ओर यदि हम इस बात पर जाते हैं, सूत्ररत्न से आत्मा बनता है मस्तिष्क पर हो सबकुछ निर्भर है, तब हम ठीक उसके विपरीत धारणा बनाते हैं। तो हम ऐसे दुग में रहते हैं, जहाँ एक उल्टा मत रहा है। हम और आत्मा के बारे में तो बहुत कुछ जानने समझने की बाधा करन हैं। किन्तु हम अपने ही विषय में कितना कम जानते हैं और एक प्रकार से अपने पूर्वजों के बनाये विद्वानों पर बनने बने जाते हैं। यदि यह मन मानव मस्तिष्क के नियमों में ही परिचालित है, तो भौतिक पदार्थों के जो नियम हैं वही हम पर भी लागू होने चाहिये। तब व्यक्ति से व्यक्ति में बुद्धि का भेद भी निरासतु रक्षा की बनावट का भेद ही होना चाहिये। विज्ञान ने मनुष्य की पुष्टता धारणा को संश्लिष्ट कर दिया। पहले मनुष्य अपने को इनका महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति था कि उसको पान में वह तारा संसार उसी के लिये बना था। किन्तु अब उसे यह ज्ञान हुआ कि वह तो पृथ्वी पर बहुत बाद में आया था मूलि न जाने कब से न जाने क्यों वीही बनती आई है, तो उसके यह का बर्तन हो गया। इस ज्ञान के कारण एक बात स्पष्ट हुई कि उसके नैतिक मानदण्ड भी जिस रूप और उमे जीवन के प्रति एक नये प्रकार की निराशा न पाद दिया और आधिक या अपने तथा उमे यह जीवन। विज्ञान के दर्शन के रूप में आर्ष का ज्ञान उदा जिनमें यह कहा कि वह नवीनतम था वह धारणा का उसके बगल कुछ भी कहा था। विश्व में एक नय भौतिक-दाम दुष्ट को जन्म दिया। मनुष्य के प्रयोग उनके अपूर्व वैज्ञानिक मानना की विनता पद्धि थी उनी को उनमें महत्त्वपूर्ण माना बाकी सबको व्यर्थ कहकर छोड़ना प्रारम्भ किया। किन्तु मनुष्य की प्रकृति के कुछ कार्यवत्ताप ऐसे स्वरूप से आ बलमान विज्ञान गुप्तता नहीं मकत बनाति के उसके प्रयोग

के भीतर नहीं आते थे। उसने उनको त्याग्य समझा और उनकी ओर देखने की बजाय उन पर हस कर टाकता शुरू कर दिया।

यह वा मनुष्य की चेतना का प्रश्न और उस पर भी कुछ साहसी ब्रह्मान्तो ने विचार करना प्रारम्भ कर दिया। साम्य सिद्धांतों की समय में जो नहीं आता उस पर भी शोधकार्य होने लगा। चेतना-शोध-संस्था इंग्लैंड में पहली बार १८८२ ई० में स्थापित हुई। इसी वर्षी विद्या में शोध वा मनुष्य के मानस की विक काल और सुष्ठुत्वों के क्षेत्र में—गति। यह ज्ञान है ब्रह्मात्म्य।

सबसे पहले टीसीपीसी पर काम प्रारम्भ हुआ। टीसीपीसी का अर्थ है—एक व्यक्ति के विचारों का दूसरे व्यक्ति के पास पहुँच जाना और इसमें पंचविद्या किसी प्रकार से भी विचार-बाह्य नहीं बनती। मैं सोचता हूँ और कोई अन्य कभी और ही उस बात को सोचता है। अब यह विचार किया गया कि यदि विचार एक मन से दूसरे मन तक इंद्रियों की किसी प्रकार की सहायता के बिना ही पहुँच सकता है, तो व्यवस्था ही मनुष्य की मानसिक सक्रिया मस्तिष्क को बनावट से अधिक क्षमता रखती है।

टीसीपीसी पर मनुष्य का इतिहास में बहुत प्राचीन काल से ही बिस्वास रहा है। किन्तु उस समय विचार बाह्य करने नाम से देखता समझे जाते थे या कि प्रत्यक्ष ही मान जाते थे।

पहले पहल हिप्पोजिज्म के मामूम से इस विचारबहल की प्रक्रिया के प्रयोग किये गए। डा० ई० ब्राजम ने देखा कि उनकी एक रोगिणी जब हिप्पोजिज्म में बचीभूत रहती थी तब वह अनजाने विचारों के प्रति भी अपनी पकड़ दिखाती थी। डॉ० ब्राजम ने यह टेस्ट सेन शुरू किये कि वह स्त्री उन बिसय बाता का अनुभव कर पाती है वा नहीं जिसका कि वे स्वयं करते थे। उन्होंने अपना रागिणी को ऐसा बगल बिठाया जहाँ से वह जगह देख नहीं सकती थी। जब हिप्पोजिज्म में डूब गई तब उन्होंने गंधहीन टैबुल सॉल्ट खाया और पूछा कि तुम्हें क्या स्वाद आया? रोबिर्सी ने गुरगुर हो टैबुल सॉल्ट का स्वाद बताया और नाम भी बता दिया। उन्होंने इस प्रयोग का बार बार दोहराया। एक अन्य प्रयोगकर्ता ने इसी प्रकार यह देखा कि दर्द का भी रागी उस बिनेप हिप्पोजिज्म को बचीभूत अवस्था में अनुभव करता था। तब प्रयोगकर्ता की जबह जगह नोँचा गया और रोबी ने भी अपनी बेहोसी का हासत में ही बही बही जबह बताई और अपने दर्द बताया।

बार्थ रिचर्ड ने इस परीक्षण प्रणाली में एक नयी बात लाए की । उसने कहा कि विचार को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने के लिये हिप्नोटिज्म की आवश्यकता नहीं थी । उसने अनेक प्रयोग किये और सीधे ही यह तो स्पष्ट हो गया कि हिप्नोटिज्म और टैलीपैथी दोनों का मनोव्यापक प्रभाव आवश्यक हो ही, ऐसा नहीं था । टैलीपैथी की सत्ता प्रलय प्रमाणित हुई ।

टैलीपैथी पर अब तो इंग्लैंड अमेरिका यूरोप में विनोद तथा फ्रांस स्वीडन पोर्लैंड जर्मनी और रूस में भी प्रयोग किये गये ।

छात्र के पक्षों से काम शुरू किया गया । एक व्यक्ति दूर बैठ जाता छात्र के पक्षों से । वह पता देखता जाता । विचार वहन जाता रहता दूर । और पहुँचाने का प्रयत्न करता ।

यही मैं प्रयोगों के रूप नहीं विचारों का । इतना ही कह देना काफी है कि मनुष्य का मन दूसरे के विचार को वह सत्ता है वह जब प्रमाणित नहीं रहा । विचारों का यह आधान प्रधान धामन-साधने होने की कोई आवश्यकता नहीं रहता । यह बात समझ में आती है जो बताती है कि मनुष्य का मस्तिष्क जिस विचारों को धारण करता है, वे विचार उसके भौतिक तत्त्व पर पूरी तरह प्रभावित नहीं होते । किन्तु वर्तमान विज्ञान और मनोविज्ञान क्योंकि इस प्रक्रिया को पूरी तरह समझ नहीं पाते वे इसे कोई महत्व नहीं देते । एक ओर यह बात विचारों के लिए कि यदि मस्तिष्क की बनावट लगाव हो तो । मन ओक होता, और जब वह बात है तो मन को तो मस्तिष्क की भौतिक प्रक्रिया के अनुरूप बनना चाहिये और जब यह बात नहीं है तो उत्पन्न पड़ती है । मस्तिष्क के गिणतमुरंग्र के चेतना का विचार होता है यह तो विज्ञान जानता है किन्तु किस रूप में यह प्रक्रिया होती है यह अभी तक अप्रमाणित या अनजान है । चेतना एक बहुत ही संसिद्ध प्राकृतिक वस्तु है । उसे दिख रहा समय हुआ । वह भी योनि पराध तत्त्व का ही एक रूप है किन्तु वह बहुत ही संसिद्ध गुरुतात्मक परिवर्तन है । और क्योंकि अभी तक हमारे पास ऐसे माधन नहीं है कि उन्हें वजह करें इसीलिए हम मन की शक्ति के इस रूप पर पारदर्श हो जा है ।

राइडिंग के अनुसार पहले भौतिक धारणा सर विनियम क्रम ने यह मत दिया कि संभवतः मस्तिष्क से किसी प्रकार की सहाय या विकिरण होता है जो विचार को एक से दूसरे तक पहुँचाता है । (यह विकिरण मस्तिष्क को वह विद्युत धारण में नहीं है, परन्तु संभवतः इन्हें रेडियो-सहाय का

सा समझ।) जर्मनी के सोबर्बोर्ग का मत था कि मनुष्य में एक चेतना शक्ति होती है जो टैसीपैची में काम करती है, किन्तु यह शक्ति भी भौतिक शक्ति का ही एक और रूप है। स्विट्जरलैंड के डॉ॰ फ्रांजस्ट फोरेन ने टैसीपैची की व्योरी समझने के लिये विस्तार से यह बताया कि परमाणुओं का ही प्रकारांतर से आचानमन होना है। किन्तु इनमें से किसी को भी टैसीपैची के शोबकर्ताओं ने स्वीकार नहीं किया। इनमें से किसी भी भौतिक आधार को अन्तर्गत समझा गया। ऐन्ग्रिम प्राज्ञकता से परे की अनुसूति के लक्ष्य तो कुछ ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत कर रहे थे कि यह मानना कठिन हो गया कि भौतिक मस्तिष्क ही मनुष्य की चेतना का केन्द्र था। भौतिकवाद को यहाँ चुनौती सी मिली।

ऐन्ग्रिमप्राज्ञकता से (ESP) परे की अनुसूति—ए प स की और जब ध्यान गया तो नवी बात सामने आ चढ़ी हुई। पहले से किसी बात का मानुन हो जाना अर्थात् पूर्ण दृष्टि काल-नियम की अवहेलना है।

एक बार बालिका को सवा कि उसकी माता बीमार पड़ी थी। सड़की की धातु वस घान की थी और वह कस्बे की एक पत्नी में ज्योर्मेन्ट्री की किताब पढ़ती हुई बसी आ रही थी। अचानक उस के बारा घोर का हस्य घुस हो गया और उसने देखा कि उसके घर के ऐसे कमरे में जिसे हर्स्टमास में नहीं साया जाता था उसकी माँ फर्श पर ऐसी पड़ी थी जैसे मर गई थी। उसे बिस्कुस साफ दिखाई दिया। यहाँ तक कि उसे फर्श पर अपनी माँ से बरा दूर पर गिरा हुआ बेलकूने की किनारियां से कड़ा कमास भी दिखाई दिया। यह अनुसूति उस इतनी साफ हुई कि वह सीधी पर न जाकर, तुरन्त डाक्टर के पास चली गई और उसने उसे उसी समय घर चलन के सिने कहा। यह साफ घोर पर तो समझ नहीं पाई क्योंकि जैसे उसकी माँ लुन तन्मुन्सत थी और उस दिन तो उस के बारे में यह भी एक बात थी कि वह घर पर ही ही नहीं बाहर गई हुई थी। फिर भी डाक्टर उसके साथ था वहा घोर जब के दोना घर में घुसने वाल के कि सड़की का पिता भी घर था पहुँचा। उस न डाक्टर को देखा तो तुरन्त पूछा यहाँ कोन बीमार है? सड़की ने कहा माँ बीमार है और तुरन्त उन्हें उस हर्स्टमास में न घान नाम कमरे में न गई। वहाँ जैसा सड़की ने देखा था माँ पड़ी थी। कुछ दूर पर ही कमास पड़ा था। माँ के दिन पर कोई साकस्मिक दोरा हुआ था और डाक्टर ने बताया कि यदि वह ठीक इस समय न पहुँचता तो संभवतः वह तथा ओबित नहीं रहती।

जब सब हो गया तो बाणजीव में पिता को पता चला कि जब मइछरी घर से बसी गई थी तब माँ को खीरे ने बेरा था। इस घातकीयक बीमारी के बारे में कोई गौकर भी नहीं जामता था। किसी ने भी इस घटना को नटित होते हुए भी नहीं देखा। इसे ही 'स्पष्ट' दृश्य कहते हैं, और इसे ऐ व म भी कह सकते हैं।

ऐ व म घटनाएँ टेलीवैबी घटनाओं की भाँति ही होती रहती हैं। इस प्रकार के मनुष्य सब नहीं होते। परन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने पर लगता है कि ऐसे व्यक्ति प्राचीन काल में भी थे और आज का विकास बहुत कुछ ऐसे ही लोगों ने किया जिसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा था। किसी भी जाति में धर्मोक्ति के प्रकारों का विकास इसी को प्रभावित करता है, कि वहाँ प्रथम इस प्रकार की घटनाओं को कुछ लोगों ने परिलक्षित किया गया था, धर्मशास्त्र उस प्रकार की बात लोगों में प्रचलित नहीं हो पायी। योगी के इच्छानिये योग के बारे में भारतीय समाज में इतने विश्वास पाये जाते हैं।

मनुष्य का मन अन्तराल (Space) की सीमाओं की खबर करता है इसके तो बहुतेरे उदाहरण हैं। अक्सर ऐसी घटनाओं का ज्ञात हो जाना जिसका कोई साधन नहीं हो सकता यद्यपि आश्चर्यजनक है किन्तु असम्भव नहीं। यह भी केवल-परक घटनाएँ हैं इनसे बहुत कुछ पता चलता है। अर्धन शारीरिक इन्सुलिन कट के इन्सुलिन रिजर्विनवर्ग पर सिक्की पुस्तक में ऐसी घटना का उल्लेख किया है। १७१६ में स्विडनबर्ग ने तीन छोटी मोटी दूर स्टार्कहोम में एक जगह लगी हुई धाग का पोटैन्सर्व में बर्लिन लिया और उन धादमी का नाम भी बताया जिसके पर म धाग लगी थी और यह भी बताया कि धाग जब चुप्पी कई दिन बाद एक राजपूत स्टार्कहोम से आया और उसने इन पूर्ण दृष्टि को बिम्बुम छेक बताया।

ऐसी घटनाओं में दूरी का कोई मूल्य ही नहीं। पन्ना बाद नहीं हो हा। यद्यपि राहूँन की बताई गयी घटनाओं जगती बातें हैं भी गुना है बिम्बु गुनी बातों का तो मैं उत्सख में नहीं जा सकता क्योंकि उनको प्रामाणिकता अभी पूरे नहीं मानी जा सकती। इन घटनाओं का स्वयं जागरण किसी भी अवस्था में हो जाता अर्थात् नहीं है। बिचार तो एक व्यक्ति म दूसरे व्यक्ति तक द्वारा मोल की दूरी पर भी है ही पहुँच जाते हैं, जैसे एक ही घर में इतने समय

होता है। कभी कभी माने किसी शिव की मूर्ति का मान मनुष्य को बहुत दूर पर, हवाई मीलों पर भी हो जाता है।

उद्दीप्त के एक मतावैज्ञानिक शिव ने बताया कि उसका पुत्र अनेक वर्ष पूर्व जावा (हीन) में रहता था। एक बार उसे बतिला कैरोबिमा (उसके स्वयं) के नगर में एक सब-माना निकलने का स्पष्ट स्वप्न दिखाई दिया। वह अपना कुछ उस पर ऐसा प्रहार कर गया, कि उसने घर सिद्ध कर बुद्ध कि उसका पता पार्ने हो सकता था। जब उत्तर आया तो उसे पता चला कि घबानक ही उसकी माँ मर गई थी और माँ की सबबाबा सब निकाली गई थी। ठीक उसी समय के समय उसकी स्वप्न दिखाई दिया था।

एक प्रमुख मन्त्री महोदय जब कुछ वर्ष पूर्व सिद्धपरमेश्वर में आया कर रहे थे उनकी पत्नी को घबानक ही ऐसा कुछ बात हुआ कि शिकावो में उनकी बहन का देहान्त हो गया था। इस तरह के आघात का कोई कारण नहीं था और वह बात इसकी अनवरत थी कि उन्होंने इस बारे में किसी से कुछ कहा भी नहीं। फिर कुछ दिन बाद उनको ऐसा लगा और बड़ी सचवाई से महसूस हुआ कि उनकी बहन को बचनाया जा रहा था। इस बार उन्होंने अपने पति से कहा कि उन्होंने उनकी बातों को सिर सिरा हाताकि उनकी सचवाई पर विश्वास नहीं किया। बाद में जब खबर आई तो बात सब निकली वहाँ तक कि वह भी ठीक निकला कि जिस जिस दिन उनकी पत्नी ने जो जो स्वप्न देखा, वह उसी उसी दिन की घटना निकली।

एक विद्वान विश्वविद्यालय के अध्यक्ष ने एक बार उद्दीप्त को एक घटना सुनाई। उनको वह ड्रुटी मिली कि वे एक भारतीयक वंशिक को जाकर सूचना दें कि उनका पुत्र बीन में घबानक ही मर गया था। जब उन्होंने यह खबर सुनाई तो मृत का पिता मुड़ा और अपनी पत्नी मानी मृत की माता से बोला तुम ठीक निकली। कुछ दिन पहले ही मृत की माँ ने अपने बति स कह दिया था कि उनका बेटा मर चुका था। इसका उसी समय माँ को विश्वास हो गया था।

मुजबाम में ऐसी कई घटनाएँ सुनने में आईं। भूमि की बुरियाँ पबत और सन्तुष्टों के पार पठित हुई बाता का मान भी इस तरह हो गया कि वेन में बहुत पास की बातें हा।

मार्क्सवादी ने दीना कालों को सर्वत्र वर्तमान माना है। मनुष्य ही अपनी दीमा के कारण उनका सारेण वर्तन कर पाता है। वह बहानों को एक मन्त्र की तरह नहीं मानता। उसके प्रस्तावकर्तण का सिद्धान्त भी मनुष्य के

पुरुषाकर्षण के सिद्धांत जैसा नहीं है। आईस्टाइन के मतानुसार पुरुषाकर्षण जड़ता का एक भाग मात्र है। नितारा और ग्रहों की प्रतिबिम्बियाँ उन की स्वभावगत जड़ता से उत्पन्न होती हैं और वे जो मार्ग धरमाने हैं वे निरुपाय-समर्थता के वृत्तीय तारों द्वारा निर्धारित होने हैं।^१

विज्ञान के अपने मौलिक नियम हैं। यदि हम उन्हें मानते हैं तो विज्ञान भी रहता है। धर्मवा हमें अपनी धारणायें ही बदलनी पड़ती हैं।

आईस्टाइन ने इस प्रश्न को बहुत महत्वपूर्ण माना है। मौलिक विज्ञान के अनुसार द्रव्यकाम का सक्रियमाण कैसे हो सकता है? क्या मन में इतनी शक्ति है? यहाँ मैं फिर योग-सिद्धियों के समर्थारो का वर्णन कर दूँ जो नियम ही बहोते आदमी बेच चुके हैं। यदि यह सब सही है तो कहना होगा कि भारत के लोगों में भी एक बात में तो ठरकी की ही। योग इस पक्ष के वैज्ञानिक अनुसंधान का ही तो पर्याय है। आईस्टाइन के मतानुसार प्रयोगों के परिणाम से रही प्रमाणित हुआ कि जिसकी शक्ति बुरी रही यदि मन का ज्ञान अपिष्ट पष्ट रहा। पियर्स प्रीट प्रयोग ने इन विषय में नया ही दृष्टिकोण रखा। हबर्ट पियर्स एक विद्यार्थी पर डा० प्रीट ने प्रयोग किये। प्रीट उन समय मनोविज्ञान का प्रोफेसर था। पहले वह अपने ने एक गज की बुरी पर पियर्स को बिठा कर हाथ में दे प ध-रास के पक्ष लेकर प्रयोग में रत हुआ। धर पियर्स को पक्ष न बिछाकर पूछा क्या तो उसने पक्षों का नाम बताया। परन्तु जब १०० पक्ष की बुरी रही यदि उस कसने अधिक ठीक बताया। यदि यह माना जाये कि उन दे प ध-पक्षों से किसी मौलिक शक्ति का निरूपण हो रहा था तो बुरी के बढ़ने के साथ पियर्स को पक्षों का ज्ञान कम होना चाहिए था। परन्तु हुआ इसके विपरीत। अतिशयसाध्य में शक्ति के जो नियम माने जाते हैं, वे इन प्रयोगों से प्रमाणित ठप्पों पर साधु नहीं होते। मैं कहूँगा कि धमी तक मौलिकसाध्य में शक्ति के जो नियम माने जाते हैं उनकी जानकारी इतनी नहीं है कि वे हर प्रकार की शक्ति (energy) को मात्र सकें। धमी तक जिसकी 'शक्ति' (energy) को देखा है वह सचेतन (conscious) है। विज्ञान-धर्म में जो शक्ति सचेतन (psychic) उद्यति हुई है, वह सचेतन शक्ति की गुणता में बड़ी अधिक नीरसपट

१ डा० आईस्टाइन और ब्रह्माण्ड—विश्व धारमैत्र की सारमी का ज्ञान
बार १९२८ बम्बई पृ० ८६

है। उनमें जीवीविषा—जीवित रहने की इच्छा और रिरिखा—मातृत्व प्राप्त करने की इच्छा—अर्थात् सहकार है। उनका विकिरण अस्तित्व के समुच्चों में होता है, किन्तु जिस प्रणालिक परिवर्तन से चेतन का जन्म होता है, वह कितना संश्लिष्ट है, कितना बहुव्यप है। इनका अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है। सद् अस्तित्व के संसार में समस्त बाह्य विराट् संसार का प्रतिबिम्ब किस प्रक्रिया का फल है। यह प्रतिबिम्ब चेतना का विकास है जो अन्तः कृत्वा जन्तुओं से होकर मनुष्य तक आ पहुँचा है। इसमें जो अंतर्य वर्ष मये हैं उनमें न जाने कितने परिवर्तन हुए हैं। जिस प्रक्रिया से अचेतन (inorganic) का चेतन (organic) में परिवर्तन हुआ, किम प्रक्रिया से चेतन ही अतिचेतन में बढ़ता यह एक सहृदय अध्ययन का विषय है। ऐसे ही विकास-क्रम क्यों बना। अभी तक विकासवादी एक के बाद एक जो विकास में आने वाले प्राणियों (स्वावर जगम) के बारे में बताने हैं वह एक बाधा बनता है, जिसमें गहराई नहीं है।

अपने से पहले युवा की तुलना में यह ज्ञान बहुत अधिक समझा है। परन्तु यह बहुत अधिक सचता परम्परा मनुष्य के लिए बहुत अधिक सचता है। सृष्टि मनुष्य के लिए नहीं बनी। मनुष्य उस सृष्टि की एक बहुत छोटी सी चीज है। एक दिन जन्म की घास को पलायन बुद्धिवादी सीधे लेने पर मनुष्य ने अंधिरा और प्रोमेथियस को प्रति महान माना। परन्तु एवरेस्ट का ज्ञान प्राप्त करने वाला भी उसी तरह महान है। हमारी दृष्टि में पहले ज्ञान से दूसरा ज्ञान महान है परन्तु सृष्टि तो और भी महान है। अपार और महान शोध है। एक विराट् मति उसके बीच में कहीं से मनुष्य प्रारम्भ हुआ। अब हुआ इन सृष्टि का प्रारम्भ और अन्त अब होगा। वहाँ से आरंभ हुआ सृष्टि? या वह धीरे धीरे यह तो भी। तो क्यों? इसे कोई जमाता है? नहीं। अपने आप बनती है। तो क्यों? इसमें मूलतः (causal) सत्य है। तो क्यों? वह बने हुआ? परमाणु के विभिन्न संघटनों से कितने विभिन्न रूप जन्म लेते हैं? कितने प्रणालिक परिवर्तन होते हैं। उनका साराण क्या है? विज्ञान क्या इनका उठ खड़ा है कि इन सबका उत्तर दे सके? नहीं। जय यह है जो हम जानते हैं या सत्य यह है जो स्वयं है और हम उसे धीरे धीरे अपनी सोचार्थों में रूढ़ कर छोड़ने की कष्टा करते हैं? यह जो एक शार्पनिक का मन है कि जो कुछ है हमारे दिमाग में है क्योंकि यदि दिमाग सही नहीं है तो कुछ भी नहीं है क्योंकि दिमाग के बिना हम कुछ भी नहीं जान सके। तो क्या मनुष्य को हम

मूर्तता को मान लेना चाहिए ? जो बात समझ में नहीं आती उसका पूर्वाग्रह से निरन्तर करना क्या ठीक है ? उदाहरणार्थ धक्ति के विकिरण की हो बात सी ज़ाह । वैज्ञानिक भौतिकशास्त्री इसका निरन्तर करता है कि भौतिक-धक्ति के नियम की चुनौती देने वाली बात सत्य नहीं हो सकती । दूसरी ओर ऐ प घ माने के मत से भौतिकशास्त्री कुछ नहीं जानता मग को यह किया नितांत अ-भौतिक है । भौतिक और अ-भौतिक का यह द्वन्द्व व्यर्थ है । मनुष्य एक है और उसी में अस्तित्व है जो भौतिक है और उसी में मन है जो अभौतिक सा समता है । इसका सङ्गठन व्यर्थ यह है कि अभौतिक और भौतिक का यह भेद बलुत्त हमारे अज्ञान का कारण है । मूलतः दोनों एक हैं अपने पुरात्मक परि वर्तनों में अतत्त्व ही अस्तित्वकपी है । इसकी पूरी जानकारी अभी हमें है नहीं जो अभौतिक को पहले मानकर भौतिक को उसका परवर्ती रूप मानते हैं वे करनेवा से अधिक काम लेते हैं । अतत्त्वोपत्ता के ही अरविह की गति यही मानते हैं कि मनुष्य ही विकास की सर्वोत्कृष्ट रचना है । इसीलिये भौतिक ने मन में बहुत कम से बहुत की ओर विकास किया और अब मनुष्य के चेतन होने पर अर्थात् बहुत ऊर्ध्वचिन्ता से निम्न आयेगा वह परमात्मा में भीन हो जायेगा । यह विचार केवल मानव को उसी भौतिक शासता का नाम है, जिसकी दूसरी गति मार्क्स में है, जो कहता है कि भौतिक ने विकास कर पुनरात्मक परिवर्तन किये और यही सृष्टि का अंतिम रहस्य है । अब तक मनुष्य का विज्ञान अचेतन से चेतन और चेतन से अति चेतन बनने की प्रक्रियाओं की नहीं जानता तब तक तो हम कुछ भी निश्चय से नहीं कह सकते ।

नियंत्रित प्रयोग आये अत्यन्त समता है । अब के २५० बज की दूरी पर रहे सब भी १०० बज की दूरी के से ही उत्तर मिले, पर फिर कुछ बढ़बढ़ी हो गई और उसकी कोई भी व्याख्या नहीं की जा सकती । फिर उत्तर गमन हो जते और साध्य ठीक नहीं निकल पाया ।

टर्नर अकबरे प्रयोग ने यह दिखाया कि घंटे ही दोहों व्यक्तियों में पासना रही रहा बाद परन्तु ग्यों ग्यों रिग बीतते जाते हैं परस्पर विचार करने की शक्ति कम होती जाती जाती है । इसका कारण भी स्पष्ट नहीं है । काल्पु इन सब प्रयोगों में बताया है कि दूरी के कारण विचार पढ़न में कोई बड़ियाई नहीं बढ़नी । मनुष्य ऐसा कर सकता है । टर्नर अकबरे प्रयोगों के समय दोनों के बीच शान्ति सी भीन का प्रसन्नता था । भौतिकशास्त्र के ज्ञान नियमों के अनुसार अभी तक विचार विकिरण की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती । ऐ प घ

प्रयोग तो हजारों मील के फाससे बीच में रखा कर भी किये गये। प्रयोग कक्षाओं के दो पक्षों की ए प ध सागर्भ्य का व्यक्तिगत बल प्रसरण बनना प्रतीत होता है, परन्तु दूरी का कोई व्यवधान नहीं पड़ता। द्वितीय महापुरुष के प्रारंभ होने के ठीक पहले जगदीश चरहम 'स्पेक्ट्रलिटि' प्रयोग किया गया। जगदीश बुयो-स्लेविका में है। इसमें ४००० मील की दूरी पर भी ए प ध प्रयोग सफल रहा। ए प ध प्रयोग में ए प ध शक्ति (Energy) विकिरण बना किसी भौतिक व्यापार से एकता नहीं? बात साफ नहीं हो पायी। चिकन व्रीट प्रयोग में 'स्पेक्ट्रलिटि' प्रयोग करते समय बीच में पत्थर की चार बोबारें थीं तब एक पत्ता लीकता था दूसरा घूमता उन्हें पहचानता था। रीम प्रयोग में एक बहाली धीरे कई घर बीच में थे। टर्नर बबलने प्रयोग में तो इन दोनों के बीच में कई पहाड़ थे। हुआ वातावरण भरती इनके क्या कम व्यापार थे। वह कैसी महार हो सकती है जो लाख के पत्तों से निकल कर दूसरे के मन तक पहुँच सकती है? फिर समुद्र के पार अब शक्ति ठारों से निकलेगी जो क्या पहुँचाया हुआ दूर दूर अपने बप की समय-समय शक्ति फेंक सकेगा? पक्षीस पक्ष इकट्ठे हों तो उनका एक पक्ष बप बनेगा या सबका समय-समय शक्तिरूप होगा? न। भी नहीं कि पक्ष या पहुँचाने वाला एक ही स्थिति में रहे न। कि किसी दास तरह का नियम उनसे माना जा सके। कभी पक्ष हवा से रचे न। कभी मेज पर धरे पए धीरे पहुँचाने वाला भी तरह-तरह से बिगड़ा गया। बीच में समुद्र भी रहा पर्वत भी हिम्मु इसमें कोई बाधा नहीं पड़ सकती।

बिना पक्ष इत्यादि तो दूर धीरे में कुछ प्रयोग किये गये। एक व्यक्ति बैठ कर रोबता है धीरे बहुत दूर दूसरा व्यक्ति उसे जान लेता है। क्या अब से किसी शक्ति का विकिरण होता है जो जाकर अन्यत्र स्पेक्ट्रलिटि बन जाती है। भौतिक विज्ञान ऐसी किसी शक्ति को नहीं जानता।

एड्विन ने स्वीकार किया है कि अब अब कि यह प्रसंग हीजा है कि दूरी का मन मन के ऊपर बाल प्रभाव नहीं पड़ता तो अवश्य ही हमारा प्रयोग एक यह से दूसरे यह तक भी किया जा सकता है किन्तु सभी इनका कोई सापेक्ष नहीं है। भौतिक ज्ञान मन की प्रक्रिया और गामर्भ्य को समझे नहीं समझा सकता। समझा भी गयेगा या नहीं यह भी अनेकालप ही समझा है।

अन्त में मैं यह चाहता हूँ कि जो मन दूरी का जीत सकता है, जिसे वर्तमान भौतिक विज्ञान नहीं समझा सकता, वह अपने समस्त समकालिक बनत है

व्यक्ति समर्थ और विचित्र है। यदि धीरे प्रवाह कह कर जिसे हम देखते हैं
 वह वास्तव में समय का हमारा संबंध है, वह सम्बन्ध है जिसमें एक
 वस्तु का दूसरी वस्तु से सामना होता है और उस संबंध को हम
 'समय' कहते हैं। सापेक्ष दृष्टि से देखा जाय तो 'समय' अपने आप में
 कुछ नहीं।
 डॉ० आइन्स्टाइन के अनुसार

डॉ० आइन्स्टीन के मतानुसार ब्रह्माण्ड एक अपरिवर्तनीय और अचल
 चीज़ नहीं है बल्कि स्वतंत्र पदार्थ स्वयंसे विकसित हो रहा है। इसके
 विपरीत यह एक आकृति बिहिन ब्रह्माण्ड है, इसकी कोई निश्चित सीमा
 नहीं है। यह सर्वज्ञ और विमिश्रणमय है एवं इसमें परिवर्तन अथवा बिहिन
 सम्भव है। यहाँ भी पदार्थ और शक्ति है। ब्रह्म ब्रह्मण्डता में अन्तर्धान पहुँचता
 है। जिस तरह माय में तैरते मछली अपने ध्यान-ध्यान के पानी को वापसी
 है। उसी तरह एक तारा या पुच्छम तारा या गैलिलियोस उस विशाल ही
 ब्रह्माण्ड में होकर वे घुम रहे हैं, होर होर ला देने हैं। (डॉ० आइन्स्टीन और
 ब्रह्माण्ड पृ ६२)

इस प्रकार स्पष्ट होना है कि

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विज्ञान ने मनुष्य को नयी चारणा दी है। किन्तु मन के विषय में राहुर्न का मत विज्ञान की धीर धारणा से आगे है। मनुष्य का ही तो मन बाप के व्यवहार को भी नहीं मानता। यदि यह सत्य है तो क्या धारण्य नहीं है। राहुर्न का मत है कि यह जो धमधम भा बम तार लीकता है, इसको हर एक सम्पत्ता में हम देख पाते हैं। इसी की मविष्यवाणी कहते हैं। प्रायः पुत्र में जब भी पैगम्बर या मंत्र हुए हैं उगहने ऐसी ही बातें नहीं हैं जो बीजे समस्त में नहीं आती। मीरुदा अन्तर्वासी इसे पकड़ नहीं पाती। त्रिभुलि मविष्यवाणी की है धीर त्रिना इस विषय में पकड़ नहीं रहा है। के लोक में पूज्य रहै है। ऐसी मविष्यवाणि के सदैव दीने अन्तर्वा के रूप में गिदा गया है। किन्तु मविष्यवाणी धीर धारणा की

हो गई है। प्रायः बिहारी भी इसका सित सागर हो गए हैं।

प्राचीन विप और भारत ने "म विषय में सोच की थी। किन्तु भी प्राचीन और मध्यकालीन विचारपाठ भेष और ग्राह्य के साथ था म सभी हो फिर भी हमें मानना पड़ेगा कि विज्ञान हमको यात्रा के बाद विपर मुह रहा है सभी का सबसे पहल भारत ने टटोला था। मनुष्य के भेजत था है, क्या है हमको सत्ता हमको सबसे पहले जानने की श्रेष्ठा करने का भेष

भारत के मनीषियों को है। इस दृष्टि से भारत विज्ञान में एक सच्चा स्तरीय ज्ञान का जनक है। संभवतः इसी में अधिक गहरी पैठ करने के कारण भारत में पुनर्जन्म की विचारधारा ने इतना गहरा जर जमाया। इस विचार को प्राचीनों ने तभी माना होगा जब यहाँ ऐसी धम्माएँ देखीं सुनीं होंगी। फिर उस विचार को अपने जीवन और समाज पर वे जसी रूप में उसे लागू कर सके जो उनकी सीमा के बाहर संभव था। दास प्रजा को ताड़ने और सिद्धांत-कल्याण और मानववाद के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने में इस पुनर्जन्म की भावना का कितना बड़ा हाथ रहा है, यह कौन नहीं जानता? जीवन एक अभिविज्ञान प्रवाह है यह आत्मा के आवागमन के स्वरूप में ही स्वीकार किया गया।

काल में पहले कारण है, फिर उसका परिणाम। अभिव्यक्ताधी में पहले परिणाम आता है बाद में दिखाई देता है उसका कारण। ऐसा कैसे हो सकता है? क्या परिणाम पहले से मौजूद है? क्या वह उस समय में है जिसे हम 'अभिव्य' कहते हैं? तो क्या 'अभिव्य' पहले से है, पर हम उसे तभी देख पाते हैं जब वर्तमान का रास्ता पार करके वहाँ पहुँचते हैं? कैसे हो मीस पर पेड़ तो है परन्तु वह हमें अब मिलता है, अब हम वा मीस जा लेते हैं? तो क्या काल 'एक' है और वह हमारे घूट बस मान और अभिव्य के भेद प्रत्यक्ष इसीलिए है कि हम चूँकि सृष्टि के एक अंशमान हैं, हमारी दृष्टि जगत् को पूर्ण रूप से देख नहीं पाती?

पहले भौतिक जगत में ज्ञान जमती है, अब हमें रोचनी दिखती है। पर वह कैसे हो सकता है कि रोचनी पहले दिख जाये और ज्ञान बाद में जसे?

इसका कारण यही है कि हमारी दृष्टि हमारी चेतना बहुत छोटी है। ज समझ को नहीं देख पाते क्योंकि हम इस सबके बाहर नहीं भीतर हैं। हम जो समझ रहे हैं कि ज्ञानात्मक विनाश की धार धीरे-धीरे जा रहा है, बुझ रहा है, यह तो हमारी दृष्टि है। यह जो कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि जो बुझ रहा है वह अपने भीतर से ही नयी शक्ति विकिरण करके फिर जन्म होता जा रहा है, वह भी एक आधुनिक सत्य है, क्योंकि संघ दृष्टि है।

अभिव्य-वर्तन प्रथम से कैसे हो सकता है? हमारा बस मान विज्ञान मध्य से समझ में नहीं सकता। जितु विज्ञान में 'अर्थमय' 'महा' कहा जा सकता। जें जें परिणाम दिखाई देने पर उसके लिये व्याख्या ढूँढ़ना आवश्यक है। पर हम नहीं निराल सचय, तो हम जने व्यर्थ या अर्थमय नहीं कह सकते,

हम यही कह सकते हैं कि हम उसे जानने नहीं, अभी समझने नहीं। जब तक हम बुद्ध की चमक को नहीं समझने के तब तक हम यही समझने के कि भीड़ में भी धाम सप्त सप्त है और उसे दिव्य चमकदार समझने के। सब तो यह है कि प्रकृति इतनी बहिष्कृत्य है कि हम उसे जितना जितना सोचते हैं, देखते हैं जितना ही विस्मय होता है। नहीं जानना हमारा धाम है, प्रकृति हमके प्रति निरवेष्ट है कि हम जानने हैं या नहीं। हम एक बात ही धारण्यजनक जगह रहते हैं।

विज्ञान की भी नये सत्य की धारणा को स्वीकार करना ही होता। यही कारण है कि राहुईन यही कहता है कि अबिष्यवाणी यदि विज्ञान के घटपट मान ली गई तो मनुष्य के विचार में गहरा परिवर्तन आ जावेगा। यहाँ मैं यह कहूँ कि अबिष्यवाणी करने वाला व्यक्ति भी सर्वज्ञ नहीं होता। प्राचीन संतो पर्यवरो ने अबिष्यवाणियों की परंतु वे यह सत्य भी नहीं बता सके कि पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है।

यह अबिष्यवाणी और धर्म को घसत-घसत करके देखना आवश्यक है।

राहुईन का एक योग्य और विज्ञान विद्यार्थी (जो डॉक्टर हो गया) एक दिन उसके पास आया और जिस बोझिल हाउस में वह ठहरा था वहाँ घटने वाली एक घटना उसने सुनाई। उस घर में एक ताजा बंफति या योमान ध धीर धीमती की। उनके यहाँ धीमान् ध के एक काबा भी रहते थे। राहुईन को जब घटना सुनाई गई, अपने दो दिन पहले रात को धीमती ध जापी क्योंकि बु स्वप्न में धीमान् ध विस्मय रहे थे। जब वह उन्हें जमाने में समर्थ हुई तो वह बहुत उत्तेजित थे और उन्होंने अपने उन समानक गुपने को सुनाया जिसके कारण वे उत्तेजित थे। उन्होंने कहा—मैं एक लच्छे कमरे में था और ऊपर रोशनी लगी थी। एक मेज बीच में थी जिस पर एक बाइनी सीमा मेडा था उसके पुत्रे ऊपर मुझे थे और वह बाइर से टेंबा हुआ था। फिर कुछ बानिक प्रतीक से बिस्ते जिसका तात्पर्य मृत्यु थी। प्रकृति भी घाहति घर पर हमने के बपड़े सींच रही थी और उस घाहति का पुराय बप था। उनमें धंत में बपड़ा सींच लिया और फिर उसको वह धाय की बनी लपटों में मिट्टर जाता गया। बत्रोका यह हुआ कि धामने हो दिव्य धीमान् ध को उनके धामने से प्रसन्नता सुनाया गया। वे धोपरेगन के कमरे में गये। उन्होंने पुने कि पहली रात का गुपना सापन था गया—बही सपन कमरा—ऊपर की रोशनी—मेज बीच में—ऊपर मुझे पुत्रों कासा धारपी उन पर मोपा

ब्रूमा और उसके मुक्त इतना चुटीला और चायल होने से विस्मय हो गया था कि यह मानना कठिन था। तब श्रीमान् घ को बताया गया कि उसके बाबा ही घायल हुए थे। उनको मोटर से उतरने पर एक और मोटर में टनकर से घायल कर दिया था। श्रीमान् घ के व्यक्तित्व से जाने के पहले ही बाबा का देहांत हो गया।

समय में यह व्यययमान केवल इन्हीं से तो प्रमाणित नहीं होता। घात इस पर प्रयोग प्रारम्भ हुए। अंतरात्म्य (Space) से निरपेक्षता का घर्ष का काम में निरपेक्ष होना क्योंकि अन्त क्या है? काल है अंतरात्म्य के परिवर्तन की एक क्रिया अर्थात् अंतरात्म्य में जो भौतिक वस्तुतत्त्व है, उसे काल की प्रावण्यता होती है। घात एक के बाहर रहने का घर्ष का दूसरे के भी बाहर रहना। जिस प्रकार अनुपस्थित (गुप्त) का ज्ञान होता है उसी प्रकार भूत और अविद्य का भी होना चाहिये। घात इस पर प्रयोग प्रारम्भ करने लगे। घात यहाँ में उन प्रयोगों का तो उत्प्रेषण तुम्हें विस्तार से नहीं करना चाहिये। सोम-योत्सव प्रयोग में एक व्यक्ति एक कमरे में ताम्र के पत्ते देखा रहा था। दूसरे कमरे में दूसरा था जिसने पूछा क्या कि वधन नामे कमरे में बैठा आदमी किस पत्ता को देख रहा था। उसने बताया और अचिन्त ही कहने लगे कि वह मान्य क्या देखेगा। जो पत्ता चुना नहीं गया था, जो चुना गया बाह्य में, उसने पहले से बताया कि वह अनुक्त चुना जायेगा।

राहूनि में एक बहुत महत्वपूर्ण बात की तरफ इशारा किया है। वह यह कि यदि पहले से बात का पता चल सकता है, तब यह बाहिर होता है कि हर चीज पहले से तब है कि माने क्या होता? इसका मतलब है कि जहाँ की बात बहो रही। अथवा किसी को पहले से पता भी चल जाये कि वह देन लड़ने में लड़ेगा तो भी वह उसे राह नहीं सकता। इस बात के प्रमाणित होने से अनुपस्थित के विमल को अमानक आत्मवाद बहक गया। लेकिन मेरे दिमाग में एक और बात आती है। वह यह कि यदि पहले से पता तब है तो अविद्य तो है ही वह हमारे नामने तब जायेगा जब हम उन तक पहुँचेंगे। पर हम प्रज्ञा के अंत में घात संयुक्त को नहीं देना चाहते किन्तु इतना घर्ष है कि समय और दिक् बन्धु के रूप में जो हमारी प्रकृति हृष्टि क कारण से दिखाने के हैं, अमान्य के पूर्ण हैं।

पूर्णता का प्रारम्भिक रूप देखना आदिम समाजों में भी मिलता है किन्तु नहीं पूर्ण की सीमा बहुत सीमित रहती है। भारतीय अधिवासों में पूर्ण को दर्शन

के क्षेत्र में काफी महत्व दिया था। परन्तु उसका व्यवहार बरा में क्या स्थान था ?

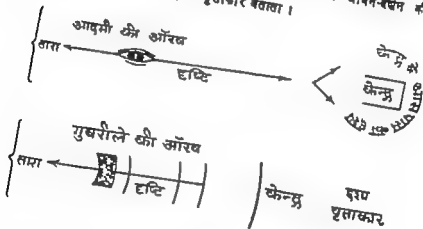
योग के क्षेत्र में उसको देखने की चेष्टा हुई थी।

हमारे धर्मापिणों ने कहा है—विकास का अर्थ तीनों जालों का बढ़ना। वैज्ञानिक प्रयोग तो यह ही रहे हैं, किन्तु पुराने मनुष्यों ने भी यह पहचान लिया था कि हमारी दृष्टि विभाजित है अर्थात् अलग-अलग अभिव्यक्ति है। योग मार्ग के सिद्धों ने इसी का प्रयोग किया है और उन्होंने विज्ञान के सबसे कुछ भाग को परखा है। योग सिद्धि ही हमी के प्रयोग और अनुभव है। योगी मन के संभव से हेतु का प्रयोग करके ऐसे चमत्कार दिखाता है कि उन्हें देख कर सब अविश्वस्य होते हैं। कहते हैं योगी विकास होता है। अर्थात् वह ऐसी दृष्टि प्राप्त करता है जिससे विकास के व्यवहार हट जाते हैं और वह मन की महानता को पहचान कर सर्वगत एकत्व को पहचान लेता है। भूतत्त्व (matter) हमें दृष्टि के कारण विकास (Space Time) में विभाजित दिखाई देता है, किन्तु योगी को ऐसा नहीं लगता।

योग-मार्ग के सात सिद्धांत प्राचीन परिचया में इन में उन पर क्या ही अध्ययन हो तो जान क्या क्या क्या उद्घाटित नहीं होगा ?

तो क्या मन असम है और भूतत्त्व सम है यह सही है ? धार्मिकों के यह बड़ा माछे मसिदा है। कौन पहले आया ? पुराने धार्मिकों के हिमाय में मन। विकासवाद के हिमाय में मन आया बाद में। श्री धर्मिक के हिमाय में मन में धर्म को भूतत्त्व के रूप में प्रगट किया। फिर भूतत्त्व में प्रमा-विकास करके 'मन' तक की अवधि प्राप्त की और अब मन को उन्मूलित होकर महाप्राण में लीन होगा चाहिए। परन्तु मैं सोचता हूँ कि तादा ही धार्मिक अब टकराने हैं तब धर्म धर्म हटि-कोल से, जो बाड़ा बहुत के इस छोटी सी पृथ्वी के बारे में जानने हैं उसीसे वास्तव सत्य हैं। परन्तु वे नये भूत जाते हैं कि यह पृथ्वी इन ब्रह्माण्ड में कितनी छोटी है। वैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं कि सम्भवतः हमारी छोटी पृथ्वी तो क्या हमारा सारा सौरमंडल भी ब्रह्माण्ड में बिल्कुल अल्प महत्व नहीं रखता। हम तो जीव के निवासी हैं इन ब्रह्माण्ड को राजपासी मा है क्या ? वेद भी है क्या ? क्या वही भी कोई रहस्य है। विकास यदि हमारी विभाजित दृष्टि का फल है, तो समझता मैं विकास भूत बंध होते हैं ? क्या यह सांसारिकता (Dynamic) वास्तव में स्थिर है ? यदि अवश्य न। वर्तमान में देखा जा

सकता है, तो भविष्य तो पहल से है। भविष्य गति हमारी है वस्तु स्थिर है ? कौसा विरोधाभास है ? फिर स्थिर को हम गत्यात्मक क्यों समझते हैं ? बेबो। एक मोटी दीवार है। वह स्थिर है। पर क्या वह सचमुच स्थिर है ? प्रत्येक परमाणु गतिमय है। बीबास से सीरे सीरे निरन्तर परिवर्तन चल रहा है। घट हमें एक गतिमय वस्तु भी स्थिर लगती है। हम यदि रेल के डिब्बे को सिद्धियाँ बन्द कर लें तो चलती रेल की गति को भी हम नहीं जान पाते। यानी यह सब हमारी दृष्टि की सीमाएँ हैं। कहते हैं कि पुचरीले की सारी सीख ही पुचसी होती है। उसे एक ही समय में घृताकार दृश्य होसता है, जबकि हम सीबा। घपर पुचरीला बोलता तो वह सबीन जीवन-दर्शन की व्याख्या करत समय हर वस्तु को घृताकार बताता।



चित्र ४१

मन की एक शक्ति है स्मरण। भविष्य 'स्मृति' का काम में पीछे की ओर गति है। भविष्यज्ञान हमारे विपरीत मन की वह शक्ति है जो भविष्य में न जाती है। उस पर इतना धारण क्यों किया जाये ?

कितना यह मन और भौतिक जगत क्या घसत घसत है ? भौतिक जगत और मन वस्तुतः एक ही के घुगतात्मक परिवर्तन हैं—वस्तुतः जो है वह एक है। जिस प्रकार भौतिक जगत में घुगतात्मक स्मृति है और शक्ति (Energy) घुगता उसी प्रकार यह हृदय जगत चल रहा है। और भवतोयाला सब एक है। पर यह क्यों है ? क्यों जान ? यह मानव-जीवन का नाटक सचमुच घसत क्या महत्त्व रखता है ? क्या जाने ? कोई इस दृष्टि के भीतर और भी ने

को बता रहा है ? कौन जाने ? कोई नहीं है । तो भूतत्त्व है, प्रकृति है, ब्रह्मता है सब अपने आप, पर क्यों ? क्या जाने ? यह कहाँ से आया ?

क्यों ? कैसे ? कहाँ ? कब ? कहाँ से ? कहाँ तक ? कब तक ? क्या है ? यह सब मनुष्य को सीमित बुद्धि के प्रश्न हैं । सम्भवतः अविद्यात्मक मन में यह प्रश्न नहीं है । जहाँ हुआ है, होगा नहीं है वहाँ कब ? कब तक ? कहाँ तक ? का प्रश्न ही नहीं । जहाँ विस्मयीता नहीं वहाँ क्या जाने क्या निकलेगा ? मैं समझता हूँ कि अभी हम सत्य के मानवीय सापेक्ष ज्ञान के बाहरी चरे तक भी नहीं पहुँचे हैं । पूर्णसत्य तो हम जान ही नहीं सकते चाहे धर्म और संप्रदायों के आचार्य कुम्भ में कहें चाहे दर्शन और विज्ञान के आचार्य कुम्भ में मारें । मार्क्सवादी संप्रदाय के लोग कितना भी धर्म क्या मारें परन्तु मेज की चींटी पूरी मेज कैसे जाल सकती है ?

राहुर्न ने इतिहास किया है कि मन यह काम कर सकता है । परन्तु मैं समझता हूँ कि मानव मन भी उस 'पूर्णसत्य' को अपने आधिक्य रूप में ही ग्रहण कर सकता है ।

परन्तु यहाँ मैं राहुर्न की बात ठीक समझता हूँ जब वह कहता है कि हमें तो नदी नदी बातों को बिना पूर्णसत्य के निष्पक्षता से देखना चाहिए और उन्हें अपने तर्क से छुड़ाने के बजाय वस्तु तथ्य देख कर अपनी धोती बनानी चाहिये ।

मन किसी वस्तु—भूतत्त्व पर अपना प्रभाव डाल सकता है । वह प्रमाणित हुआ है । यदि मन उस अस्तित्व के भूतत्त्व से अधिक स्वतंत्र है, जिसमें वह जन्म लेता है तो हमका धर्म है कि मन की प्रक्रिया का प्रकृति में अपना स्थान खोजा नियमन है । विभिन्न बालुछा पर प्रयोग किये गये । मोटा सौदा इत्यादि कोई भी उससे नहीं बचा । ए व य से मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्रत्येक का संबंध है । म आ प्र में प्रमाणित होता है कि मन का वातु के घनत्व पर भी प्रभाव पड़ता है । यदि मन अमीश्रिक है, अमीश्रिक तरीके से काम करता हुआ भौतिक वस्तु पर भौतिक प्रभाव डालता है तो यह प्रमाणित होता है कि परस्पर संबंध हुआ हुए भी मन भौतिक वस्तु से कुछ स्वतंत्र भी है । ए व य और म आ प्र परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं । हिप्पोटिज्म का भी इस विषय से संबंध है । मुलान यह सब अलग अलग नहीं है ।

अब यह भी पता चलता है कि ए व य और म आ प्र तथा हि के निम्ने

भौतिक तत्वों से बने मस्तिष्क का स्वस्थ होना अधिक आवश्यक है। इससे प्रत्यक्ष होता है कि मन जिस मस्तिष्क में काम लेता है वह स्वस्थ और भौतिक होना चाहिये।

राईसन ने बताया कि प्रार्थना जैसी एक विस्तृत एक्यत्रता में भी भौतिक तत्व पर प्रभाव डालने की क्षमता है, जिसे प्रयोगों में देखा जा चुका है।

इस प्रकार पता चलता है कि मन समय और अवस्थान के बारे में बाधा है। भौतिक साधारण पर सीमित रहता है। बल्कि है। अधौतिक या अनन्तर भी भौतिक प्रभाव डालता है, उसकी प्रक्रियाएँ बाध नहीं हैं। ऐसा भी होता गया है कि स्वप्न के माध्यम से मनुष्य ने मुस्लिमों को सुसज्जित किया है। एक व्यक्ति के मर जाने पर उसकी बसोबस से उसके पुर्णों में आपदा का बंटवारा हो गया। दो वर्ष बाद एक पुत्र को स्वप्न हुआ कि उक्त बसोबस के बाद की पिता के हाथ की निशानी बसोबस और है जो एक सीमेंटकोट की जेब में रखी है जिसमें बसोबस की सत्ते ही और हैं। वह उस बसोबस को जानने पर दौड़ कर कचहरी में ले गया और अदालत में उसकी जाँच करके पिता के हस्तलेख को प्रामाणिक माना।

इसी तरह डॉक्टर धफरीका के निवासी एल्मीशनडाबा के बारे में डॉ॰ सार्पेन्बर ने लिखा है कि वह पक्षी से बसा देता था कि क्या होते वाला है।

इस प्रकार सटीक वास्तव में प्रतीत नहीं रह जाता। विज्ञान विद (Spence) में यह वर्तमान बन जाता है।

मन समय और अवस्थान का ज्ञान नहीं। वा भविष्यवाणी समय नहीं मयती है किन्तु भविष्यवाणी के जो रूप हम जानते हैं वे वास्तव में वा मनु संधान के क्षम में आदिम ही कहला सकते हैं।

मन के मन से माग बन जाता है जो मनुष्य को संबन्ध ऐसी दृष्टियाँ देता है जो उन चमत्कार बना देती हैं। यह जो मन के नियम हैं।

यह रही बाध मनुष्य के बाद केनना के किमी घंटा का बन रहता। शरीर-विज्ञान इसके प्रमाण नहीं देता। किन्तु शरीर-विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान क्या संभवुच मन की समझ को सुलभ करे हैं। सारे शरीर के मनमूच रक्त प्रवाह परन्तु देने के बाद भी जो डॉक्टर दवाय नहीं कर पाते हमका कारण ही यह है कि वे मनुष्य के सबसे महत्वपूर्ण भाग मन का अध्ययन समझ शरीर में सम्मिलित नहीं कर पाते।

मनोमय कोष भारतीयों में अलग से माना गया है। धार्मुर्दे में उसको व्यक्तिगत तो ही गई है किन्तु उसकी वास्तविक व्याख्या केवल धार्मिकों ने ही करने की चेष्टा की है।

किन्तु यदि सबकुछ पूर्वनिश्चित है तो स्वेच्छा कहाँ है? यदि सब नियत है तो स्वेच्छा व्यर्थ है। यदि स्वेच्छा है तो वह कितनी है? वह व्यक्ति रूप में है, जिसे एक निरात पूर्वनिश्चित नियम के अंतर्गत अज्ञान पड़ता है। धीठा के नियतिवाद और पुण्याय का बहुदृष्ट आ गया जिसमें अपने को निमित्त मान समझने की बात है। बीड़ों बाइएलों और जीनो का कर्मवाद तो कार्य कारण कार्य का चक्र है किन्तु जहाँ काल अविद्यात्म्य वह तो सब पहले से है, फिर व्यक्तिगत कहाँ रहा? किन्तु हम यह भी देख चुके हैं कि मन का भौतिक तत्त्व पर प्रभाव पड़ता है। वह ज्ञात भौतिक नियमों में अज्ञात रूप से परिवर्तन भी कर आसता है। इसका अर्थ है कि 'पूर्व निश्चित' में भी 'परिवर्तन' हो सकता है। यह फिर बड़ी उत्तम बात है।

धार्मुनिक काल में विज्ञान अज्ञान से जीव की उत्पत्ति मानता है यद्यपि धार्मिक आदर्शवादी इसे नहीं मानते। धी अर्थिक की सीमा पर में पहले ही निश्चय हुआ है। यदि विज्ञान का तर्क माना जाये तो जी में कह चुका है बड़ी यहाँ फिर कहना होया—अजीब से जीव आया जीव त अज्ञान। अजीब के भौतिक पदार्थ के अन्तर्गत रूप में हो बात थी—वह अपने मन रूप में स्थूल या धीर सूक्ष्म रूप में शक्ति। इनके अन्त से—एक हा व दो कपा के अन्त से जो अज्ञात गुणात्मक परिवर्तन हुआ उससे अजीब (Vibranic) से जीव (Organic) की उत्पत्ति हुई जो एक का परन्तु इनके भी रूप रहे स्थूल रूप में इससे पतल या सूक्ष्म रूप में इसमें शक्ति थी—आण। इस जीव के एक अन्त में गुणात्मक परिवर्तन हुआ तो केन्द्र (Psychic) अन्त। यह भी एक ही था किन्तु हमने भी अन्त था—स्थूल रूप में धीर पतल धीर सूक्ष्म रूप में शक्ति—केन्द्र। सूक्ष्म यह एक ही अजीब के अन्त का निरंतर विकसित अन्तःतमक गुणात्मक परिवर्तन है। तब हमारे सामने एक ही के तीन रूप हैं, तीनों का अन्त नमस्वित्र रूप है धीर तीनों परस्पर मिलते हैं। इसलिये इसमें किन्ता अमी धीर जानने की है यह कौन बता सकता है।

अब प्रश्न यह है पहले अजीब ही था या जीव हो या या केन्द्र ही का यह कौन बतायेगा? आ भी विज्ञान मनुष्य ने बताया है वह हम धीर

पृथ्वी पर रहकर ही। और पृथ्वी ही तो सृष्टि का केन्द्र नहीं है। फिर कैसे पता चले कि विराट सृष्टि में कम कैसे उदय हुआ? हुआ या नहीं। वैज्ञानिका का मत है कि काल मापन के जो हमारे दृष्टिकोण हैं वे सूर्य से हमारे संबंधों के प्रतीक-माप हैं। और इस विराट सृष्टि में सूर्य का ही क्या महत्त्व है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम ऐसी जगह या घरे हैं, जहाँ हमें उस बौद्धिक वास्तव का अन्त करना होता जो अपनी सीमा के परे की बात को बम त्कार कह कर टालना चाहती रही है। बमत्कारों का बुध तो अब आया है।

अभी तो विज्ञान ने अजीब और भीषण का अध्ययन किया है और चेतन का तो अध्ययन ही बाकी है।

यह निश्चित है कि भोव-मार्ग के द्वारा इस पक्ष को देखा जा सकता है और संभवतः ज्ञात इसमें आगे बढ़ कर यह दिखावे।

मनुष्य में इस चेतना का विकास है यह का विकास। उस अहं की अतिमय सुपाकार से अटकन ही रोनों की जड़ है। अहं, जीवित रहने की आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है उसे भय होता है। मम जीवन का पर्याय है। अस्तु अन्तिम सत्य इसका क्या है? जन्म जीवन मृत्यु—काल के तीन रूप। उस वह जीव अजीब चेतन का मुख जो परमात्मा है मोक्षिक है, जो स्वतः और सुखमोगी है—जो ही संभवतः समस्त सृष्टि में है और अपने विभिन्न रूपों में है, वह जो है—कहाँ में आया? कहाँ है? क्या है? क्या अपने समस्त रूप में वह स्थिर है? किन्तु उसमें हमारे के गुणात्मक परिवर्तन हैं। सुख प्राप्त प्राप्ति, पति देखते हैं? या कोई अविवक्षिता नहीं है, तबकुछ आकस्मिक है और अनिश्चित की ओर जा रहा है? मन कहता है कि काल अविवक्षित है तब तो निश्चित है। फिर पुराणार्थ या स्वेच्छा कहाँ है? एक बात है कि 'मनु' की स्वेच्छा भी लघु है चाहे लघु को वह किन्ती भी बड़ी क्यों न मने। इस दृष्टि से मनुष्य या प्राणियों की स्वेच्छा हम विराट सृष्टि में कितनी अव्यक्तता में सकती है?

इन स्वेच्छा की प्राचीनों के 'अहंकार' ब्रह्मा या और आत्मा के एक रूप में इसे स्वीकार किया जा। अस्तु जोतिक और अमौक्तिक को अलग-अलग मानना असंभव है। भौतिक ही अपने गुणात्मक परिवर्तन में अलग-अलग रूप धारण करता है या कहें कि अमौक्तिक ही भौतिक के विभिन्न परिणामों में अपने विभिन्न रूप प्रकट करता है। सत्य हमारा मानव सत्य है सीमित सत्य है। हो सकता है कि सोच कहें कि मानव सत्य है अविशेष और कोई सत्य नहीं, किन्तु ऐसा

बहने वाले तो वे ही विकासवादी होंगे जिन्हें मत्तानुसार सृष्टि का माय
पुगना है और मानव उसमें बहुत बाद में आया है।

यह भौतिक जो अपरिमित तारायुग महापुन्य बन कर पटना हुआ है इतना
मजबूत है, जो मानव से बहुत मूल है। (उसके सिवा धर्मी स्पुलिक बन ही रहा
है) जो मानव से निरपेक्ष है, यह क्यों है? क्या तथ्यवादी कहता है—आमो
पिरो यथाय में रही समाज का भला करो मोक्षकल्याण करो प्रयत्न करने
रहो चाहे वह समय में आ जाये। मैं इसे मानता हूँ इसके असावा कोई कारण
ही नहीं है। लेकिन प्रश्न वही है।

यदि चेतन में भौतिक के रूप में अपने को दर्शाया है तो क्यों? मानव तो
बहुत बाद की सृष्टि है और यह भी क्या समय में आने वाला बात है कि इस
छोटे से मानव को दिखाने के लिये इतने बिगड़ चेतन ने इतना भौतिक दर्शाया
हो? धर्मशास्त्र है कि मानव इतने विकास का परिणाम तो है वह जाकर फिर
उसमें मिले? जब कि वह उससे अलग है नहीं? यदि भौतिक ने चेतन के रूप
में पुण्यात्मक परिवर्तन किया है तो क्या भौतिक का सखमुच वही आदिक्रम
रखा होना जिसे धर्मीक कहकर हम पृथ्वी पर मानते हैं? उस भौतिक ने किस
प्रक्रिया से यह पुण्यात्मक परिवर्तन किया धर्मी तक यही पता नहीं है फिर
परिणाम देन कर यदि मान भी लिया जाये कि उगने ऐसा किया तो क्या
इसीलिए कि एक दिन यह मानव विराट ससार को अपने 'सबु मानवी संसार'
में उसे प्रतिबिम्बित करने उस पर आश्चर्य करे। क्या इतनी सी बात हो
सकती है?

यदि चेतन और भौतिक एक ही के दो रूप हैं, और वह है तो अनादि
अनन्त सा क्यों है वह? क्या यह समस्त सृष्टि इसीलिये है कि मानव एक
बड़ा अष्टम समाज बना कर वह वे और स्पुलिक में बैठ कर बयह बयह देखता
हो? क्या इस समस्त सृष्टि की मार्पकता का केन्द्र यही है?

यद्यपि हम भूय पुण्यात्मक परिवर्तनों को नहीं जानते किन्तु बिज्ञान ने हमें
फिर भी बहुत से सृष्टि के रहस्य बताये हैं। इनके आधार पर हम बताने
की कोशिश करते हैं कि हमारे हर 'क्यों' का उत्तर समय में 'कैसे' में म
मिलता है।

एकदिवस का मत अर्थ में यह बत गया था कि सृष्टि का रहस्य इतना
बिगड़ है कि उसे सम्भव बिज्ञान के द्वारा मनुष्य कभी भी नहीं पकड़ सकता।
अहाँ साधों ज्योतिष क्यों की बात हो, वहाँ मनुष्य जिस प्रकार इतनी आधुनिक

वीथि रह सकेगा ? लेकिन जब से मन की शक्ति की बात आयी है तब से नयी सम्भावनाओं की धोर दृष्टि जागे समी है । पहले दिक् को एक माना जाता था किन्तु वह सूर्य की समय-साधना के आधार पर माना गया था । अब काल की प्रगति साधनाएँ देखा कर अनेक उप दिक् (sub-space) के बारे में भी सोचा जा रहा है ।

विज्ञान की प्रत्येक नयी संभावना समाज में एक हलचल लाती है । भारत एक प्रकार से सांस्कृतिक विचल (Cultural lag) से पीड़ित है क्योंकि वह नये युग के साथ तेजी से नहीं बढ़ पा रहा है । उसकी दृष्टि भौतिक उपतिष्ठों की धोर जाती है और वह पश्चिम को अपने से अधिक सम्य समझता है, किन्तु पश्चिम भारत की योग सम्बन्धी उपतिष्ठ को देखा कर उसे सब की इस क्षेत्र में अपने से अधिक संस्कृत समझता है ।

अन्त में मैं वहाँ मानव की सामर्थ्य के एक संक्षिप्त उल्लेख के साथ इस विषय को समाप्त करना चाहता हूँ ।

भरती की बेजस १५.००० मील की परिधि है । मनुष्य की सम्झाई क्या है ? ६ फुट । उसमें दिखाय कितना बड़ा है ? आधा फुट के ही लगभग । उसमें पक्षीय हजार मील समी है । सूर्य है इस भरती से तो करोड़ों तीस लाख मील दूर । और हमारी भरती बने घाट वह और है जो सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं । सूर्य सबैव भगवता है, इसी से प्रत्येक ग्रह के एक याव पर सबैव प्रकाश बढ़ता रहता है । और के अमरत्य तारे ! और के बुध्दय तारे । आकाश बड़ा । जिसकी दूरी नापने को संका की कमी पड़ गई । तब ज्योतिषवर्ग को निरत किया गया । एक तीरंज में प्रकाश चलता है एक सास छिमासी हजार मील । तब एक वर्ष में वह जसा लगभग ६.००० ००.००० ०००—छाठ लाख मील । और तब एक ज्योतिषवर्ग हुआ । ऐन तीरंजो हजारों ज्योतिषवर्गों में उन नितारों से रोसमी हमारी भरती पर आती है । और अभी तो बड़ा नहीं कितनी सुष्टि और है ।

या आधा फुट दिखाय बनावर है साठ लाख मील > तीरंजो हजारों लाख मील ।

हमारा छोटा घर—पृथ्वी । हमारा मुहत्सा है गौरवज । और सूर्य है समते का केन्द्र जस रहा है एक तीरंज में बाह्य मील । और हम तो जो ग्रह हैं, उनके पुष्ट्यर्थ—बड़े बड़े फिर और भी हजारों बुध्दय तारे, कीटिगोर ऐडटीरोनट, पिछनले आसीं सब अपने पीछे पुक रहे हैं । बर इन सारे

मकरी में सृष्टि के बाकी तारे कितनी दूर हैं। इतनी दूर कि इनका एकाकी-तन घसटत लगता है। सूर्य के सबसे करीब जो तारा है, वह सूर्य से कितनी दूर है? ४ ज्योतिर्वर्ष यानी 4×10^{10} वर्ष। २४० लाख मील। और मनुष्य के चारों ओर एकांत है, सून्य है निर्गुण शुन्य उसमें कोई तापक्रम नहीं बनाया मिश्रण शुन्य। स्थूलिक जाने तो धनी पृथ्वी के ऊपर की सूर्य की किरणों के ही रूप का सम्भव कर रहा है। और क्यों? २४० लाख वर्ष।

और धारों हैं उनसे घाकागर्भा। उनमें साधों जाने हैं किनमें से कई तो हमारे सूर्य से हजारों गुना बड़े हैं।

और यह सब माप रहे हैं। सैमिरीरियस की ओर दुपटे लगते हैं। मापद २०० वर्षों—२० करोड़ वर्षों में इन सबका एक चक्कर घरनी कोसी पर घूमने में व्यतीत होता है। ऐसे कितने प्रमाण हो चुके हैं। किनसे और होंगे? हमारी धाकागर्भा की भाँति लाखों बिरल ऐसे और भी हैं। संभवतः उनमें से जो हमसे सबसे पास है वह है 2×10^{10} ज्योतिर्वर्ष—२०० लाख वर्ष—२४० लाख वर्ष—४ करोड़ ८० लाख वर्ष करव वर्ष।

सुकरण्य के साथ से पानी की बहिष्ठा और यह विराट रूप। धरतु की देखा से धाह्यार्द्धन की सनेलता और यह समग्रण्य। और वेद के ज्ञप्ति में माधर्मीय धर्मनुपाधियों के चिन्तन के रूप और यह विराट प्रसार। किमिति। क्यों?

सोच बढ़ते हैं—इन सबको विज्ञान ने बताया है वहीं धारों भी बताया गया इसलिये बिना भय करो। लोक को ठीक करो। पर धनी एक लोक-वेदी निज ने। कहने से इतनी समाज सेवा करता है लेकिन इस पृथ्वी का क्या भरोसा कहीं कोई निरापन्न जला या रहा होगा, क्या जान उसका भ्रमण होते होना यहाँ जब वह कुछ धरत वर्ष पुरे करके पहुँचे तो हमारा सूर्य उसका पीछे पुष्प-लगा बन जाये पुष्पभङ्गी या पुष्प जाय और हमारा और मनुष्य ही बच ही जाये।

जैसे किसी बहुत बिगड़त बहरे महासागर पर एक नाव पर कुछ लोग शुन्य धाकाग के भीले बहे जा रहे हों और अपने यन्त्रों से प्रवृत्ति से लड़ रहे हों। मनुष्य की इस वृत्ति को प्राचीनों ने भी समझा था। तभी कहा था कि हम सदैवकार को संकुचित मण रखो। यही पुनरापन धारणा है। इसे बढ़ा करो और

परमात्मा से मिला हो। ईश्वर को मानो, या न मानो परन्तु इस आत्मा को—
 मानी अपने को—मनके योग्य बना हो। ग्रहणार का उदासीनकरण हो संसार का
 एक कुटुम्ब समझने की मान्यता का आधार है। नीता में सभी कहा गया
 है कि काल अविनाश है। मनुष्य एक विनिश्चयात् है, वह प्रकृति के नियमों
 के भीतर ही है फिर भी उस पुनर्प्राप्ति करता चाहिये—व्यक्ति के स्वच्छ
 की संपूर्ण के निश्चयन से भीतर बोझी बहुत पुनर्प्राप्ति है। ये
 देखा है कि नीता का 'आत्मा' सत्य की एक अलग अवस्था है। आत्मा माना
 गेता है। यह क्या है अभी निश्चित रूप से प्रष्ट नहीं है परन्तु यह धीरे
 धीरे केवल इतना ही नहीं है जिसका भीतिक विज्ञानी मानता है। इसका
 पुनरात्मक परिवर्तन और भी है और अभी यह जानकारी भी बहुत विचलित
 होती है।

अपनी बात को देखा है तो मना है मनुष्य की इस छोटी नार्दवाइयो
 का कारण क्या है? यह है कि आदमी आदमी का विद्याता है, अपने धार
 को। सुनिष्क का मान्य केवल इसी में नहीं है कि वह भीर वा रहा है, मरन
 इसमें है कि उसका जिज्ञासु कर बाकी लोगों की धारों की यह जाती है।
 विज्ञान के विकास के पीछे संस्कृति की भीतिक मान्यताएं भी नहीं बढ़ पाई हैं
 वे ही उस महंकार और विज्ञाप में दिखाई पड़ी हैं, जो सुनिष्क की सदा के
 साथ राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा बन कर प्रष्ट हुई हैं।

विचार का सत्य जब तक मान का सत्य भी नहीं हो जायगा, तब तक
 जीवन का सामंजस्य ठीक से बैठ सकेगा या नहीं यह निर्णय संदिग्ध है।

